मध्य युगीन हिन्दी एवं तेलुगु साहित्यिक धाराओं और प्रवृत्तियों का तुलनात्मक अनुशीलन

(सन् 1325 ई. से 1650 ई. तक)

(हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद की पी.एच.डी. उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध प्रबन्ध)

1992

प्रस्तुतकर्त्री :

श्रीमती जी. वी. जयश्री

एम. ए., एम. फिल्

निर्देशक : वै. वेंकट रमणराव 30/7/92

डॉ. वाइ. वेंकटरमणराव

एम.ए. (हिन्दी), एम.ए. (तेलुगु), पी.एच.डी.

प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,

हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद

अध्यक्ष : शशि मुदिराज

डॉ. शशि मुदिराज

एम.ए., पी.एच.डी. डी. लिट्

प्रोफेसर एवं अध्यक्ष,

हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद

ALL HIGHER KNOWLEDGE IS GAINED

BY COMPARISON AND RESTS ON COMPARISON

DECLARATION

I hereby declare that this thesis entitled "MADHYAYUGEEN HINDI EVAM TELUGU SAHITHIK DHARAON AUR PRAVRUTHIYON KA TULANATHMAK ANUSHEELAN" has been written by me under the guidance and supervision of Prof. Y. VENKATRAMANA RAO, M.A. (Hindi), M.A.,(Telugu), Ph.D., Hindi Department, University of Hyderabad, in fulfilment of the requirement for the award of Ph.D. Degree.

I also declare that this thesis is the result of my own effort and has not been submitted to any other University before for any degree or diploma.

Jayasri
30-7-92

Hyderabad

Dated: 30-7-92

(G.V.JAYASREE)

31/7/92

Prof. & Head, Dept. of Hindi
YDERABAD-500 134

SUPERVISER CERTIFICATE

This is to certify that Smt.G.V.JAYASREE, M.A., M.Phil, is a bonafide student of the Department of Hindi, University of Hyderabad and this thesis entitled **"MADHYAYUGEEN HINDI EVAM TELUGU SAHITHIK DHARAON AUR PRAVRUTHIYON KA TULANATHMAK ANUSHEELAN"** is a bonafide record of the research work done under my supervision for the award of Ph.D. Degree in fulfilment of course.

Date: 30.7.92

(Prof. Y. VENKAT RAMANA RAO)

Prof. Y. VENKATA RAMANA RAO
Department of Hindi
UNIVERSITY OF HYDERABAD
HYDERABAD-500 134

31.7.92

Dean,
School of Humanities,
University of Hyderabad,
HYDERABAD-500 134.

प्रथम अध्याय

साहित्येतिहास दर्शन और तुलनात्मक साहित्येतिहास

0 प्राक्कथन 1 – 6

1.0. प्रस्तावना 7 – 56

0.1. इतिहास दर्शन : अर्थ और परिभाषा

1.1. इतिहास दर्शन : स्वरूप

1.2.0. इतिहास दर्शन : सिद्धान्त

1.2.1. प्रगति और इतिहास

1.2.2. द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया

1.2.3. परस्पर संबद्धता का सिद्धान्त

1.2.4. अन्तर्विरोध का सिद्धान्त

1.2.5. गतिशीलता का नियम

1.2.6. विकास तथा ऐतिहासिक प्रगति

1.3.0. साहित्येतिहास दर्शन : परिभाषा

1.3.1. स्वरूप

1.4.0. साहित्येतिहास : विकास की समस्या

1.4.1. जैविक विकास : साहित्येतिहास

1.5.0. साहित्येतिहास दर्शन के प्रमुख आदर्शवादी प्रतिपादक

(क) स्पेंगलर

(ख) टाइनबी

(ग) सोरोकिन

1.6.0. साहित्येतिहास लेखन पद्धतियाँ – विधेयवाद

1.6.1. ऐतिहासिक भौतिकवाद : साहित्येतिहास

1.7.0. हिन्दी और तेलुगु साहित्य के इतिहास : एक दृष्टि

1.7.1. हिन्दी साहित्य की इतिहास-परंपरा

1.7.2. इतिहास लेखन का प्रारम्भिक युग

1.7.3. साहित्येतिहास लेखन का वर्तमान युग

1.7.4. हिन्दी साहित्येतिहास का काल विभाजन

1.7.5. साहित्येतिहास : नामकरण

1.7.6. तेलुगु साहित्येतिहास : लेखन परंपरा

1.7.7. तेलुगु साहित्य का काल-विभाजन

1.7.8. साहित्येतिहास नामकरण

1.8.0. तुलनात्मक अनुशीलन

1.9.0. तुलनात्मक साहित्येतिहास : काल विभाजन की रूप रेखा

6

द्वितीय अध्याय

मध्य युगीन राज्य, राजनैतिक हलचल एवं समाज : साहित्यिक संरक्षण

57 - 92

2·0· प्रस्तावना

2·1· पूर्व पीठिका

2·2· खिल्जी वंश

2·3· तुगलक वंश

2·4· मंगोल तैमूर आक्रमण

2·5· प्रान्तीय राज्यों का उदय

2·5·1· बंगाल

2·5·2· जौनपुर

2·5·3· गुजरात

2·5·4· मेवाड

2·5·6· काश्मीर

2·6· सैयद वंश

2·7· लोदी वंश

2·8· मुगल साम्राज्य

2·9· मध्यकालीन उत्तर भारत की सामाजिक स्थिति

2·9·1· इस्लाम और हिन्दू संस्कृति का समन्वय

2·10· आन्ध्र प्रान्त का राजनैतिक इतिहास

2·10·1· प्राचीन आन्ध्र प्रान्त का इतिहास

2·11· काकतीय युग

2·12· स्वतंत्र काकतीय

2·13· आन्ध्र प्रान्त का उत्तर मध्य युग

2·14· मुसुनूरि नायक वंश

2·14·1· पद्मनायक

2·15· रेड्डी राज्य

2·16· गजपति राज्य

2·17· विजय नगर साम्राज्य

2·18· बहमनी राज्य

2·19· कुतुबशाही राज्य

2·20· मध्य कालीन तेलुगु प्रान्त की सामाजिक स्थिति

2·20·1· उत्तर मध्य कालीन तेलुगु प्रान्त की सामाजिक स्थिति

2·21· तुलनात्मक अनुशीलन

तृतीय अध्याय

सांस्कृतिक, धार्मिक परंपराएँ और साहित्य पर प्रभाव

93-148

3·0· प्रस्तावना

3·1· संस्कृति का स्वरूप और विकास

3·2· संस्कृति और संस्कृति का अर्जन

3·3· संस्कृति और सभ्यता

3·4· संस्कृति और धर्म

3·5· वैदिक संस्कृति

3·5·1· भारतीय संस्कृति की प्राचीनता

3·5·2· भारतीय संस्कृति की विशेषताएँ

3·5·2·1· आध्यात्मिक तत्व

3·5·2·2· लौकिक तत्व

3·6· पूर्व मध्यकालीन सांस्कृतिक सांस्कृतिक पर्यावरण

3·7· सांस्कृतिक क्रान्ति का युग

3·7·1· जैन धर्म

3·7·1·1· जैन धर्म का भारतीय संस्कृति को देन

3·7·2· बौद्ध धर्म

3·7·2·1· भारतीय संस्कृति को बौद्ध धर्म का योगदान

3·7·3· सिद्ध संप्रदाय

3·7·4· नाथ संप्रदाय

3·7·5· शाक्त धर्म

3·7·6· शैव धर्म

3·7·8· वैष्णव धर्म

3·8· आन्ध्र में संस्कृति और धर्म : एक झलक

3.8.1. वैदिक धर्म
3.8.2. बौद्ध धर्म
3.8.3. जैन धर्म
3.8.4. शैव धर्म
3.8.5. पाशुपत
3.8.6. कालामुख
3.8.7. कापालिक
3.8.8. लिंगायत : वीर शैव
3.8.9. वीर वैष्णव
3.9. इस्लाम का प्रभाव
3.9.1. धार्मिक अभ्युत्थान - भक्ति आन्दोलन
3.9.2. शंकराचार्य
3.9.3. आलवार संप्रदाय
3.9.4. रामानुजाचार्य
3.9.5. मध्वाचार्य
3.9.6. विष्णु स्वामि
3.9.7. निम्बार्काचार्य
3.9.8. रामानन्द
3.9.9. चैतन्य प्रभु
3.9.10. वल्लभाचार्य
3.10. तुलनात्मक अनुशीलन

चतुर्थ अध्याय

भाषा का ऐतिहासिक विकास और साहित्यिक अवतरण की प्रकृति

149-166

4·0· प्रस्तावना

4·1· हिन्दी भाषा का इतिहास

4·2· हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास

4·3· हिन्दी भाषा की प्राचीनता

4·4· मध्यकालीन भाषागत रूप

- 4·4·1· सधुक्कड़ी
- 4·4·2· अवधी
- 4·4·3· ब्रज भाषा
- 4·4·4· खड़ी बोली

4·5· साहित्यिक रूप

4·6· तेलुगु भाषा का इतिहास

4·7· तेलुगु भाषा की प्राचीनता

4·8· तेलुगु भाषा का विकास

- 4·8·1· नन्नय युग
- 4·8·2· मार्गी कविता
- 4·8·3· देशी कविता
- 4·8·4· जानु तेलुगु

4·9· तुलनात्मक अनुशीलन

पंचम अध्याय

भक्ति चिंतन की दार्शनिक भूमिका : भक्ति साहित्य

167-19

5·0· प्रस्तावना

5·1· भक्ति शब्द की व्युत्पत्ति

5·2· परिभाषा

5·3· भक्ति के प्रकार

5·4· भक्ति तत्व का विश्लेषण

5·5· भक्ति का दार्शनिक पक्ष

- 5·5·1· अद्वैतवाद दर्शन
- 5·5·2· शुद्धाद्वैत दर्शन
- 5·5·3· विशिष्टाद्वैत दर्शन
- 5·5·4· द्वैत दर्शन
- 5·5·5· द्वैताद्वैत दर्शन
- 5·5·6· राधा वल्लभ संप्रदाय
- 5·5·7· चैतन्य संप्रदाय
- 5·5·8· शैव दर्शन
- 5·5·9· कश्मीरी शैव दर्शन व प्रत्यभिज्ञ दर्शन
- 5·5·10· वीर शैव धर्म का दार्शनिक पक्ष
- 5·5·11· दक्षिण के वैष्णव आलवार संप्रदाय
- 5·5·12· वैष्णव दर्शन
- 5·5·13· हरिहर दर्शन

5.5.14. सूफी दर्शन और भारतीय साहित्य

5.5.15. सूफीमत के सिद्धान्त

5.6. मध्यकाल : हिन्दी साहित्य में भक्ति साहित्य परिचय

5.7. तेलुगु साहित्य में भक्ति

5.8. तुलनात्मक अनुशीलन

-=-=-=-

षष्ठ अध्याय :

6.0. मध्य कालीन कवि और कृतित्व 198-345

6.1. मध्यकालीन अपभ्रंश जैन कवि और कृतियाँ

6.1.1. हिन्दी

6.1.2. तेलुगु

6.1.3. तुलनात्मक अनुशीलन

6.2. मध्य कालीन शैव काव्य

6.2.1 हिन्दी

6.2.2. तेलुगु

6.2.3. तुलनात्मक अनुशीलन

6.3. मध्य कालीन संत कवि और कृतियाँ

6.4. प्रेमाख्यान काव्य और सूफी काव्य

6.5. दक्षिण के सूफी प्रेमाख्यान काव्य

6.6. मध्य कालीन राम भक्ति साहित्य

6.6.1 हिन्दी

6.6.2. तेलुगु

6.6.3. तुलनात्मक अनुशीलन

6·7· मध्य कालीन कृष्ण भक्ति साहित्य

6·7·1· हिन्दी

6·7·2· तेलुगु

6·7·3· तुलनात्मक अनुशीलन

6·8· तेलुगु में ही प्राप्त अन्य प्रवृत्ति के कवि और कृतियाँ

6·9· तेलुगु में कवयित्रियों की देन

6·10· तुलनात्मक अध्ययन

346-392

मध्यकालीन हिन्दी और तेलुगु साहित्य की काव्यगत प्रवृत्तियाँ

7.0. प्रस्तावना

7.1. मध्यकालीन साहित्य में काव्य वस्तु

हिन्दी

अ) संत काव्य

आ) प्रेम काव्य

इ) राम काव्य

ई) कृष्ण काव्य

उ) जैन काव्य

ऊ) नीति काव्य

तेलुगु

अ) शैव काव्य

आ) पौराणिक काव्य

इ) राम काव्य

ई) कृष्ण काव्य

उ) नीति काव्य

ऊ) [illegible]ण काव्य

ऋ) वीर काव्य

7.1.1. तुलनात्मक अनुशीलन

हिन्दी
-=-=-=-

अ) चरित काव्य

आ) चर्चरी

इ) मंजरी काव्य

ई) कथा-कहानी आख्यायिका

उ) चौपाई काव्य

ऊ) गीत काव्य

ऋ) शतक काव्य

ए) मुक्तक काव्य

ऐ) खण्ड काव्य

ओ) फागु काव्य

औ) नाटक

अं) प्रबंध काव्य या महाकाव्य

तेलुगु
-=-=-

अ) पौराणिक प्रबन्ध या महाकाव्य

आ) कथा काव्य

इ) शतक काव्य

ई) द्विपद काव्य

उ) चंपू काव्य

ऊ) गीत काव्य

ऋ) चरित काव्य

ए) आख्यान

ऐ ॥ उदाहरण

ओ॥ मंजरी काव्य

7·2·1· तुलनात्मक समीक्षा

7·3· मध्यकालीन साहित्य की काव्य रूढ़ियाँ

7·3·1· हिन्दी

7·3·2· तेलुगु

7·3·3· तुलनात्मक अनुशीलन

7·4· मध्यकालीन साहित्य में रस प्रवृत्ति दिशाएँ

7·4·1· हिन्दी

7·4·2· तेलुगु

7·4·3· तुलनात्मक

7·5· मध्यकालीन साहित्य में अलंकार योजना

7·5·1· हिन्दी

7·5·2· तेलुगु

7·5·3· तुलनात्मक अनुशीलन

7·6· मध्य कालीन साहित्य में छन्द

7·6·1· हिन्दी

7·6·2· तेलुगु

7·6·3· तुलनात्मक अनुशीलन

7•7• मध्यकालीन साहित्य में काव्य शैली

7•7• हिन्दी

7•7•2• तेलुगु

7•7•3• तुलनात्मक अनुशीलन

7•8• निष्कर्ष

उपसंहार 393- 399

सहायक ग्रन्थसूची 400-411

-=-=-=-

प्राक्कथन

साहित्य और कलाओं के क्षेत्र में तुलनात्मक अध्ययन मानव हृदय और मस्तिष्क में परिलक्षित भाव और विचारों के साम्य का उद्घाटन कर विश्व मानवता की एकता का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। देश, जाति, धर्म, संप्रदाय, भाषा, बोली प्रान्त आदि के बीच में शाश्वत रूप से प्रकाशित होने वाले विश्व मानव के मन का प्रदर्शन ही तुलनात्मक अनुशीलन है।

तुलनात्मक शोध कार्य का क्षेत्र विस्तृत है यह कार्य अनेक प्रकार से संपन्न किया जा सकता है। यह एक ही भाषा के दो कवि, दो साहित्यिक रूपों, दो विधाओं आदि विषयों को लेकर किया जा सकता है। इतना ही नहीं दो या दो से अधिक भाषाओं के एक काल विशेष, कवि, साहित्यिक विधा, काव्य शास्त्र आदि को लेकर भी तुलनात्मक अनुशीलन संपन्न किया जा सकता है।

हिन्दी साहित्य के अध्ययन और अनुसंधान के क्षेत्र में तुलनात्मक अध्ययन और की दिशाएँ अब बल पकड़ रही है। विषय चयन से लेकर आगे बढ़ने के लिए अनुसंधान के क्षेत्र में तो तुलनात्मक साहित्येतिहास के अवगाहन की आवश्यकता अनुभव की जाती है। बहु भाषाओं, बहु जातियों और बहु धर्मों के इस देश में साहित्य सृजन के पीछे अनेक साम्य और वैषम्य की स्थितियाँ है। इनकी पृष्ठभूमि में तुलनात्मक साहित्येतिहास की रचना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है जिससे साहित्यिक जिज्ञासुओं और अनुसंधाताओं का मार्ग प्रशस्त हो।

जब तक समस्त साहित्य और समस्त प्रदेश के साहित्य से संबंधित इतिहासबोध न हो तब तक विभिन्न परिस्थितियों में उभरी साहित्यिक धाराओं का तुलनात्मक अध्ययन संपन्न नहीं हो सकता । इसलिए साहित्य और क्षेत्र से संबंधित इतिहास का बोध अत्यन्तावश्यक है । इससे आगे चलकर तुलनात्मक अध्ययन में प्रवृत होने के लिए एक विस्तृत दिशा मिलती है । उत्तर और दक्षिण की ऐतिहासिक परि - स्थितियों में अंतर है । इन परिस्थितियों की सतह में समानताएँ दिखाई देती है पर वस्तु स्थिति में अनेक भेदक तत्व हैं जो साहित्य की प्रेरक शक्तियाँ हैं । प्रवृत्ति विश्लेषण में यह बात स्पष्ट होती है । कवियों के व्यक्तित्व और कृतित्व के अध्ययन में तो यह और भी स्पष्ट गोचर हो जाता है । इसलिए साहित्य के संदर्भ में इतिहास बोध इतिहास दर्शन के परिप्रेक्ष्य में आवश्यक है । तुलनात्मक दृष्टि से साहित्येतिहास के निर्माण की प्रासंगिक आवश्यकता है । यह हिन्दी और हिन्दीतर प्रान्तों का मौलिक कार्य और साहित्य के लिए मौलिक देन होगा ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में हिन्दी साहित्य मध्यकाल के भक्तियुग को शोध विषय के लिए स्वीकार किया गया है और इसकी तुलना सम - कालीन तेलुगु साहित्य के साथ किया गया है । इन दोनों साहित्यों की पृष्ठभूमि में लगभग समान ऐतिहासिक परिस्थितियाँ स्पष्ट हैं । मध्यकालीन जगमगाते हुए दीप इस युगीन भक्ति काव्य हैं । इन भक्ति दीपों के प्रकाश में मानव का भक्ति पथ प्रशस्त होता है । तुलनात्मक दृष्टि से भक्ति साहित्य को निर्गुण ज्ञानाश्रयी, प्रेमाश्रयी शाखाओं, शैव काव्य, राम काव्य, कृष्ण काव्य और अन्य काव्यों का तुलनात्मक दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है । तुलनात्मक साहित्येतिहास

शोध के क्षेत्र में नवीन उपलब्धि है । हिन्दी और तेलुगु के विविध पक्षों को लेकर विस्तृत संख्या में शोध कार्य संपन्न हो सके हैं किन्तु साहित्येतिहास की दिशा में यह नया परिवर्तन है । तुलनात्मक अध्ययन से संबद्ध क्रमिक साहित्येतिहास की तीन धाराएँ उपलब्ध होती हैं । भाषा, देश का इतिहास, धर्म और संस्कृति जिसका साहित्य सृजन से अविच्छिन्न संबंध जुड़ा रहता है । उनकी पृष्ठभूमि में साहित्य के इतिहास का अध्ययन अनिवार्य हो जाता है । तुलनात्मक अध्ययन में इन धाराओं में मिलनेवाले साम्य और वैषम्यों को विस्मृत नहीं किया जा सकता । इन सब बातों को दृष्टि में रखते हुए प्रस्तुत अध्ययन को सात अध्यायों में विभाजित किया गया ।

प्रथम अध्याय में साहित्येतिहास दर्शन और तुलनात्मक साहित्येतिहास पर सम्यक् विवेचन प्रस्तुत किया गया है । साहित्येतिहास दर्शन साहित्य लेखन का सैद्धान्तिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है । इसमें साहित्येतिहास दर्शन का स्वरूप संरचना पर प्रकाश डाला गया है । साहित्येतिहास लेखन की पद्धतियों को प्रस्तुत किया गया है । इसके अतिरिक्त हिन्दी और तेलुगु साहित्य के इतिहास का सामान्य परिचय प्रस्तुत किया गया है । साहित्येतिहास संरचना के लिए अनुकूल काल विभाजन की ओर भी उचित ध्यान दिया गया है । इस प्रकार इस अध्याय में साहित्येतिहास लेखक की विचार धारा पर समुचित प्रकाश डाला गया है । इससे संबंधित अनेक सिद्धान्तों और दर्शन का परिचय इस अध्याय में दिया गया है ।

द्वितीय अध्याय में मध्य युगीन राज्य तथा तद् युगीन संघर्ष सामाजिक स्थितिगतियों पर प्रकाश डाला गया है । साहित्येतिहास संरचना के लिए युगीन राजनैतिक या प्रादेशिक इतिहास की गति - विधियोंकाविवेचन किया गया है । साथ ही समकालीन सामाजिक स्थितियों का साहित्य पर प्रभाव पर भी प्रकाश डाला गया है ।

तृतीय अध्याय हिन्दी और तेलुगु के मध्यकालीन धार्मिक और सांस्कृतिक भूमिका को प्रस्तुत करता है । इसमें विभिन्न धर्मों का जो प्रभाव हिन्दी और तेलुगु प्रान्तों पर पड़ा है उसका सम्यक् विवेचन प्रस्तुत किया गया है । धर्म का साहित्य पर प्रभाव पर भी इस अध्याय में विवेचन किया गया है ।

चतुर्थ अध्याय हिन्दी और तेलुगु भाषाओं के इतिहास को स्पष्ट करता है । मध्य कालीन हिन्दी और तेलुगु भाषाओं के विकास की गति विधियों का तुलनात्मक दृष्टि से विवेचन प्रस्तुत किया गया है । भाषा विकास के विवेचन के बिना तुलनात्मक साहित्येतिहास का विवेचन पूर्ण नहीं होता ।

पंचम अध्याय में भक्ति चिंतन की दार्शनिकभूमिका तथा भक्ति साहित्य पर प्रकाश डाला गया है । भक्ति प्रतिपादन के लिए विभिन्न दार्शनिक संप्रदायों का परिचय प्रस्तुत किया गया । इसके पीछे भक्ति आन्दोलन का सक्रिय भाग रहा है । साधना के मार्ग में भक्ति का मार्ग अत्यन्त महत्वपूर्ण है । ईश्वर भक्ति को प्राप्त करने के लिए भगवान के प्रति अनन्य निष्ठा की आवश्यकता है । प्रस्तुत अध्याय में भक्ति चिंतन की पृष्ठभूमि में भक्ति साहित्य के विकास को प्रस्तुत किया गया है ।

षष्ट अध्याय में कवि और उनकी कृतियों पर तुलनात्मक दृष्टि से प्रकाश डाला गया है । कवि और कृतियों के प्रस्तुतीकरण में काल को मुख्य आधार न मानकर प्रवृत्ति को आधार बनाया गया है । इसी के अनुसार हिन्दी और तेलुगु कवि और उनके काव्यों पर प्रकाश डाला गया है ।

सप्तम् अध्याय में मध्यकालीन हिन्दी और तेलुगु साहित्यों की काव्यगत प्रवृत्तियों पर तुलनात्मक दृष्टि से विवेचन किया गया है । इसके अन्तर्गत काव्य वस्तु, काव्य रूप, काव्य रीति रस, छन्द, अलंकार तथा काव्य शैली पर तुलनात्मक अनुशीलन प्रस्तुत किया गया है ।

अंत में उपसंहार है जो अध्ययन के लघु प्रयास का सार प्रस्तुत करता है । तुलनात्मक अध्ययन समय साध्य और कष्ट साध्य अनुष्ठान है । विषय की दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन अपनी सीमाओं में बंध जाता है । प्रस्तुत शोध प्रबंध में लगभग पाँच सौ वर्षों की साहित्ये - तिहास को तुलनात्मक दृष्टि से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है ।

यद्यपि यह कार्य दुष्कर है फिर भी मैं ने विषय के साथ न्याय करने का प्रयास किया है ।

अनुसंधान कार्य सामूहिक कार्य है । इसमें गुरु जनों, विद्वानों एवं मित्रों की सहायता उपयोगी होती है । विशेषत: गुरुजनों का मार्ग दर्शन अत्यन्त आवश्यक है । मैं उन सभी को धन्यवाद समर्पित करती हूँ जिनकी सहायता मुझे इस कार्य के लिए प्राप्त हुई थी ।

मैं सर्व प्रथम भूतपूर्व अध्यक्ष और मेरे गुरु एवं निर्देशक डा॰ वाई॰ वेंकटरमण राव एम॰ए॰ (हिन्दी), एम॰ए॰ (तेलुगु), पी॰एच–डी॰ के प्रति आभारी हूँ जिन्होंने सहनशीलता एवं एकाग्रता के साथ इस शोध कार्य का निर्देशन किया । इनके लिए शाब्दिक आभार प्रकट करना मैं कम समझती हूँ । पश्चात् मैं वर्तमान अध्यक्षा श्रीमती शशि मुदिराज के प्रति अपना आभार प्रकट करती हूँ । हैदराबाद विश्वविद्यालय के तेलुगु विभाग के गुरु जनों को भी मैं आभार प्रकट करती हूँ जिन्होंने मेरे मन में उत्पन्न अनेक संदेहों को दूर करने में मेरी सहायता की । इस शोध कार्य को संपन्न करने में मुझे हर क्षण प्रोत्साहन देते हुए तथा मनोधैर्य प्रदान करने वाले मेरे पूजनीय माता जी और पिताजी का मैं सदा आभारी हूँ । इस शोध कार्य संपन्न करने में मुझे हर दिशा में साथ देने वाले मेरे जीवन साथी श्री संपत को मैं आभार प्रकट करती हूँ । अनेक लेखकों की कृतियों की सहायता से मैंने यह अनुष्ठान संपन्न किया है सभी को मैं आभार प्रकट करती हूँ ।

-:-

प्रथम अध्याय

साहित्येतिहास दर्शन और तुलनात्मक साहित्येतिहास

-:-

प्रथम अध्याय

साहित्येतिहास दर्शन : तुलनात्मक साहित्येतिहास

0. प्रस्तावना :-

साहित्येतिहास दर्शन साहित्य से संबंधित इतिहास लेखन का सैद्धान्तिक तथा विश्लेषणात्मक चिन्तन है। प्रस्तुत अध्याय में साहित्येतिहास दर्शन, हिन्दी और तेलुगु साहित्य के इतिहासों का एक सामान्य परिचय तथा तुलनात्मक साहित्येतिहास रचना के लिए युग विभाजन आदि पर प्रकाश डाला गया है। साहित्येतिहास लेखन की विचार धारा पर प्रकाश डालना लक्ष्य रहा है। इससे संबंधित विभिन्न सिद्धान्तों और दर्शन का सामान्य परिचय भी इस अध्याय का अभिप्रेत रहा है।

इतिहास दर्शन : अर्थ और परिभाषा :-

साहित्येतिहास का अवबोधन इतिहास की अवधारणा पर आधारित है। इतिहास की धाराएँ हीं साहित्येतिहास की दिशा का निर्देशन करती है।

इतिहास शब्द का व्युत्पत्ति मूलक अर्थ है - " इति-ह-आस " अर्थात् वास्तव में ऐसा ही हुआ था । इतिहास शब्द का सर्व प्रथम उल्लेख अथर्ववेद में हुआ है । इसके अतिरिक्त जैमनीय बृहदारण्यक में भी इस शब्द का प्रयोग हुआ है ।[1] मनुष्य सामाजिक प्राणी होने के साथ-साथ ऐतिहासिक प्राणी भी है । स्पेंगलर के अनुसार " इतिहास स्पष्टतः इसी सीमा तक प्रत्येक मनुष्य के लिए है कि प्रत्येक मनुष्य अपने संपूर्ण अस्तित्व एवं चेतना सहित इतिहास अंग है । इतिहास परिवर्तनशील प्रवाही एवं गतिशील है । "[2] कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने इतिहास को इस प्रकार परिभाषित किया है ।

1. History is the science of men in time — Bloctt
2. History is the record of what one age finds worthy of note in another — Burchardt

श्री नलिन विलोचन शर्मा ने इतिहास शब्द का प्रयोग चार अर्थों में मना है -[3]

1. घटना के घटित होने की प्रक्रिया अथवा क्रम के लिए ही अधिकांशतः इतिहास शब्द का प्रयोग होता है ।
2. इतिहास परंपरा के लिए प्रयुक्त होता है ।
3. इतिहास शब्द गवेषण से प्राप्त जानकारी या गवेषणा की किसी प्रतिक्रिया से उत्पन्न ज्ञान ।
4. इतिहास का नया अर्थ इतिवृत्त या हिस्टोरियोग्राफी ।

---

1. साहित्येतिहास संरचना और स्वरूप - सुमन राजे - पृ. 77.
2. - वही - पृ. 78.
3. साहित्य का इतिहास दर्शन - नलिन विलोचन शर्मा - पृ. 40.

निष्कर्षत: इतिहास की एक समुचित परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है - " इतिहास देश काल के आयाम में विकसित एवं विकास शील मानव जीवन की गवेषणा के साथ-साथ उसकी तथ्याधारित एवं युग सापेक्ष व्याख्या है ।

1.1. इतिहास दर्शन : स्वरूप :-

इतिहास दर्शन जितना अधिक चर्चित है उतना ही अधिक अस्पष्ट है । इतिहास दर्शन भ्रमात्मक एक अनेकार्थक शब्द है अत: इसका विश्लेषण आवश्यक है । हीगेल ने सर्व प्रथम दर्शन का प्रयोग किया है । वास्तव में इतिहास दर्शन इतिहास से संबंधित विचारों के अतिरिक्त कुछ नहीं है । कालिंगवुड [4] ने इसकी चर्चा करते हुए कहा है कि इतिहास दर्शन की संज्ञा अठारहवीं शताब्दी में सर्व प्रथम वाल्टेयर ने इतिहास को वैज्ञानिक तथा आलोचनात्मक अर्थ प्रदान करने के लिए अन्वेषित की थी । 19 वी शताब्दी में वस्तुनिष्ट वादियों ने इसका प्रयोग इतिहास संबंधी सामान्य नियमों के ज्ञान में किया । बीसवीं शताब्दी में यह शब्द प्रमुख रूप से एक विशिष्ट दर्शन के अर्थ में किया ।

वस्तुत: आज भी इसका प्रयोग व्यापक एवं सीमित दोनों अर्थों में किया जाता है । व्यापक दृष्टि से देखा जाए तो इतिहास दर्शन के अंतर्गत ऐतिहासिक ज्ञान संबंधी दार्शनिकों का प्रत्येक विचार अंतर्भूत होता है ।

वैज्ञानिक युग से पूर्व मनुष्य के दार्शनिक चिंतन का इतिहास अत्यन्त विस्तृत है जिसे धर्म, दर्शन, आध्यात्म दर्शन तथा तत्वदर्शन आदि नामों से अभिहित किया जाता है । " दर्शन शास्त्र की इन शाखाओं में भी मानव का इतिहास तथा विश्व के इतिहास की समग्रता पर तात्विक दृष्टि से विस्तार पूर्वक

---

4. हिन्दी साहित्य का इतिहास दर्शन - शिव कुमार - पृ. 21.

विचार विमर्श हुआ है। अत: कई विद्वानों ने इस चिंतन में इतिहास दर्शन का नाम दिया है और स्वीकार किया। कुछ विद्वान इसे नैतिक दर्शन समझते हैं। मारीटेन [5] के अनुसार "इतिहास दर्शन व्यक्तियों के व्यवहार पर नहीं प्रत्युत मानवता के समग्र संचालन पर दार्शनिक सत्यों का अन्तिम प्रयोग है अत: यह नैतिक दर्शन है।" परन्तु इसे नैतिक दर्शन का नाम देना उपयुक्त प्रतीत नहीं होता क्योंकि इतिहास दर्शन वस्तुत: नैतिक आदर्शों, मूल्यों तथा उद्देश्यों से संबंधित न होकर इतिहास धारा की गति एवं लक्ष्य को समझने का प्रयास है। इस प्रकार इसका स्वरूप नीति परक न होकर विज्ञानात्मक या वैज्ञानिकदर्शन है।

आधुनिक युग के कई इतिहासकारों ने इतिहास दर्शन को इतिहास तथा इतिहास लेखन के संबंध मानते हुए ऐतिहासिक प्रक्रिया तथा इतिहास के रचना-विधान संबंधी चिन्तन के रूप में मान्यता प्रदान की है तथा इसको पारंपरिक दर्शन शास्त्र से भिन्न रूप में स्वीकार करते हुए इसे विशिष्ट दर्शन माना है। इस रूप में इतिहास दर्शन इतिहास तथा उसकी समस्याओं का विषय विश्लेषण है। इसलिए इतिहास दर्शन को इतिहास का विज्ञान भी कहा जा सकता है।

इतिहास दर्शन को वास्तविक इतिहास से विच्छिन्न करने की धारणा अनैतिहासिक ही नहीं वास्तविकता से कोसों दूर है क्योंकि इतिहास दर्शन ऐसा ज्ञान है जिसकी उपलब्धि वस्तु जगत के ऐतिहासिक तथ्यों तथा घटनाओं से ही संभव है। वस्तुत: इतिहास दर्शन इतिहास से जन्मा है। इसका अस्तित्व भी इतिहास पर ही आधारित है।

---

5. हिन्दी साहित्य का इतिहास दर्शन : शिव कुमार - पृ. 22.

इतिहास दर्शन के द्वारा ही इतिहास सुसंबद्ध रूप को प्राप्त करता है, निर्जीव भूतकालीन तथ्यों के ढाँचे को इतिहास कार का इतिहास दर्शन से ही सजीव तथा साकार बनता है ।

2·0· इतिहास दर्शन : सिद्धान्त :-

इतिहास दर्शन के सही अवगाहन के लिए कुछ सिद्धान्त या नियमों का उल्लेख किया गया है । इन सिद्धान्तों की सही जानकारी आवश्यक है ।

2·1· प्रगति और इतिहास :-

परिवर्तन एक सार्वभौम नियम है । इतिहास को एक निरंतर परिवर्तन शील तथा गतिशील प्रक्रिया के रूप में स्वीकार करना स्वभाविक है । परिवर्तन नवीनता तथा निरंतरता का द्योतक है । विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा वस्तु निरंतर परिवर्तित ही नहीं होती प्रत्युत उसका रूप एवं गठन क्रमशः अधिक जटिल तथा विस्तृत होता जाता है । विकासवादी सिद्धान्त के अनुसार वस्तु का परिवर्तित रूप से केवल नवीन ही नहीं होता उससे अधिक विकसित जटिल तथा परिवर्धित होता है । मैकाइवर के अनुसार " जब हम परिवर्तन की निरंतरता को ही नहीं उसकी दिशा को भी अभिव्यक्त करते हैं तो हमें इस उद्देश्य के लिए अन्य शब्दों में सर्वाधिक " विकास " की आवश्यकता पडती है । " [6]

6· हिन्दी साहित्य का इतिहास दर्शन : शिवकुमार – पृ· 17·

2·2· द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया :-

विकास की नैसर्गिक प्रक्रिया के सम्यक् बोध के लिए उसके द्वन्द्वात्मक रूप को जानने के लिए सार्थक होगा । समस्त ऐतिहासिक प्रगति द्वन्द्वात्मक है ।

2·3· परस्पर संबद्धता का सिद्धान्त :-

द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया की पहली अवधारणा यह है कि वस्तु जगत के तत्वों का अध्ययन अलग इकाई रूप में नहीं किया जा सकता । इनका सम्यक् अध्ययन तभी संभव है जब अन्य उपकरणों से तथा तत्वों की संश्लिष्टता में उसे रखे । कार्ल - मार्क्स का विचार है कि " वस्तु जगत की कार्यप्रक्रिया में एक निश्चित क्रम के दर्शन होते हैं जिसका मूल कारण कार्य-कारण संबंध इस प्रकार वस्तु जगत की समस्त कार्य-कारण संबंधता से चालित होती है । "[7] क्रिया प्रति-क्रियाओं के अन्त: सम्बन्धों की खोज से उनके सन्निहित तत्वों की ठीक ज्ञानकारी हो सकती है ।

2·4· अन्तर्विरोध का सिद्धान्त :-

द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया के अनुसार विकास मूलत: असंगतियों तथा अन्तर्विरोधों पर आधारित है जो वस्तु जगत में आन्तरिक रूप से परिवर्तन और विकास होता है । साहित्य के विकास में भी यह नियम अत्यन्त महत्वपूर्ण है । डा· नामवर सिंह ने इस के संबंध में हिन्दी साहित्य के इतिहास पर विचार करते हुए लिखा है - " भक्ति काव्य के लोकोन्मुखी यथार्थ और अलौकिकता में आश्रय लेनेवाले आदर्शों में अन्त विरोध था । इस अन्तर्विरोध को समझने पर ही स्पष्ट हो सकता है कि किस प्रकार उनके अलौकिक तत्वों को लेकर पीछे संप्रदाय और मठ खडे हो गए

7· हिन्दी साहित्य का इतिहास दर्शन : शिवकुमार - पृ· 18·

और लोकोन्मुखी यथार्थ ने 19 वीं के सांस्कृतिक पुनर्जागरण को बल दिया । इसी प्रकार नायिका भेद परक रीति काव्य का उद्गम समझने के लिए कृष्ण भक्ति काव्य के अन्तर्विरोध को समझना आवश्यक है । "[8]

2.5. गतिशीलता का नियम :-

परिवर्तन गति शीलता विकास की अनिवार्य स्थिति है । मार्क्स के अनुसार पदार्थ और गति सापेक्ष है । जिस प्रकार पदार्थ के अभाव में गति की कल्पना नहीं की जा सकती उसी प्रकार गति के अभाव में पदार्थ की स्थिति भी संभव नही है । इतिहास और साहित्येतिहास में भी एक परंपरा के विनाश हो जाने से दूसरी परंपरा जन्म लेती है । यही क्रम निरंतर चलता रहता है । द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया के विकास के तीन स्तर हैं थीसीस, एन्टीथीसिस और सिन्थसीस ।[9]

2.6. विकास तथा ऐतिहासिक प्रगति :-

इतिहासज्ञों ने प्राकृतिक परिवर्तन की प्रक्रिया के लिए विकास तथा ऐतिहासिक परिवर्तन के लिए प्रगति शब्द का प्रयोग अधिक उपयुक्त माना है । प्रगति की व्याख्या नैतिक मूल्यों के आधार पर की जाती है तभी विकास और प्रगति में भेद उत्पन्न होता है । हालांकि विकास प्रगति में निहित है ।

---

8. हिन्दी साहित्य का इतिहास दर्शन - शिव कुमार - पृ. 18.
9. साहित्येतिहास संरचना और स्वरुप - सुमन रा - पृ. 133.

ऐतिहासिक प्रगति को एक सिद्धान्त के रूप में स्वीकार करनेवाले विचारकों ने इसे ऐतिहासिक प्रक्रिया का अभिन्न अंग माना जाता है। कालिंगवुड ने इतिहास को विभिन्न युगों में विभाजित करके परवर्ति युग को पूर्ववर्ति युग से विकसित माना है। ऐतिहासिक प्रगति को एक सिद्धान्त के रूप में मान्यता वैज्ञानिक उन्नति के द्वारा ही प्राप्त हुई है। उन्नसवी शताब्दी में ही ऐतिहासिक प्रगति पर अधिक विचार संभव हो सका। डार्विन का विकासवादी सिद्धान्त कई इतिहासज्ञों तथा समाज शास्त्रियों के लिए प्रेरणा स्त्रोत बना रहा। मार्क्स ने भौतिकवादी दृष्टिकोण से तथा द्वन्द्वात्मक पद्धति के आधार पर ऐतिहासिक प्रगति विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। मार्क्स ने मानवेतिहास को व्याख्या के आधार पर विभिन्न युगों में विभाजित करके ऐतिहासिक प्रगति का सामाजिक परिवर्तन का संबंध उत्पादन के साधनों के परिवर्तन और विकास स्थापित किया।[10] स्पेंगलर आदि ने ऐतिहासिक प्रगति संबंधी अपनी चाक्रिक सिद्धान्त के आधार पर इतिहास और सभ्यता के अन्त की भी कल्पना की है। वस्तुत: प्रगति संबंधी चाक्रिक सिद्धान्त विकास के आरम्भ और अन्त की पूर्व धारणा को लेकर चलता है। ऐतिहासिक प्रगति इतिहास का यथार्थ है। प्रगति एवं प्रतिक्रिया की अवधारणाएँ निरर्थक नहीं हैं।

3.0. साहित्येतिहास दर्शन : परिभाषा और स्वरूप :-

परिभाषा :-

" साहितस्य भाव साहित्यम् " अर्थात् हित की भावना से युक्त जो है वही साहित्य है। रवीन्द्र ने साहित्य के द्वंद्व के बीच सामंजस्य विधान के रूप में देखा है। सामान्य साहित्य और रचनात्मक साहित्य दोनों का माध्यम भाषा

---

10. हिन्दी साहित्य का इतिहास दर्शन - शिवकुमार - पृ. 20.

ही है परन्तु दोनों में अन्तर है । " साहित्यकार भाषा का प्रयोग उसी तरह करता है जैसे मूर्तिकार पत्थर का, चित्रकार रेखा और रंग का और संगीतकार नाद का करता है । " [11] साहित्य की प्रक्रिया अनुभूति से प्रारम्भ हो कर अभिव्यक्ति के संप्रेषण पर समाप्त होती है ।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का इतिहास ही ऐसा है जिस ने सर्व प्रथम साहित्येतिहास को परिभाषित किया है एवं उसके लिए निश्चित पद्धतियाँ स्वीकृत की गई । शुक्ल जी के अनुसार - " जब कि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्त वृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है । आदि से अन्त तक इन्हीं चित्त वृत्तियों की परंपरा को परखते हुए साहित्य परंपरा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही साहित्य का इतिहास है । " [12] डा॰ नलिन विलोचन शर्मा ने अपने साहित्य के इतिहास दर्शन में इस प्रकार परिभाषित किया है - " साहित्येतिहास भी अन्य प्रकार के इतिहासों की तरह कुछ विशिष्ट लेखकों और उनकी कृतियों का इतिहास न होकर युग विशेष के समूह की कृति का इतिहास हो सकता है । " [13]

मैनेजर पाण्डेय के शब्दों में - " साहित्य का इतिहास अतीत की विलुप्त रचनाओं और रचनाकारों के उद्धार केवल साधना नहीं है वह काल प्रवाह में अपनी कलात्मक अक्षमता के कारण अपने अस्तित्व की रक्षा में असमर्थ रचनाओं और रचना -

---

11· शैली विज्ञान - भोलानाथ तिवारी - पृ॰ 32·

12· हिन्दी साहित्य का इतिहास - रामचन्द्र शुक्ल - पृ॰ 1·

13· साहित्य का इतिहास दर्शन - पृ॰ 5·

कारों का अजायब घर नहीं है ··· वह केवल महान प्रतिभाओं और महान रचनाओं का स्तुति गायन भी नहीं है । वह रचनाओं और रचनाकारों का ऐसा जंगल भी नहीं है जिसमें रचना और रचनाकार की अद्वितीयता खो जाए । साहित्य का इतिहास न तो रचनाओं की केवल अन्तर्वस्तु का इतिहास है और न केवल रूपों का । ···· साहित्य के इतिहास का आधार साहित्य के विकासशील स्वरूप की धारणा है । साहित्य की प्रगति, निरंतरता और विकासशीलता में आस्था के बिना साहित्य का इतिहास असंभव है । " 14

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि साहित्येतिहास कुछ विशिष्ट लेखकों एवं उनकी कृतियों मात्र का अध्ययन नहीं है वरन् युग विशेष की सामूहिक कृतियों का समन्वित अध्ययन है । इसमें एक सुनिश्चित ऐतिहासिक बोध होता है । इसमें युग तथा प्रवृत्तियों के विकास की चेतना का अनुसंधान होता है । साहित्येतिहास के लेखन में कल्याणकारी, दार्शनिक और समाज शास्त्रीय दृष्टि समाविष्ट रहते हैं ।

3·1· स्वरूप :-

साहित्येतिहास दर्शन साहित्य से सम्बन्धित सैद्धान्तिक तथा विश्लेषणात्म अध्ययन है । साहित्य के इतिहास से तात्पर्य देश काल के आयाम में विकसित साहित्य की समग्रता से भी है तथा भाषा द्वारा उसके व्याख्यात्मक विवरण से भी । साहित्येतिहास दर्शन उसके दोनों पक्षों पर विचार करता है इसलिए इसके दो प्रमुख पक्ष हैं - 1· सैद्धान्तिक पक्ष 2· व्यावहारिक पक्ष ।

14· साहित्य और इतिहास दृष्टि - मैनेजर पाण्डेय - पृ· 4·

सैद्धान्तिक रूप में यह चिन्तन साहित्य क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रहता । सैद्धान्तिक पक्ष की मुख्य समस्या है कारण-कार्य- श्रृंखला का निर्धारण इसके अन्तर्गत मुख्य विवेचन बिन्दु इस प्रकार देखा जा सकते हैं --

1. काल निर्धारण एवं नामकरण
2. युगेतिहास एवं साहित्य से उसका सम्बन्ध निर्धारण
3. भाषा एवं भौगोलिक क्षेत्र, सांस्कृतिक एवं जन जीवन का साहित्येतिहास की दृष्टि से प्रत्यक्षीकरण ।

व्यावहारिक पक्ष की मुख्य समस्या मूल्य बोध की है । इसको दो वर्गों[15] में रखा जा सकता है - 1. प्रवृत्ति बोध 2. साहित्य बोध । विद्वानों ने साहित्येतिहास दर्शन के सिद्धान्तों और साहित्येतिहासिक सामान्य परिकल्पनाओं की स्थापना में एक मत नहीं है । इस कारण साहित्येतिहास दर्शन के कई भेद दृष्टि गोचर होते हैं । इनमें प्रमुख हैं - जीव-शास्त्रीय, यांत्रिक भौतिकवाद, नव आदर्शवाद, समाज शास्त्रीय तथा ऐतिहासिक भौतिकवादी ।[16] साहित्ये - तिहास दर्शन के सिद्धान्तों का इतिहास दर्शन की वैज्ञानिकता पर ही नहीं साहित्य कला के अपने यथार्थ तथा उसकी विशिष्टता पर आधारित होना अत्यन्त आवश्यक है ।

व्यावहारिक साहित्येतिहास दर्शन साहित्य के इतिहास लेखन की समस्या से साक्षातकार करता है तथा उन्हे सुलझाने का प्रयत्न करता है ।

---

15. साहित्येतिहास संरचना और स्वरूप - सुमन राजे - पृ. 95.
16. हिन्दी साहित्य का इतिहास दर्शन - शिव कुमार - पृ. 64.

साहित्येतिहास दर्शन किसी भी विचारधारा पर प्रतिष्ठित हो उसकी एक साक्षी धुरी है । वह है साहित्येतिहास की गत्यात्मकता में विश्वास । इसीलिए इसका विरोध उन धाराओं से है जो साहित्य की विकास शीलता में विश्वास को मान्यता नहीं देती । वस्तुत: स्थिति यह है कि साहित्य का इतिहास, वस्तु, शिल्प चेतना तथा लक्ष्य की दृष्टि से कई मोड लेता हुआ गतिशील रहता है । इसके अतिरिक्त अतीत के साहित्य का भी नवीन युग में पूर्ण मूल्यांकन होता है । रेनेवेलेक के अनुसार – " साहित्य की संरचना गत्यात्मक है तथा यह पाठकों, आलोचकों तथा साथी कलाकारों के मस्तिष्क से गुजरती हुई इतिहास की प्रतिक्रिया में सदैव बदलती रहती है । इसलिए साहित्य को इतिहास निरपेक्ष मानना भ्रामक है । " [17]

4·0· साहित्येतिहास : विकास की समस्या :-

साहित्य के इतिहास में हो रहे परिवर्तन तथा विकास की समस्या से प्रत्येक इतिहासकार को जूझना पड़ता है परन्तु यह समस्या इतनी जटिल है कि अभी तक पूरी तरह हल नहीं हो सका । इतिहास लेखन की समस्या पहले वर्णन की समस्या होगी । हमें किसी एक रूढ़ि के ह्रास और पतन को ध्यान में रखकर देखना होगा । किसी विशेलक्षण में परिवर्तन क्यों आया यह समाधान से ऊपर की समस्या है । कुछ विचारकों ने साहित्य की विकास-शीलता की समस्या का अति सरलीकरण कर दिया है । इसका एक समाधान यह दिया जाता है कि साहित्य के विकास में ऐसी अवस्था आती है तब सब कुछ चुक जाता है । विकास की योजना परिवर्तन चक्र की तरह चलती है यह क्रान्तियों की एक श्रृंखला होती है जो शब्द चयन, विषय और अन्य साधनों के नए प्रयोगों की ओर निरंतर बढ़ती है ।

17· हिन्दी साहित्य का इतिहास दर्शन – शिवकुमार – पृ· 66·

4·1· जैविक विकास : साहित्येतिहास :-

कई दार्शनिक और इतिहासकारों ने जैविक विकास के नियमों का संस्कृति और साहित्य के विकास पर आरोप करके उनके इतिहास की व्याख्या प्रस्तुत की है । इन विचारकों के अनुसार साहित्यिक परंपराएँ भी प्राणियों की तरह जनमती है, यौवन को प्राप्त करती है तथा अन्त में नई परंपरा को जन्म देकर नष्ट हो जाती हैं । कोई भी साहित्यिक परंपरा जब उन्नत शिखर तक पहुँचती है तो उसे पुन: पताल का स्पर्श अनिवार्य हो जाता है । अर्थात् अंत में नष्ट हो जाती है ।

जैविक विकास तथा ऐतिहासिक विकास में साम्य के साथ भेद भी है । जूलियन हक्सले ने लिखा है - " मानवीय पक्षों में विकास की मुख्य इकाई जैविक जाति न होकर संस्कृति की धारा है और सांस्कृतिक उन्नति संचरणशील तकनीकों, कलाओं और कुशलताओं, आचार संहिताओ और धार्मिक विश्वासों इन सब के उपर ज्ञान और विचारों में होनेवाली परिवर्तन की तुलना में विकास गौण हो गया है ।"[18] साहित्यिक विकास जैविक विकास से नितान्त भिन्न है । साहित्य विकास को एक प्राकृतिक क्रिया के रूप में स्वीकार करती है और यह स्पष्ट नहीं होता कि साहित्य का विकास कैसे और क्यों संभव हुआ है ।

5·0· साहित्येतिहास दर्शन के प्रमुख आदर्शवादी प्रतिपादक :-

जैविक विकास के सिद्धान्त से प्रभावित होकर कई आदर्शवादी इतिहासज्ञों तथा संस्कृति के आचार्यों ने संस्कृत एवं साहित्य की गत्यात्मकता की व्याख्या भाववादी दृष्टिकोण से की है । इनमें स्पेंगलर, टाएनबी और सोरोकि के नाम उल्लेखनीय है ।

18· हिन्दी साहित्य का इतिहास दर्शन - पृ· 68·

(क) स्पेंगलर :-

(1880 - 1936) ओस्वाल्ड स्पेंगलर के आदर्शवादी इतिहास पर जीवन विज्ञान का पर्याप्त प्रभाव है। उन्होंने अपनी पुस्तक "डेक्लाइन आफ दि वेस्ट" में संस्कृति के विकास की व्याख्या जैविक सिद्धान्त के आधार पर की। उनके अनुसार जिस प्रकार मनुष्य का सावयविक विकास होता है उसी प्रकार संस्कृति का भी। वे मानव विकास को एक अदम्य प्रवाह के रूप में देखते हैं। "जल राशि के अपार विस्तार पर अनन्त तरंग मालाएँ क्रीडा करती हैं इस पर जहाँ जहाँ प्रकाश की तीखी किरणें डालती है और तरंग के शाश्वत नृत्य में अस्पष्ट और अदृश्य हो जाती है। इस प्रकार जातियाँ, कबीले, पीढ़ियाँ, वंश, समाज आदि प्रकट होते हैं और अपनी क्षणिक प्रभा के पश्चात् मानवता के प्रवाह में विलीन हो जाती हैं। इस मानव प्रवाह के बल पर महान संस्कृतियों के तरंगवृत चलते रहते हैं और अकस्मात् आविर्भूत होते हैं, सुन्दर आकृतियों में उभर उठती हैं फिर गिरने लगते है और विलीन होते है, जल का थल मन्द और सुषुप्त हो जाता है।"[19] संस्कृति भी एक प्राणी है और इसका जीवन भी जन्म जरा-मरण के क्रम में चलता है। स्पेंगलर के अनुसार संस्कृति के जीवन में भी बाल्यकाल यौवनकाल, प्रौढ़ता और वार्धक्य आते है। इन अवस्थाओं को ऋतुओं के क्रम में व्यक्त कर सकते है। बाल्यकाल की तुलना वसंत ऋतुसे की है इसमें कलाओं आदि का स्वरूप निश्चित होता है। संस्कृति का यौवनकाल ग्रीष्म ऋतु के समान होता है जिसमें सृजन शक्ति विकसित होती है। संस्कृति की प्रौढ़ावस्था वर्षाऋतु के समान है इसमें संस्कृति और कला अपने विकास के चरम शिखर पर पहुँचती है। संस्कृति की वृद्धावस्था शरद ऋतु के समान है जिसमें संस्कृति की चेतना मिटने लगती है आत्मा की शक्ति क्षीण

---

19. साहित्येतिहास संरचना और स्वरूप - सुमन राजे - पृ. 109.

होती है। इसमें संस्कृति शक्ति की नूतन सृजन-क्रिया में सलंग्न हो जाती है जिसके लक्षण शीतलता, संतुलन और कृत्रिमता होते है। इसे रीतिवाद भी कहते है। इसके बाद जीर्णता का युग आता है जिसमें संस्कृति फिर से जन्म लेने लगती है।

स्पेंगलर ने संस्कृति के जीवन क्रम की तरह कलाओं के आरम्भ और अन्त की कल्पना की है। [20]

§ ख § टायनवीं :-

§ 1889 § टायनवी ने अपने विशाल ग्रन्थ " दि स्टडी आफ हिस्टरी " में ऐतिहासिक विकास शीलता की व्याख्या के लिए दो सिद्धान्तों का निर्माण किया। 1• चुनौती तथा प्रत्युत्तर 2• सर्जनात्मक व्यक्तियों का प्रत्याहरण तथा प्रत्यागमन। [21] पहले सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य और सभ्यता बाहरी दबाव और अघात की चुनौतियों का उत्तर देते हुए विकास करते हैं। दूसरे सिद्धान्त में सभ्यता का विकास सृजनात्मक प्रतिभाओं का कार्य है तथा प्रत्याहरण-प्रत्यागमन की प्रक्रिया द्वारा विकास संभव है। वे जीव-विज्ञान के पश्चात उसका ह्रास और अन्त में लोप हो जाता है। उनके कथन के अनुसार सभ्यता का विकास सृजनात्मक व्यक्तियों और वर्गों का कार्य है जो जनता सामान्य स्तरों को अपनी प्रतिभा के कारण आकर्षण द्वारा अपनी ओर खींच लेती है। ये प्रत्यागमन और प्रत्याहरण की प्रक्रिया द्वारा कार्य करते हैं। जब सर्जनात्मक व्यक्तियों की प्रतिभा समाप्त होती है तब सभ्यता का विकास रुक जाता है। विकास की

20• हिन्दी साहित्य का इतिहास दर्शन - शिव कुमार - पृ• 69•

21• साहित्येतिहास संरचना और स्वरूप - सुमन राजे - पृ• 112•

अवस्था के बाद सभ्यता का क्षय शुरू हो जाता है । इस ह्रास और क्षय की प्रक्रिया संघटन और विघटन के क्रम से चलती है ।

साहित्य के विकास के स्पष्टीकरण के लिए उनका इतिहास दर्शन भी सहायक सिद्ध नहीं होता क्योंकि साहित्य न तो सदा बाहरी अथवा अन्तरिक चेतावनी के उत्तर के परिणाम स्वरूप विकसित होता है और न ही किसी प्राचीन सभ्यता के आरम्भ और अन्त के आधार पर विकास के अन्त की कल्पना की जा सकती है ।

§ग§ सोरोकिन :-

§ 1889 § सोरोकिन ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ " सोशल एण्ड कल्चरल डाइनेमिक्स " में मुख्यत: समाज और संस्कृति को ही अपने अध्ययन का विषय बनाया है और संस्कृति की गत्यात्मकता सम्बंधी सिद्धान्तों को साहित्य के इतिहास के लिए मान्य ठहराया है । उन्होंने " स्वभाविक परिवर्तन के सिद्धान्त को मान्यता देते हुए कहा कि " परिवर्तन के वास्तविक स्रोत का अन्वेषण सामाजिक तथा सांस्कृतिक व्यवस्था की प्रकृति के अन्तर्गत ही किया जाना चाहिए । उनके अनुसार परिवर्तन लाने की वस्तु या शक्ति बाहरी नहीं बल्कि स्वयं संस्कृति को अपनी प्रकृति में ही अन्तर्निहित है । सामाजिक परिवर्तन एक बहुत ही स्वभाविक प्रक्रिया है जो समाज के अन्दर ही क्रियाशील व्यक्तियों का परिणाम है । "[22] उन्होंने लिखा है कि " आर्थिकता संस्कृति की समग्रता की व्याख्या नहीं करती बल्कि एक संस्कृति के अन्तर्गत स्वयं संस्कृति का स्वरूप एवं उसकी प्रकृति सामाजिक जीवन की आर्थिक स्वव्यवस्था को निर्धारित करती है ।[23]

22• साहित्येतिहास संरचना और स्वरूप - सुमन राजे - 125

23• हिन्दी साहित्य का इतिहास दर्शन - शिव कुमार - 71•

इस प्रकार सामाजिक विकास संबंधी यह धारणा भौतिकवादी दृष्टिकोण से बिलकुल भिन्न है और समस्त परिवर्तन एवं विकास की संस्कृति की आंतरिक प्रवृत्ति का प्रति फल मानती है ।

सोरोकिन संस्कृति के विकास को तीन प्रकार से मानते है । 1• चेतनात्मक संस्कृति 2• भावनात्मक संस्कृति 3• आदर्शात्मक संस्कृति । उनके मिश्रण से ही अन्य गौण संस्कृतियों का अभ्युदय हुआ है । भावना प्रधान संस्कृति श्रद्धा और विश्वास पर आधारित है । चेतनात्मक संस्कृति तर्क, विज्ञान और परीक्षण पर आधारित है तथा आदर्श प्रधान संस्कृति दोनों का समन्वित रूप है। यद्यपि इनमें आध्यात्मिक और भौतिक मूल्यों का सुन्दर सामंजस्य होता है । फिर भी आध्यात्मिक प्रेरणा की प्रबलता रहती है ।

उपर्युक्त तीन प्रकार के संस्कृति-युगों के अनुरूप ही उन्होंने साहित्य के इतिहास के अन्तर्गत भी प्रकार के साहित्यिक युगों की परिकल्पना की है । साहित्य भी भावात्मक, चेतनात्मक और आदेशात्मक रूपों को ग्रहण करता है ।

सोरोकिननेअपने ग्रन्थ में " ऐतिहासिक विकास के प्रसिद्ध चाक्रिक सिद्धान्त को प्रतिष्ठित करने तथा न्याय संगत ठहराने का दृढ़ यत्न किया है । संस्कृति के परिवर्तन के चाक्रिक सिद्धान्त को उन्होंने साहित्यिक विकास की चक्रवादी व्याख्या प्रस्तुत की है । [24] इनके अनुसार साहित्यैतिहास में भी भावात्मक आदर्शवादी तथा प्रत्यक्षवादी साहित्य के युग आते है और अपना वृत पूरा करके समाप्त हो जाते हैं ।

24• हिन्दी साहित्य का इतिहास दर्शन - शिव कुमार - पृ• 72•

6·0· साहित्येतिहास लेखन पद्धतियाँ : विधेयवाद :-

भौतिक विज्ञान के सिद्धान्त के प्रभाव के परिणाम स्वरूप कुछ विद्वानों ने साहित्येतिहास की गति को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है । इसमें 19 वीं शती के विख्यात फ्रांसीसी इतिहासकार, साहित्येतिहास कार तथा मनोविज्ञानी " हिरपोलाइत तेन " 1823 का साहित्य के विकास संबंधी मत पर्याप्त वाद - विवाद का विषय रहा है । ये साहित्य एवं कलाओं के अध्ययन के लिए ऐतिहासिक विधानों को स्थापित करने वालों में से एक थे । जाति, वातावरण तथा ऐतिहासिक परिस्थितियों पर आधारित वैज्ञानिक धारणा पर उनका विश्वास था । " हिस्टरी आफ इंगलिश लिटरेचर " में उन्होंने साहित्य के इतिहास की उपर्युक्त धारणा पर अध्ययन प्रस्तुत किया है । उनके मतानुसार साहित्य का विकास तीन तत्वों जाति, वातावरण तथा युग विशेष की ऐति - हासिक परिस्थितियों के वशीभूत होता है । इस सूत्र के आधार पर कहा जा सकता है कि साहित्य जाति की मनोदशा के अनुसार विकसित होता है तथा युग की भौतिक एवं ऐतिहासिक परिस्थितियाँ उसकी दिशा नियंत्रित करती है ।

कई साहित्येतिहासकारों ने उनकी इस निर्णयवादी धारणा का विरोध करते हुए उसे यांत्रिक एवं अपूर्ण माना है । लुइज कसमिय ने साहित्य की ऐसी कठोर निर्णयात्मक योजना अकल्पित मानी है । इन्होंने इस सिद्धान्त को " लयात्मक परिवर्तन " कहा है । लेकिन उन्होंने यह नहीं कहा कि लयात्मक क्यों और कैसे होता है । वे केवल यह कह कर मूक हो जाते हैं कि साहित्य का विकास राष्ट्र के मस्तिष्क के विकास का अनुगामी है । इससे टेन की व्याख्या ही अधिक पूर्ण प्रतीत होती है । टेन ने दृढ़ता पूर्वक यह तो स्वीकार किया कि मनुष्य की स्थिति में प्रत्येक परिवर्तन द्वारा उसके मनो- विज्ञान में भी परिवर्तन होता है । उनके आदर्शवाद के प्रभाव से मुक्त नहीं हो सके । उनकी व्याख्या अन्त में जातिवाद बन जाती है ।

6·1· ऐतिहासिक भौतिकवाद : साहित्येतिहास दर्शन :-

साहित्य के इतिहास संबंधी शुद्ध साहित्यवादी धारण की अनैतिहासिक, जैविक, भाववादी और यांत्रिक भौतिकवादी साहित्येतिहास दर्शन की विभिन्न धारणाओं में समन्वय की असंगति को समझ लेने के बाद यह जरूरी हो जाता है कि साहित्य के इतिहास की व्याख्या के लिए किसी व्यापक और प्रामाणिक साहित्येतिहास दर्शन का आश्रय लिया जाय ।

यह भी निश्चित है कि साहित्येतिहास दर्शन सामान्य अथवा मानवेतिहास दर्शन का ही एक विशिष्ट अंग है । इसलिए उसके सिद्धान्त वैज्ञानिक इतिहास दर्शन से विस्तृत और पुष्ट होना चाहिए । ऐतिहासिक भौतिकवादी दर्शन मानव के इतिहास की समग्रता और वैज्ञानिक संदृष्टि है । इस साहित्येतिहास दर्शन पर कहा जा सकता है कि साहित्य का विकास समाज की गत्यात्मकता से जुडा हुआ है । साहित्यिक गतिविधियाँ ऐतिहासिक एवं वर्ग संघर्ष युक्त सामाजिक वातावरण में घटित होती हैं । साहित्यिक रचनाएँ साहित्य के इतिहास की घटनाएँ मात्र हैं । इन घटनाओं को ऐतिहासिक संदर्भ में रखकर व्याख्या किया जा सकता है । साहित्य के क्षेत्र में परिवर्तन और साहित्येतिहास में नए युग के प्रारम्भ के लिए मानवीय संबंधों के परिवर्तन जरूरी है । साहित्येतिहास विकास की व्याख्या के लिए ऐतिहासिक भौतिकवादी सिद्धान्तों का प्रयोग कलात्मक यथार्थ से दूर ले जाता है ।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि साहित्य का विकास सामाजिक विकास, सांस्कृतिक विकास से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से संबंध रखता है । प्रत्येक मानवीय प्रगति की तरह साहित्येतिहास की गति भी सर्पाकार है ।[25] साहित्येतिहास में

25· हिन्दी साहित्य का इतिहास दर्शन – शिव कुमार – पृ· 75·

भाषा एवं शिल्प को समझना आवश्यक है । साहित्येतिहास में किसी विशेष साहित्य धारा का प्रवर्तक किसी एक साहित्य धारा को मानना भ्रान्तिपूर्ण है क्योंकि वे ही साहित्य का मूल स्रोत नहीं है, सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों की तरह साहित्यिक मूल्य भी परिवर्तन शील है ।

साहित्य का विकास विशेष नियमों तथा साहित्येतिहास के सिद्धान्तों के योग से ही समझा जा सकता है । साहित्येतिहास में आस्था ही ठोस आधार है । साहित्येतिहास दर्शन की सार्थकता इसी में है कि वह सामाजिक यथार्थ तथा साहित्येतिहास के वैचारिक, भावात्मक तथा कलात्मक तथ्यों पर आधारित हो ।

7.0. हिन्दी और तेलुगु साहित्य के इतिहास : एक दृष्टि :-

साहित्य सृजन एक विशिष्ट प्रक्रिया है जो विशिष्ट समूह की बौद्धिक चेतना एवं सांस्कृतिक गतिविधियों से संबद्ध रहती है । विशिष्ट देश और भाषा वर्गों के भौतिक और बौद्धिक विकास के आधार पर इस साहित्य प्रक्रिया का विकास निर्भर रहता है । मानव समूह और देश की ऐतिहासिक परंपराएं और विशिष्टताएं संबद्ध साहित्येतिहास के विकास की दिशा निर्देश करती है । यह इतिहास भाषा के विकास के साथ भी जुडा हुआ रहता है । समय और संदर्भ साहित्य के काव्य रूपों विधाओं आदि को भी प्रभावित करती है । समान देश, काल, सांस्कृतिक परंपराएं, दार्शनिक एवं राजनीतिक परंपराएं आदि संबंद्ध दो साहित्यिक धाराओं का सम विकास भी संभव है । इस संभावना को दृष्टि में रखकर हिन्दी और तेलुगु के साहित्येतिहासों का एक सामान्य विवेचन साथ-साथ साहित्येतिहास लेखन परंपरा का भी सामान्य विवेचन प्रस्तुत है ।

7·1· हिन्दी साहित्य के इतिहास परंपरा :-

हिन्दी साहित्य का इतिहास अत्यन्त विस्तृत एवं कई शताब्दियों पुराना है । किन्तु उसे क्रम बद्ध करने का प्रयास बहुत बाद में हुआ । यही कारण है कि तत् संबंधी सामग्री एक जगह उपलब्ध नहीं है वरन् इधर-उधर बिखरी पडी है । जिन्हें सहेज कर रखने के लिए " नीर क्षीर " विवेक की आवश्यकता है । राम कुमार वर्मा ने ठीक ही कहा है - " किसी वन प्रदेश की शैवालिनी की भाँति हिन्दी साहित्य की धारा अबोध रूप से तो अवश्य प्रवाहित होती रही, किन्तु उसके उद्गम और विस्तार पर आद्यान्त और विस्तृत दृष्टि डालने का प्रयास बहुत दिनों तक नहीं हुआ । "[26] आधुनिक काल से पूर्व की सामग्री का संकलन भी नाम मात्र ही हुआ है । कालिदास कृत "हजारा ", बलदेव कृत " सत्कवि - गिरा विलास ", गोकुल नाथ कृत " दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता " और " चौरासी वैष्णवों की वार्ता " हिन्दी साहित्य के अध्ययन के लिए उपयुक्त सामग्री के रूप में स्वीकृत है । इन ग्रन्थों को आधुनिक युग के कवि वृत संग्रह या पूर्वाभास आवश्यक कहा जा सकता है लेकिन इतिहास नहीं क्योंकि इनमें साहित्य की प्रगति और विचारों की प्रवृत्ति का विवरण नहीं है ।

7·2· इतिहास लेखन का प्रारम्भिक युग :-

हिन्दी साहित्येतिहास निर्माण का सूत्र पात 19 वीं शती के उत्तरार्ध में एक फ्रेंच विद्वान " गार्सा-दा-तासी " ने " इस्तवार - दल - लितरात्यूर इंडुई - इन्दुस्तानी " नामक ग्रन्थ के रूप में किया इसमें अकारादि क्रम से हिन्दी और उर्दू

26· हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - राम कुमार वर्मा - पृ· 1·

कवियों और लेखकों का विवरण दिया है । तासी ने कवियों के रचना काल का निर्देश तो किया किन्तु काल विभाजन और युगीन प्रवृत्तियों के विवेचन की दिशा में उन्होंने कोई प्रयास नहीं किया । फिर भी प्रथम साहित्येतिहास के रूप में इस ग्रन्थ का महत्व निर्विवाद है । यह हिन्दी साहित्य के इतिहास संबंधी अनुसंधानात्मक विवृत संग्रह है ।

सन् 1883 ई॰ में शिव सिंह सेंगर ने " शिव सिंह सरोज " नामक ग्रन्थ लिखा जिसमें उन्होंने लगभग हजार कवियों का जीवन वृत्त, जन्म, काल, रचना - काल और कविताएँ प्रस्तुत किए है । इन्होंने जीवन वृत तथा रचनाओं का अनुसंधान करने का प्रयास किया है । " सरोज " का महत्व प्राचीनता तथा परिमाण दोनो दृष्टियों से है । " [27]

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से पूर्व हिन्दी साहित्येतिहास लेखन के क्षेत्र में जार्ज अब्रहम् ग्रियर्सन का कार्य अद्वितीय है । तासी तथा सेंगर के ग्रन्थों में जो अभाव खटकता है उसकी पूर्ति ग्रियसन महोदय ने की । उन्होंने " मार्डन वरना - क्युलर लिटरेचर आफ हिन्दोस्तान " लिखा [28] जिसमें उन्होंने प्रथम बार काल क्रमानुसार प्रस्तुत किया । साथ ही साहित्येतिहास के प्रवृत्यात्मकता के लिए यत्न किया । [29] मिश्र बन्धुओं ने " मिश्र बन्धु विनोद " नाम से हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखा जो सन् 1913 ई॰ में प्रकाशित हुआ । यह एक बृहत ग्रन्थ है,

---

27॰ साहित्य का इतिहास दर्शन - नलिन विलोचन शर्मा - पृ॰ 72॰

28॰ किशोरी लाल गुप्त द्वारा " हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास " के नाम अनुदित हुआ ﴾ 1957 ﴿

29॰ ग्रियसन केवल कालों का वर्गीकरण नही किया वरन् उन्हे उपर्युक्त नामों से अभिहित किया । शुक्ल जी ने आगे चलकर उसकी सहायता ली - सुमन शराजे - पृ॰ 305॰

जो चार भागों में विभक्त है। इसमें पांच हजार कवियों का विवरण प्राप्त होता है। लेखक ने इतिहास को आठ काल-खण्डों में विभक्त किया और प्रत्येक युग के साहित्यकारों के साहित्यिक महत्व का मूल्यांकन किया।

मिश्र बन्धुओं के बाद अंग्रेजी में दो छोटे-छोटे इतिहास ग्रन्थ लिखे गए उनमें एक "एडविन ग्रीव्स" का "ए स्केच आफ हिन्दी लिट रेचर" तथा दूसरा "ए. ई. के. महोदय का "एक हिस्टरी आफ हिन्दी लिटरेचर।" के महोदय ने काल विभाजन का थोडा बहुत प्रयास किया है।

हिन्दी साहित्येतिहास लेखन का परिपक्व एवं प्रौढ़ रूप आचार्य राम चन्द्र शुक्ल कृत "हिन्दी साहित्य का इतिहास" में प्रथम बार दृष्टि गोचर होता है। उनका इतिहास ग्रन्थ युग प्रवर्तन तो है ही उन्होंने परवर्ति, साहि - त्येतिहास लेखन को पर्याप्त प्रभावित किया। [30] डा. सुमन राजे ने इस युग को शुक्ल युग का नाम दिया। [31] शुक्ल ने प्रथम बार साहित्येतिहास को परिभाषित किया है। उनके अनुसार - "जब कि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है आदि से अन्त तक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परंपरा को परखते हुए साहित्य परंपरा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना है। साहित्य का इतिहास कहलाता है।" [32] आचार्य शुक्ल का काल विभाजन अत्यन्त स्पष्ट और सुलभ है। सर्व प्रथम पुष्ट आधारों के सहारे काल विभाजन एवं युगों के नाम करण तथा सामग्री के सुव्यवस्थित वर्गीकरण ने शुक्ल जी के इतिहास को परवर्ति इतिहासकारों के लिए अनुकरणीय बना दिया है। [33]

---

30. हिन्दी साहित्य का इतिहास - शिव कुमार - पृ. 136.
31. साहित्येतिहास संरचना और स्वरूप - पृ. 3.
32. हिन्दी साहित्य का इतिहास - राम चन्द्र शुक्ल - पृ. 1.
33. - वही - पृ. 137.

शुक्ल जी के साहित्येतिहास से प्रभावित होकर कुछ साहित्येतिहास निकले जिनमें श्याम सुन्दर कृत " हिन्दी भाषा और साहित्य " रमा शंकर शुक्ल रसाल कृत " हिन्दी साहित्य का विवेचात्मक इतिहास " इत्यादि । हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन के विकास काल में शुक्ल जी ने ही नवीन मोड दिया और इतिहासकारों ने उनका मात्र अनुकरण किया ।

7.3. साहित्येतिहास लेखन का वर्तमान युग :-

साहित्येतिहासिक विकास के क्रम में परंपरा को पहचानने और रेखांकित करने का जो काम शेष रह गया था, उसकी पूर्ति हजारी प्रसाद द्विवेदी के साहित्य के इतिहास में हुई । द्विवेदी ने प्राचीन परंपराओं के सातत्य की खोज की और इस आधार पर आचार्य शुक्ल की कई मान्यताओं का खण्डन किया और नवीन पद्धति का सूत्रपात किया । डा. सुमन राजे का मत है " शुक्ल युग के इतिहास लेखन की कमियों को आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अच्छी तरह अनुभव किया था । पहली बार उन्होंने इतिहास को सांस्कृतिक तथा सामाजिक पीठिका पर स्थान दिया । उन्होंने किसी बृहत इतिहास ग्रन्थ की रचना की परन्तु उनकी विभिन्न कृतियों में इतिहास दर्शन एवं हिन्दी साहित्य के इतिहास से संबंधित उनके जो विचार है वे एक नए युग का प्रारम्भ करने में समर्थ हैं ।" 34 द्विवेदी जी के इतिहास ग्रन्थ इस प्रकार है --

1. हिन्दी साहित्य की भूमिका
2. हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास
3. हिन्दी साहित्य का आदिकाल ।

---

34. हिन्दी साहित्येतिहास संरचना और स्वरूप - पृ. 122.

द्विवेदी के अतिरिक्त साहित्येतिहास लेखन के जो अन्य व्यक्तिगत प्रयास हुए हैं उनके द्वारा किसी नई पद्धति का विकास नहीं हुआ । फिर भी डा॰ गणपति चन्द्र गुप्त कृत " हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास " डा॰ शंभुनाथ सिंह कृत " हिन्दी काव्य की सामाजिक भूमिका ", डा॰ राम खेलावन पाण्डेय कृत " हिन्दी साहित्य का नया इतिहास " उल्लेखनीय है। क्यों कि इनमें दृष्टि कोण अथवा काल विभाजन संबंधी नवीनता लाने का प्रयत्न किया गया है ।[35] इन के अतिरिक्त लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय का " आधुनिक हिन्दी साहित्य " कृष्णलाल का " आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास " वार्ष्णेय जी का " आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका ", भोलानाथ कृत " हिन्दी साहित्य " उल्लेखनीय है ।

वर्तमान युग में हिन्दी साहित्येतिहास की एक अन्य परंपरा का प्रचलन हुआ । वे है साहित्येतिहास के सामूहिक प्रयत्न । ये प्रयत्न संस्थाओं और व्यक्तियों की ओर से बृहत इतिहास लेखन योजनाएं, साहित्य की समस्त उपलब्ध सामग्री को समेटने का तथा सुव्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करने की महत्त्वकांक्षा के परिणाम हैं । सामूहिक प्रयत्न से जो कार्य हुए हैं उनमें नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित " हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास " (16 भागों की योजना) भारतीय हिन्दी परिषद द्वारा मुद्रित " हिन्दी साहित्य " (3 भागों की योजना) तथा नगेन्द्र द्वारा संपादित " हिन्दी साहित्य का इतिहास " उल्लेखनीय हैं । उपर्युक्त साहित्येतिहासों के अतिरिक्त अनेक शोध प्रबन्ध अथवा शोधपूर्ण ग्रन्थ लिखे गए जो साहित्य की नयी सामग्री की दृष्टि प्रदान करते हैं । इन ग्रन्थ कर्ताओं में परशुराम चतुर्वेदी, प्रभुदयाल, विजेन्द्र स्नातक, विनय मोहन शर्मा, राम मूर्ति त्रिपाठी,

---

35· हिन्दी साहित्य का इतिहास दर्शन - पृ· 13·

सुमन राजे और शिव कुमार इत्यादि उल्लेखनीय है । इस प्रकार हिन्दी साहि - त्येतिहास लेखन की परंपरा धीरे-धीरे वैज्ञानिकता की ओर अग्रसर अवश्य हुई इस लिए यह भविष्य का कथन निराधार नहीं होगा कि भावी साहित्येतिहास वैज्ञानिक दृष्टि को अपना कर लिखे जाएंगे ।

7.4. हिन्दी साहित्येतिहास का काल विभाजन और नामकरण :-

साहित्येतिहास लेखन की प्रक्रिया अत्यन्त जटिल है । पर काल विभाजन और वर्गीकरण तो वहीं अधिक विवादस्पद और कठिन भी बनते है । जिस प्रकार इतिहास के काल को तीन खण्डों में बाँटने की परंपरा है उसी प्रकार समस्त साहित्येतिहास को भी आदिकाल, मध्यकाल और आधुनिक काल में विभाजित करने की पद्दति अब भी प्रचलित है । यहाँ भी इतिहासकार को तीन काल खण्डों में काल निर्धारण की समस्या से जूझना पड़ता है । एक युग की कालविधि कब से कब तक मानी जाए इस प्रश्न का उत्तर सरल नहीं है । इसके लिए साहित्येतिहास में चार पद्धतियों का अवलंबन किया गया है जिनको ओर गणपति चन्द्र गुप्त ने संकेत किया है । पहली पद्धीत के अनुसार संपूर्ण इतिहास का विभाजन चार युगों अथवा काल खण्डों में किया गया है --

1. आदिकाल 2. भक्तिकाल 3. रीतिकाल 4. आधुनिक काल

दूसरे क्रम के अनुसार केवल तीन युगों की कल्पना ही विवेक सम्मत है ।

1. आदि काल 2. मध्यकाल 3. आधुनिक काल

तीसरी पद्धति के अनुसार साहित्य का विभाजन विधा क्रमश: करती है । इसका आधार समस्त साहित्य राशि का एक अध्ययन करने की अपेक्षा कविता तथा गद्य साहित्य की विविध विधाओं के इतिहास का वर्गीकृत अध्ययन साहित्य - शास्त्र के अधिक अनुकूल है --- इनके अतिरिक्त एक और ऋजु पद्धति है जो शुद्ध काल क्रम के अनुसार वस्तुगत विभाजन को ही अधिक मानती है । [36]

साहित्य के इतिहास लेखन में काल विभाजन तब संभव हुआ जब साहित्य के विकास को काल सापेक्ष मानकर युग की अवधारणा को स्वीकृति मिली । उन्नीसवीं शती से साहित्येतिहास को युगेतिहास से जोड़ने के तीव्र प्रयास हो गए थे । और युग सम्बंधी अवधारणा का उद्भव भी तभी हुआ । साहित्य के विकास को कालों में विभाजित करने का कोई भी प्रयास अन्तिम नहीं माना जा सकता । वस्तुत: साहित्य एक अखण्ड विकास प्रक्रिया का परिणाम है । जैसे-जैसे नए युग आते जाएंगे साहित्य के काल विभाजन को बार-बार सुधारने की आवश्य - कता पड़ती रहेगी । हिन्दी साहित्येतिहास को कई इतिहासकारों ने कई तरह से विभाजित किया है । उसका विवरण निम्न प्रकार से है --

काल विभाजन की दिशा में जार्ज ग्रियर्सन ने सर्व प्रथम प्रयत्न किया है । उन्होंने काल विभाजन के साथ ही विभिन्न कालों के नामकरण भी किए है । उन्होंने पूरे इतिहास को निम्न लिखित ग्यारह खण्डों में वर्गीकृत किया है ।

1. चारणकाल (700 से 1300 ई.)
2. पन्द्रहवीं शताब्दी का धार्मिक पुनरुत्थान
3. मलिक मुहम्मद जायसी की प्रेम कविता

---

36. हिन्दी साहित्य का इतिहास (सं. नगेन्द्र) गणपति चन्द्र गुप्त - लेख पूर्व पीठिका - पृ. 256.

4· ब्रज का कृष्ण संप्रदाय (1500 – 1600 ई·)

5· मुगलदरबार

6· तुलसीदास

7· रीति काव्य (1560 – 1692 ई·)

8· तुलसी के अन्य परवर्ति कवि (1600 – 1700 ई·)

9· (अ) धार्मिक कवि (आ) अन्य कवि

10· अठारहवीं शताब्दी (1700 – 1800 ई·)

(अ) धार्मिक कवि (आ) अन्य कवि

11· कंपनी के शासन में हिन्दुस्तान (1800 – 1851)

12· महारानी विक्टोरिया के शासन में हिन्दुस्ताना । [37]

उपर्युक्त काल विभाजन में अनेक त्रुटियाँ हैं । हिन्दी साहित्य का आविर्भाव सन् 700 ई· से मानकर प्रथम खण्ड में अधिकांशत: अपभ्रंश साहित्य को ही स्थान दिया । इस भ्रान्ति ने काल विभाजन के परवर्ति प्रयत्नों को भी प्रभावित किया । कालों के विभाजन और नामकरण के मूल में कोई निश्चित आधार नहीं है । इन त्रुटियों के बावजूद श्री ग्रियर्सन का काल विभाजन ऐतिहासिक महत्व रखता है । मिश्र बन्धुओं ने अपने " मिश्र बन्धु बिनोद " में काल विभाजन में नई सूझ-बूझ का परिचय दिया है । सुमन राजे के शब्दों में " काल विभाजन की दृष्टि से भी " मिश्र बंधु विनोद " प्रगति की दिशा में बढ़ती हुई नज़र आती है । " [38] उन्होंने साहित्य के इतिहास को अनेक खण्डो में बांटने का यत्न किया । उनका काल विभाजन इस प्रकार है —

37· हिन्दी साहित्य का इतिहास दर्शन – पृ· 168·

38· हिन्दीत्तेतिहास संरचना और स्वरूप – पृ· 307·

1· आरम्भिक काल	:	पूर्वारंभिक काल ([700 ई॰ - 1343])
		उत्तरारम्भिक काल ([1344 - 1444])
2· माध्यमिक काल	:	पूर्वमध्य काल ([1445 ई॰ - 1560])
		उत्तरमध्यकाल ([1561 ई॰ - 1680])
3· अलंकृत काव्य	:	पूर्वालंकृत काल ([1681 - 1790])
		उत्तरालंकृत काल ([1791 - 1889])
4· परिवर्तन काल	:	1890 - 1925 वि॰
5· वर्तमान काल	:	1926 - आज तक ।[39]

उपर्युक्त काल विभाजन तथा उसके सर्वेक्षण के आधार पर कहा जा सकता है कि मिश्र बन्धुओं ने भाषा विकास को काल विभाजन के प्रमुख आधार के रूप में प्रतिष्ठित किया है । इसमें काल क्रम की रक्षा करते हुए साहित्य की विकास - प्रक्रिया को रेखांकित किया गया है ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने पूर्ववर्ति वर्गीकरण को ध्यान में रखकर काल क्रम के साथ साहित्यिक प्रवृत्तियों को भी वर्गीकरण का आधार बनाया है । काल और प्रवृति के उक्त आधारों को ग्रहण करने के कारण ही उन्होंने विभिन्न वर्गों को दूसरे नाम दिए हैं । उन्होंने नौ सो वर्षों के इतिहास को चार कालों में विभक्त किया है ।[40]

1· आदि काल (वीर गाथा काल 1050 - 1375)
2· पूर्व मध्यकाल (भक्ति काल 1375 - 1700)
3· उत्तर मध्यकाल (रीति काल 1700 - 1900)
4· आधुनिक काल (गद्यकाल 1900 - आज तक)

39· हिन्दी साहित्य का इतिहास दर्शन - पृ॰ 177·

40· हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ॰ 1·

शुक्ल जी के अनुसार " यद्यपि इन कालों की रचनाओं की विशेष प्रवृत्ति के अनुसार ही इनका नामकरण किया गया है पर यह न समझना चाहिए कि किसी विशेष काल में और प्रकार की रचनाएँ होती ही नहीं थी । [41] शुक्ल जी का यह प्रवृत्तिगत वर्गीकरण आगे चलकर विशेष लोकप्रियता अर्जित कर सका ।

डा॰ राम कुमार वर्मा ने हिन्दी साहित्य के युगों का सीमा-निर्धारण और नामकरण भी शुक्ल जी के अनुरुप ही किया । उन्होंने शुक्ल के वर्गीकरण में ही प्रारम्भ में " सन्धिकाल " नाम से एक काल जोड़ कर अपने काल-विभाजन को संपन्न किया है । उनका वर्गीकरण इस प्रकार है । [42]

1· संधिकाल ({सं· 750 - 1000 वि·})
2· चारण काल ({सं· 1000 - 1375 वि·})
3· भक्ति काल ({सं· 1375 - 1700 ई·})
4· रीतिकाल ({1700 - 1900 ई·})
5· आधुनिक काल ({1900 - आज तक})

डा॰वर्मा ने संधिकाल के रुप में शुक्ल जी के वर्गीकरण में कोई नवीनता दिशा का उद्घाटन नहीं किया है वरन् ग्रियसन के चारण काव्य और मिश्रबन्धुओं को " आरम्भिक " काल की पुनरावृत्तिकर काल विभाजन में उस पुनरावृति को स्थान दिया । उनके काल विभाजन में विशेष नवीनता नहीं है । उनका वर्गीकरण इस प्रकार है --

---

41· हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ· 7·
42· हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - पृ· 4·

1· हिन्दी साहित्य का आदिकाल (1000 - 1400)

2· भक्ति काल का आविर्भाव

3· रीति काव्य (16 वीं शताब्दी के मध्य से)

4· आधुनिक काल (1800 - 1952)

उन्होंने भक्ति काल के लिए कोई तिथि नहीं दी । आचार्य शुक्ल के काल विभाजन की त्रुटियों का सतर्क पर्यालोचन और प्रतिपादन करते हुए एक नवीन वर्गीकरण प्रस्तुत करने का श्रेय डा· गणपति चन्द्रगुप्त जी को है । गुप्त जी ने परंपराओं और युगीन परिस्थितियों के संदर्भ में साहित्यिक प्रवृत्तियों अनुशीलन को लक्ष्य बनाकर अपना वर्गीकरण इस प्रकार प्रस्तुत किया है । वे शालिभद्रसूरी कृत " भारतेश्वर बाहुबलिरास " को हिन्दी की प्रथम रचना मानकर सन् 1184 से हिन्दी साहित्य के इतिहास का आरम्भ माना है । उनका वर्गीकरण इस प्रकार है ।

1· प्रारम्भिक काल सन् 1184 - 1350 ई·

2· मध्यकाल 1350 से 1857

(अ) पूर्व मध्यकाल (आ) उत्तर मध्य काल

3· आधुनिक काल 1857 - 1964 ई·

नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा निश्चित हिन्दी साहित्य के वृहत इतिहास लेखन के अधीन 16 भागों का प्रकाशन हो चुका है । वास्तव में हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास साहित्य का इतिहास क्रम और ज्ञान का संचित भण्डार अधिक है । इनका वर्गीकरण इस प्रकार है --

हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास ﴾ 16 भाग ﴿

1· हिन्दी साहित्य की ऐतिहासिक पीठिका - प्रथम भाग
2· हिन्दी भाषा का इतिहास - द्वितीय भाग
3· हिन्दी साहित्य का उद्‌भव और विकास - तृतीय भाग
4· भक्तिकाल ﴾निर्गुण भक्ति ﴿ चतुर्थ भाग
5· भक्तिकाल ﴾ सगुण भक्ति ﴿ पंचम भाग
6· श्रृंगार काल ﴾ रीतिबद्ध ﴿ षष्टम भाग
7· श्रृंगार काल ﴾ रीति मुक्त ﴿ सप्तम भाग
8· हिन्दी साहित्य का अभ्युत्थान ﴾ भारतेन्दु काल ﴿ अष्टम भाग
9· हिन्दी साहित्य का उत्कर्षकाल ﴾ द्विवेदी काल ﴿ नवम भाग
10· हिन्दी साहित्य का उत्कर्षकाल ﴾ काव्य ﴿ दशम् भाग
11· हिन्दी साहित्य का उत्कर्ष कवि नाटक एकादश भाग
12· हिन्दी साहित्य का उत्कर्षकाल ﴾ उपन्यास ﴿ द्वादश भाग
13· हिन्दी साहित्य का उत्कर्ष काल ﴾ समालोचन ﴿ त्रयोदश भाग
14· हिन्दी साहित्य का अद्यन काल - चतुर्दश भाग
15· हिन्दी शास्त्र तथा विज्ञान - पंचदश भाग
16· हिन्दी साहित्य का लोक साहित्य - षोडदश भाग

अब तक काल विभाजनों तथा हिन्दी साहित्य की वर्तमान प्रगति को ध्यान में रखकर समूचे साहित्यिक विकास को इस प्रकार विभाजित किया जा सकता है --

1· हिन्दी साहित्य का आरम्भिक काल सं· 700 - 1375 तक
2· भक्ति काल ﴾ सं· 1375 से 1625 तक ﴿

(क) संत काव्य (ख) सूफीकाव्य

(ग) राम काव्य (घ) कृष्ण काव्य

3. रीति काल (सं. 1625 - 1857 ई.)

(क) रीतिबद्ध (ख) रीति मुक्त

4. आधुनिक काल (सं. 1857 से आज तक)

7.5. साहित्येतिहास : नामकरण :-

हिन्दी साहित्य के आरम्भिक काल को साहित्येतिहास लेखकों ने अनेक नामों से अभिहित किया है। सर्व प्रथम जार्ज ग्रियर्सन ने कर्नल टाड की ऐतिहासिक - खोजों से प्रभावित होकर इसका नाम " चारण काल " रखा है। उनका मत है कि " हिन्दुस्तान की प्राचीनतम भाषा साहित्य राजपूतानों के चारणों द्वारा रचित ऐतिहासिक गाथाएँ है। "[43] मिश्र बन्धुओं ने इस काल को " आरम्भिक काल " कहा है। उन्होंने पुष्प या पुंड को हिन्दी का प्रथम कवि माना है। मिश्र बन्धुओं के पश्चात " के " महोदय ने हिस्टरी आफ हिन्दी लिटरेचर " में इस युग को " प्राचीन चारण काल " का नाम दिया है। रामचन्द्र शुक्ल ने साहित्यिक प्रवृत्ति और रचनाओं की प्रचुरता तथा प्रसिद्ध के आधार पर हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक काल को " वीर गाथा काल " कहना अधिक उचित समझा है। उन्होंने 12 वीर काव्यों का उल्लेख भी किया है।[44] डा. राम कुमार वर्मा ने इस युग को दो भागों में विभाजित किया है -[45]

---

43. हिन्दी साहित्य का इतिहास - हरिश्चन्द्र वर्मा - रामनिवास गुप्त - पृ. 36.
44. हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ. 36.
45. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - पृ.

1· सन्धिकाल 2· चारण काल ।

राहुल सांस्कृत्यान ने अपने ग्रन्थ " हिन्दी साहित्य धारा " में ऐतिहासिक स्थिति तथा 27 कवियों कीवाणी के आधार पर इस युग को " सिद्ध सामन्त युग " माना है । डा· हजारी प्रसाद द्विवेदी ने प्रथम युग को " आदिकाल " कहना अधिक उचित माना है । [46] उपयुक्त नामकरणों को दृष्टि में रखकर इसयुग को " हिन्दी साहित्य का उद्भवकाल " कहे तो अधिक समीचीन होगा ।

हिन्दी साहित्य के मध्ययुग को जार्ज ग्रियर्सन ने प्रवृत्ति ऐतिहासिकता और कवि के आधार पर इसे 8 भागों में विभक्तकर आठ नामों ने अभिहित किया है ।

1· पद्रहवीं शताब्दी का धार्मिक पुनरुत्थान
2· मलिक मुहम्मद जायसी की प्रेम कविता
3· ब्रज का कृष्ण संप्रदाय
4· मुगल दरबार
5· तुलसीदास
6· रीति काव्य
7· तुलसी के अन्य परवर्ति कवि
8· धार्मिक कवि (इनका यह नामकरण भ्रमात्मक है ।

मिश्र बन्धु विनोद में मिश्र बन्धुओं ने ऐतिहासिकता और प्रवृत्ति विशेष के आधार पर इसे " मध्यमिक काल " और " अलंकृत काल " कहा है । आचार्य राम चन्द्र शुक्ल ने इसे " पूर्व मध्यकाल " व " उत्तर मध्यकाल " कह इस काल की मुख्य प्रवृत्ति भक्ति और रीति को आधार मानकर " भक्तिकाल " और रीतिकाल " भी कहा है ।

46· हिन्दी साहित्य का आदिकाल - हजारी प्रसाद द्विवेदी

डा॰ रामकुमार वर्मा ने इस युग को " भक्ति काल " और "रीति " काल के नाम से पुकारना ही उचित माना । आचार्य द्विवेदी जी ने इस युग को " भक्ति का आविर्भाव " और " रीति काव्य " कहकर युग प्रवृत्ति को ही प्रधानता दी है । शीलभद्र शूही ने इस युग को " पूर्व मध्य काल " और " उत्तर मध्यकाल " कहा है । इन नामकरणों के आलोकन के बाद इस युग को " भक्ति काल " और " रीतिकाल " कहना ही अधिक उचित होगा ।

साहित्येतिहास के आधुनिक युग के इतिहास लेखकों ने कई नामों से पुकारा है । ग्रियर्सन ने " अठारहवीं शताब्दी में भारत ", " कंपनी के शासन में हिन्दुस्तान और " महारानी विक्टोरिया के शासन में हिन्दुस्तान " का नाम दिया । इन्होंने नामकरण में इतिहास को ही आधार माना है । मिश्र बन्धुओं ने इस नवीन युग को " परिवर्तन काल " और " वर्तमान काल " के नाम से पुकारा है । आचार्य राम चन्द्र शुक्ल ने इस युग को " आधुनिक काल " कह कर गद्य साहित्य को महत्व देते हुए " गद्य काल " भी कहा है । डा॰ राम कुमार वर्मा ने भी इसे " आधुनि काल " ही कहा है । इस प्रकार अधिकांश साहित्येतिहासकार इस युग को आधुनिक काल मानना ही उचित समझा है ।

7•6• तेलुगु साहित्येतिहास : लेखन परंपरा : -

तेलुगु में सर्व प्रथम साहित्येतिहास लिखने का श्रेय " वीरेश लिंगम पंतुलु " को है । इनसे पूर्व आन्ध्र महाकवियों और प्रचलित पुराण गाथाएँ ही प्रचलन में थी । उत्कृष्ट रूप से कोई भी साहित्येतिहास नहीं लिखा गया। ऐसी स्थिति में श्री वीरेश लिंगम पंतुलु ने " आन्ध्र कवुल चरित्र " (आन्ध्र कवियों का इतिहास) का निर्माण सन् 1917 ई॰ में किया । " कवुल चरित्र " को इन्होंने प्रचलित पौराणिक गाथाओं और शिला लेखों की सहायता से रचा है । इसमें काल क्रमानुसार

कवियों का विवरण दिया गया है। कवियों को ध्यान में रखते हुए उन्होंने काल विभाजन भी किया है। 47

श्री गुरजाड राममूर्ति ने भी कवियों को प्रधानता देते हुए " कवि जीवित - मुलु " (कवियों की जीवनियाँ) नामक ग्रन्थ लिखा। इसमें कवियों की रचनाओं को आधार बनाया गया है। कहा जाता है कि " कवुल चरित्र " से पूर्व ही इस रचना का प्रणयन हुआ है। कवियों को दृष्टि में रखकर ही काल क्रम रखा गया है।

यद्यपि उपर्युक्त दोनो ग्रन्थों में कवियों को प्रधानता दी गयी है फिर भी इसे पूर्ण रूप से साहित्येतिहास नहीं कहा जा सकता है। श्री वंगूरि सुब्बाराव का " आन्ध्रवाङ्मय चरित्र (आन्ध्र साहित्य का इतिहास) सन् 1952 ई॰ में लिखा गया। इसे तेलुगु का प्रथम पूर्ण साहित्येतिहास माना गया है। यद्यपि लेखक ने नवीन मार्ग का अनुसरण किया और इससे पूर्व रचित ग्रन्थों की अपेक्षा यह ग्रन्थ साहित्य के इतिहास की परिभाषा के निकट है। किन्तु यह भी समग्र दृष्टि से नहीं है। इन्होंने काल विभाजन पर ध्यान नहीं दिया। 48

श्री भोगराजु नारायण मूर्ति ने "आन्ध्र कवित्व चरित्रमु " लिखा। इसमें कविता का विवरण दिया गया है। केवल कविता का इतिहास है। साहित्य का इतिहास नही कहा जा सकता।

श्री एन॰वेंकट राव ने शोध और अन्वेषणों के उपरान्त " तेलुगु साहित्य के बृहत इतिहास " (1968) की रचना प्रारम्भ की। इसके दो खण्ड है।

---

47. आन्ध्र कवुल चरित्र - खण्डवील्ल लक्ष्मी रंजनम् - पृ॰ 1.

48. तेलुगु साहित्य का इतिहास - बालशौर रेड्डी - पृ॰ 36.

आरुद्रा जी का " समग्र आन्ध्र साहित्यम् " ‌‌‌§ 1965 § साहित्येति - हासिक ग्रन्थ के रूप में एक तर्क पूर्ण तथा समग्र ग्रंथ माना जा सकता है । इन्होंने अब तक प्राप्त साहित्येतिहासों के अवलोकन के बाद इसका प्रणयन किया है । इसमें लौकिक दृष्टि को अपनाया है । सामान्य भाषा में, 12 भागों में यह ग्रन्थ लिखा गया है । [49] हर भाग में एक युग का विवरण दिया गया है । उन्होंने काल विभाजन राजवंशों को ध्यान में रखकर किया है ।

पिंगलि लक्ष्मीकान्तम् जी ने " आन्ध्र साहित्य चरित्र " नामक साहित्य का इतिहास लिखा ।' लेकिन यह अपूर्ण ग्रन्थ है । इसमें उन्होंने प्रबंध युग तक ही लिखा इसके बाद उनका देहवासन हुआ ।

खण्डवल्लि लक्ष्मीरंजनम् § 1965 § ने " आन्ध्र वाङ्मय चरित्र " लिखा है । इसमें उन्होंने राजवंशों को ध्यान में रखकर काल विभाजन किया है । इसमें कवियों और साहित्यिक विधाओं का विवरण है किन्तु इसे भी पूर्ण साहित्येतिहासिक ग्रन्थ नहीं कहा जा सकता ।

के॰वी॰ नारायण राव कृत " आन्ध्र वाङ्मय चरित्र संग्रहम् " भी उल्लेखनीय ग्रन्थ है । इस ग्रन्थ में लेखक ने कुछ निश्चित सिद्धान्तों का पालन किया है । उनके आधार पर तेलुगु साहित्य को पांच भागों में रखा है । आवश्यकतानुसार विषय और युग की परिस्थियों का सम्यक परिचय देने के विचार से उप विभाग भी किए गए है । कवियों के परिचय के साथ साहित्य में उनका स्थान भी निर्धारित किया गया है । डा॰ जी॰ नागय्या ने " तेलुगु साहित्य समीक्षा " नामक साहित्येतिहास दो भागों में लिखा । § 1983-85 § इनका ग्रन्थ साहित्येतिहास की दृष्टि से पूर्ण कहा जा सकता है । इन्होंने कवि और प्रवृत्ति दोनो को प्रधानता देकर काल विभाजन किया है ।

49· समग्र आन्ध्र साहित्यम् - आरुद्र - प्रथम भाग भूमिका - पृ· 3·

इसप्रप्रकार देखते है कि तेलुगु में साहित्येतिहास की रचना हिन्दी की तुलना बहुत कम हुई है । इनमें संपूर्ण साहित्येतिहास बहुत कम है । इन सब साहित्येतिहासों में डा॰जी॰नागय्या के " तेलुगु साहित्य समीक्षा " को शीर्ष स्थान दिया जा सकता है क्यों कि साहित्येतिहास के लक्षण इसमें अधिक गोचर है ।

7·7· तेलुगु साहित्य का काल विभाजन - नामकरण :-

युग का मतलब कुछ समान विशिष्ट नियमों की काल सीमाएँ है । [50] साहित्य के आरम्भ से लेकर अब तक उसे अनेक युगों मे विभाजित किया जाता रहा है । तेलुगु साहित्य के इतिहास के काल विभाजन के संबंध में अनेक मत भेद है । तेलुगु साहित्य के इतिहासकारों ने रचना की सुविधा के लिए साहित्य को कुछ युगों में विभाजित किया है ।

तेलुगु साहित्य के इतिहासकारों ने कवियो, मार्ग-दर्शक महाकवियों, आश्रयदाता अथवा राजवंशों के मिश्रित रूप को ध्यान में रखकर काल विभाजन किया है । इनमें महा कवियों को रखकर किया गया । काल विभाजन प्रशस्त एवं उचित माना गया है । डा॰ सी नारायण रेड्डी के अनुसार - "जो अपनी रचनाओं द्वारा वर्तमान ही नहीं बल्कि भावी लोगों में भी अभिनवोत्तेजन का प्रसार करवायेंगे जो परवर्ति कवियों के लिए अनुकरण बनेंगे वे ही साहित्य के क्षेत्र में युग कर्ता बनेंगे । [51]

तेलुगु में साहित्य के लिए किए गए काल विभाजन कुछ इस प्रकार है --

---

50· तेलुगु साहित्य समीक्षा - जी·नागय्य - पृ· 9 (प्रथम भाग)

51· आधुनिकान्ध्र कवित्वमु - संप्रदायालू - पृ· 181·

तेलुगु साहित्य के इतिहास के काल विभाजन का सर्व प्रथम प्रयास युग निर्माता वीरेशलिंगम् पंतुलु ने किया है । उन्होंने अपने " आन्ध्र-कवुल चरित्रम् " को अधिक सरल बनाने के लिए कवियों के काल क्रम के अनुसार तीन भागों में बाँटा है । [52]

1· प्राचीन कवि (सन् 1100 - 1500 ई·)
2· मध्य कवि (सन् 1500 - 1650 ई·)
3· आधुनिक कवि (सन् 1650 - 1900 ई·)

यह कवियों का इतिहास ही बन सका है साहित्य का इतिहास नहीं । श्री गुरजाड राममूर्ति ने अपने ग्रन्थ " कवि जीवितमुलु " में कवियों की कृतियों को आधार बनाकर विभाजन किया है --

1· महा भारत के कवि
2· रामायण के कवि
3· प्रबन्धों के कवि

परन्तु विषय की दृष्टि से तेलुगु में प्रबन्ध काव्य ही नहीं अपितु नाटक कहानी, उपन्यास, जीवनियाँ, समीक्षा ग्रन्थ, शतक और खण्ड काव्य आदि लिखे गए हैं। इसलिए इनका काल विभाजन पूर्ण नहीं कही जा सकता ।

श्री·के·वी नारायण राव " आन्ध्र वाङ·मय चरित्र संग्रहम् " में मिश्रित पद्धति में काल विभाजन किया है --

---

52· तेलुगु साहित्य समीक्षा - जी· नागय्या - पृ· 35·

प्रथम खण्ड :-

1· प्राचीन कविता ‖ 21 से 1000 तक ‖

द्वितीय खण्ड : पुराण कविता ‖ ई· 1001 से 1380 तक ‖

‖अ‖ चालुक्य-चोड युग ‖ ई· 1001 से 1200 ‖
‖आ‖ काकतीय युग ‖ 1200 से 1380 ई· ‖

तृतीय खण्ड : काव्य तथा प्रबन्ध कविता

‖ अ ‖ रेड्डी, नायक और कर्नाटक काव्य ‖ 1381 - 1650 ‖
‖ आ ‖ श्री रायल युग ‖ 1501 - 1650 ‖

चतुर्थ खण्ड : अर्वाचीन कविता ‖ सन् 1651 से 1900 ‖

‖ अ ‖ मध्ययुग - शतक ‖ 651 - 1800 ई· ‖
‖ आ ‖ सन्धियुग - ‖ 1801 से 1900 ई· ‖

पंचम खण्ड : नव युग ‖ 1901 - आज तक ‖ [53]

इस ग्रन्थ में लेखक ने काव्य रचना, काल और काव्य रूपों के आधार पर साहित्य के विकास क्रम का विभाजन किया है जो अत्यन्त युक्ति संगत प्रतीत होती है ।

श्री आरुद्रा जी कवियों के पोषक राजवंशों और जमीनदारों के आधार पर अपने " समग्र आन्ध्र साहित्यम् " में युग विभाजन इस प्रकार किया है :-

---

53· तेलुगु साहित्य का इतिहास - बाल शौर रेड्डी - पृ· 37·

1· आदिम युग : (सन् 12 वी शती के अन्त तक)
2· काकतीय युग (सन् 1200 ई· - 1290 ई·)
3· पद्म नायक युग (सन् 1300 ई· - 1375)
4· रेड्डी नायक युग (सन् 1375 - 1450 ई·)
5· गजपति युग (सन् 1435 - 1450 ई·)
6· प्रथम रायल युग (सन् 1450 - 1500 ई·)
7· पर रायल युग (सन् 1500 ई· - 1550 ई·)
8· नवाब युग (सन् 1550 ई· - 1600 ई·)
9· अरवीट राजयुग (सन्·1650 - 1670 ई·)
10· नायक राज युग (सन् 1670 ई· - 1750 ई·)
11· परवर्ति राजयुग (सन् 1750 ई· - 1850 ई·)
12· आधुनिक युग (सन् 1900 - आज तक)[54]

काव्य को लेकर युग विभाजन करने वालों में आचार्य दिवाकर्ल वेंकटावधानी है उन्होंने " आन्ध्र वाड·मय चरित्रम " में काव्य प्रक्रिया (विधा) को आधार बनाया है। वह इस प्रकार है --

1· प्राग्ड·न्ननय नन्नय युग या अज्ञात युग
2· पुराण युग या भाषान्तीकरण युग
3· काव्य युग
4· प्रबन्ध युग
5· गद्य गेय या यक्षगान या दक्षिणान्ध्र युग
6· खण्ड काव्य या भाव कविता या आधुनिक युग[55]

54· तेलुगु साहित्य समीक्षा - पी· नागय्य - पृ· 11·
55· तेलुगु साहित्य समीक्षा - पी·नागय्य - पृ· 12·

तेलुगु के आलोचक श्री कोराड राम कृष्णय्या (आन्ध्र वाङ्मय चरित्र) में युग विभाजन नामक एक निबंध में तेलुगु साहित्य के इतिहास को निम्न प्रकार विभाजित किया है ।

1. अज्ञात युग या नक्षय पूर्व युग (ई. सन् - 1000 तक)
2. भाषान्तरीकरण युग या कवित्रय युग (1000 - 1350)
3. सन्धि युग या श्रीनाथ युग (1350 - 1500)
4. प्रबंध युग (1500 - 1700)
5. दक्षिण देश वाङ्मय युग (1700 - 1800)
6. आधुनिक युग (1900 - आज तक)[56]

आचार्य पिंगलि लक्ष्मी कान्तम् जी ने " आन्ध्र वाङ्मय को स्थूल रूप में परीक्षण कर इसे दस युगों में विभाजित किया है --

1.	प्राडनन्नय युग	(ई.पू. 200 - सन् 1000 ई.)
2.	नन्नय युग	(11 वीं शताब्दी)
3.	शिव कवि युग	(12 वी शताब्दी)
4.	तिक्कना युग	(13 वी शताब्दी)
5.	एर्रना युग	(स. 1330 - 1350 ई.)
6.	श्रीनाथ युग	(1350 ई. - 1500 ई.)
7.	कृष्ण देव रायल युग	(1500 - 1600 ई.)
8.	दक्षिणान्ध्र युग	(1600 ई. - 1775 ई.)
9.	क्षीण युग	(1775 - 1875 ई.)
10.	आधुनिक युग	(1875 आज तक)

---

56. तेलुगु साहित्य समीक्षा - जी.नागय्य - पृ. 13.

7·8· नामकरण :-

तेलुगु साहित्येतिहास लेखन में युगों को साहित्येतिहासज्ञों ने अनेक नामों से पुकारा है । तेलुगु साहित्येतिहास के नामकरण में यद्यपि एक रूपता नहीं है फिर विवेचन के लिए एक दृष्टि जरूरी है ।

आरंभिक काल को सर्व प्रथम वीरेश लिंगम पंतुलु ने कवियों को आधार मानकर " प्राचीन कवि " का नाम दिया है । यह पूर्ण रूप से साहित्येतिहास नहीं माना जाता । गुर जाड राम मूर्ति ने इस काल को " महा भारत के कवि " कह कर पुकारा है । श्री के·वी·नारायण राव ने इस युग को " प्राचीन कविता ", " पुराण कविता " कहकर इसे रंजवंशों के साथ जोडा । इसीलिए " चालुक्य युग " और " काकतीय युग " के नाम से अभिहित किया । श्री आरुद्र जी ने " आदिम - युग ", " काकतीय युग " और " पद्म नायक " का नाम दिया है । नामकरण में आरुद्र जो ने राजवंशों को ही प्रधानता दी है । आचार्य दिवाकर्ल वेंकटावधानी ने " प्राङनन्नय युग या अज्ञात युग ", " पुराण युग या भाषान्तरीकरण युग " का नाम दिया है । कोराड रामकृष्णय्या ने " अज्ञात युग या नन्नय पूर्वयुग ", " भाषान्तरी करण युग या कवित्रय युग " का नाम दिया है । पिंगलि लक्ष्मी-कान्तम ने " प्राङ्गनन्नय युग ", " नन्नय युग ", " शिवकवि युग और तिक्कना युग " कह कर कवियों को प्रमुखता देते हुए नामकरण किया है । इन नामकरणों को दृष्टि में रखकर इस युग को प्रारम्भिक तेलुगु कविता युग " कहा जा सकता है ।

मध्यकाल को तेलुगु साहित्येतिहास कारों ने अनेक नामों से पुकारा है । वीरेशलिंगम पंतुलु ने " मध्य कवि " कहा है । श्री गुरुजाउ राममूर्ति ने " रामयण के कवि " और " प्रबंध कवि " कह कर पुकारा है । श्री·के·वी·नारायण राव ने " काव्य तथा प्रबन्ध कविता " कहकर पुनः राजवंशों को प्रधानता देते हुए

" रेड्डी नायक, कर्नाटक युग काव्य " और " श्री रायल युग " कहा है । श्री आरुद्र जी ने " रेड्डी नायक युग ", " गजपति युग, ", " प्रथम रायल युग " और " पर रायल युग " तथा " नवाब युग " के नाम देकर राजवंशों को प्रधानता दी है । दिवाकर्ल वेंकटावधानी ने " काव्य युग ", " प्रबन्ध युग " और दक्षिणाध्र युग " नाम दिये हैं । कोराडा राम कृष्णय्या ने " श्रीनाथ युग " और " प्रबंध युग " नाम दिये है । पिंगलि लक्ष्मी कान्तम ने " तिक्कना युग ", " एर्रन्न युग ", " श्रीनाथ युग ", " कृष्ण देव रायल युग " नाम दिये हैं। इन नामकरणों के अवलोकन के बाद इसे " मध्य युगीन तेलुगु कविता " कहकर पुकारा जा सकता है ।

आधुनिक काल को वीरेश लिंगम ने " आधुनिक कवि " कहा है । श्री के॰वी॰ नारायण राव ने " अर्वाचीन युग " का नाम देकर " सन्धि युग " और " नव युग " का नाम भी दिया है । श्री आरुद्र जी ने इस युग को " आधुनिक युग " के नाम से अभिहित किया । दिवाकर्ल वेंकटावधानी ने "खण्ड काव्य युग " या " भाव कविता युग " और " आधुनिक युग " के नाम से पुकारा है । पिंगलि लक्ष्मी कान्तम् ने " आधुनिक युग " का नाम दिया है । इस युग के लिए सभी साहित्येतिहास कारों में एक रूपता दिखाई देती है ।

8·0· तुलनात्मक अनुशीलन :-

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर तेलुगु और हिन्दी साहित्येतिहास लेखन परंपरा का आरम्भ आधुनिक युग में ही हुआ । तेलुगु हिन्दी साहित्येतिहास में प्राय: भिन्न-भिन्न दृष्टियों से साहित्येतिहास का लेखन कार्य संपन्न किया गया । साहित्येतिहास लेखन कार्य में इतिहासकार का दृष्टि कोण परंपरा - प्रवृत्यात्मकता, कवि-व्यक्ति परक दृष्टि और युग बोध रहा है । दो भिन्न दृष्टि कोणों से संपन्न

किए गए साहित्येतिहासों में समानताओं से अधिक असमानताएँ ही मिलती हैं। तेलुगु और हिन्दी साहित्येतिहास में मिलने वाली समानताएँ और असमानताएँ इस प्रकार है ।

हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन का प्रारम्भ पाश्चात्य विद्वानों द्वारा हुआ है तो तेलुगु साहित्य के इतिहास लेखन में पाश्चात्यों का कोई योगदान नहीं है ।

हिन्दी साहित्येतिहासकारों ने परंपरा परक दृष्टिकोण को अपनाया है तो तेलुगु साहित्येतिहास कारों का परंपरा परक दृष्टिकोण नहीं रहा । यह प्रवृत्ति और परंपरा हिन्दी साहित्य के इतिहास में दिखाई देती है । प्रकृति को महत्व देकर उसी के आधार पर हिन्दी साहित्येतिहास कारों ने काल विभाजन किया है । लेकिन तेलुगु साहित्येतिहास कारों ने कवियों को, राज - नीतिक परंपराओं को महत्व देकर काल विभाजन किया है । हिन्दी में राजवंशों को उतना अधिक महत्व नहीं दिया गया है ।

तेलुगु साहित्य इतिहास में काव्य रूपों को आधार बनाकर काल विभाजन किया गया है । हिन्दी साहित्येतिहास में काव्य वस्तु को आधार बनाकर प्रवृत्ति निरूपण की परंपरा मिलती है ।

इस प्रकार तेलुगु और हिन्दी साहित्येतिहास लेखन परंपरा की एक सामान्य रूप रेखा मिलती है ।

१.0. तुलनात्मक साहित्येतिहास : काल विभाजन की रूप रेखा :-

साहित्य का सृजन प्राय: आश्रय में ही होता है । आश्रय केन्द्र - राज्य, धर्म और लोक । क्रमश: दरबार, मन्दिर और समाज ही ये केन्द्र हैं । इनकी प्रेरणा से श्रेण्य साहित्य, धार्मिक साहित्य और भक्ति साहित्य एवं सुधारवादी साहित्य का प्रादुर्भाव सामान्यत: भाषा साहित्यों में देखा जा सकता है । ये भिन्न परंपराओं भिन्न काव्य रूपों और भिन्न प्रकार की वस्तु से साहित्य को संपन्न करते हैं जब साहित्येतिहास लेखन तुलनात्मक साहित्येतिहास रचना में संपन्न होता है तब इन सबका समन्वय होता है ।

तुलनात्मक साहित्येतिहास में दो भिन्न प्रान्तो के साहित्येतिहासों का तुलना की दृष्टि से एक सम्यक विवेचन प्रस्तुत किया जाता है । आचार्य जीन.एन. रेड्डी ने लिखा है कि " अडोस पडोस की भाषाओं या भिन्न देशों या प्रान्तों के साहित्यों की तुलना, उनमें उभरने वाले साम्य वैषम्यों का सम्यक परिशीलन ही तुलनात्मक अध्ययन है । यह अर्वाचीन पद्धति है । वर्तमान युग में तुलनात्मक अध्ययन पद्धति को साहित्य के क्षेत्र में अतुलनीय प्रधान्यता है । यह जातीय एकता के भाव उत्पन्न करने में सहायक है । "[57] साहित्येतिहास की रचना युग विभाजन प्रवृत्ति निरूपण, परंपराओं का सामाजिक परि प्रेक्ष्य और गति विधियों से समन्वय स्थापना दिशा निर्देश तत्व इत्यादि के साथ संपन्न होता है। इसके अतिरिक्त साहित्येतिहास का संबंध, क्षेत्रीय इतिहास, भाषा परक इतिहास, सांस्कृतिक और मानसिक दशा के साथ भी रहता है । ये सभी तुलनात्मक साहित्येतिहास के लिए आवश्यक अनुशीलन के अंग बनते हैं ।

---

57. डा. जी.नागय्य कृत " दक्षिणात्य साहित्य समीक्षा " प्रथम भाग की भूमिका ।

साहित्येतिहास में युग विभाजन या काल विभाजन अध्ययन की सुविधा को दृष्टि में रखकर ही किया जाता है । हिन्दी में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आदिकाल, मध्यकाल और आधुनिक काल । यह युग विभाजन मानक बन गया है । इनके उपविभाजन, देशी भाषा, साहित्य युग, वीर गाथा काल, भक्तिकाल, रीतिकाल आदि संज्ञाओं से उभरे है । इस प्रकार का एक मानक काल विभाजन तेलुगु साहित्येतिहास में नहीं मिलता । तेलुगु साहित्येतिहास- कारों ने युग विभाजन के तीन आधार मानते है - राजवंश, कविव्यक्तित्व और काव्य रूप अथवा काव्य रचना प्रकृति । इस प्रकार के विभाजन हिन्दी में नहीं मिलता । युग विभाजन दृष्टि कोणों से युग विभाजन को संपन्न करने का प्रयास तुलनात्मक साहित्येतिहास में होना है । जहाँ काल विभाजन में समानता नहीं है वहाँ साहित्येतिहास रचनाकार को अपना नया मार्ग ढूँढना पड़ता है । यह अत्यन्त कठिन और श्रम साध्य है । इसका एक मार्ग काल खण्डों में साहित्य के इतिहास के समय को अपने अनुरूप बाँटना है/ यहाँ भाषा विकास के इतिहास और देश के इतिहास का सहारा लेना सहायक हो सकता है ।

भारत का सौभाग्य है समस्त आधुनिक भाषाओं का आरम्भिक समय लगभग एक ही है । यह सातवी शताब्दी और आठवीं के बीच का ठहरता है । वहीं से भाषा में साहित्य सृजन आरम्भ होता है अर्थात् देश की व्यावहारिक भाषाओं में साहित्य रचना के लिए इसी समय स्वीकृत की गई है । वहीं से भाषा की गति-विधियों और विकास की काल सीमाओं पर ध्यान देने से कुछ साम्य समस्त भारत के क्षेत्र में मिल जाते हैं । तेलुगु और हिन्दी इसके अपवाद नहीं है । इतना ही नहीं समस्त भारतीय साहित्यिक परंपराएँ, प्रमुखतः संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश की परंपराएँ, इन साहित्यो की भूमिका में रही हैं और समान रूप से प्रभावकारी भी रहीं हैं । इस दृष्टि से काल गत सीमाओं का वर्गीकरण कुछ इस प्रकार हो सकता है --

सन् 700 - 900 तक-संक्रान्ति युग

सन् 900 - 1325 तक - आरम्भिक युग

सन् 1325 - 1850 तक - भाषा काव्योत्थान युग

सन् 1850 - आज तक - आधुनिक युग

इन काल खण्डों को देश के इतिहास की भूमिका में रखकर देखे तो आवश्यक कुछ सामान्य तुलनीय विशेषताएं सामने आती है जिनके आधार पर भी भाषा इतिहास और साहित्य की गति विधियों को प्रेरित करने वाली प्रवृत्तियों में समन्वय बिठाया जा सकता है । इतना ही नहीं समय के साथ सांस्कृतिक संपर्क समन्वय के प्रेरक तत्व और परिवर्तन की समय सीमाएं भी इन्ही काल सीमाओं में मिलती है । इस भूमिका में तुलनात्मक साहित्येतिहास के काल विभाजन को मान्यता देना सुविधा जनक भी हो सकता है ।

उपर्युक्त बातों को दृष्टि में रखकर देखा जाए तो देश के साहित्य के इतिहास के तुलनात्मक अध्ययन के लिए इस प्रकार देखा जा सकता है ।

प्रथम खण्ड 1. संक्रान्ति युग सन् 700 - 900

(अ) अज्ञात युग

(आ) अपभ्रंश काल

(इ) देशी भाषा काल

द्वितीय खण्ड 2. आरम्भिक युग - सन् 900 - 1325

(अ) धर्माश्रित काव्य

(आ) राज्याश्रित काव्य

(इ) लोकाश्रित काव्य

तृतीय खण्ड – 3 भाषा काव्योत्थान युग – 1325 – 1850

(अ) भक्ति साहित्य

(आ) प्रबन्ध

(इ) मुक्तक

(ई) गेय

(उ) श्रेण्य साहित्य

(ऊ) प्रबन्ध काव्य

(ए) मुक्तक काव्य

(ऐ) लक्षण लक्ष्य काव्य

(ओ) अन्य काव्य

चतुर्थ खण्ड – 4 आधुनिक युग 1850 – अब तक

यह साहित्य सृजन के क्षेत्र में प्रवृत्तियों, वादों, विभिन्न विधाओं और बदलते संदर्भ को लेकर चलता है। यही स्थिति साहित्य को प्राप्त होनेवाले आश्रय केन्द्रों में भी दिखाई देती है। पूर्व युगों के आश्रय केन्द्र इस युग में प्राय: लुप्त हो जाते हैं और उनके स्थान पर नए केन्द्र स्थापित हो जाते हैं। इस युग की गति में 1850 के बाद शीघ्र परिवर्तन और नए काव्य रूपों एवं प्रयोगों का पादुर्भाव ध्यान देने योग्य है। इस युग का अध्ययन प्राय: वाद-विवादों और काव्य रूपों के साथ-साथ समय की दिशाओं से प्राप्त वैज्ञानिक साधनों के प्रभाव से व्युत्पन्न नई प्रक्रिया के साथ जुडकर चलता है। इन सबको दृष्टि में रखकर तुलनात्मक साहित्येतिहास की रचना होनी चाहिए।

द्वितीय अध्याय

मध्य युगीन राज्य, राजनैतिक हलचल एवं समाज साहित्यिक संरक्षण

मध्य युगीन राज्य, राजनैतिक हलचल एवं समाज : साहित्यिक संरक्षण

2.0. प्रस्तावना :-

प्रादेशिक इतिहास की गतिविधियों का और साहित्य के इतिहास की परिस्थितियों का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध रहता है । साहित्यिक इतिहास का अनुशीलन प्रादेशिक इतिहास के साथ जुडकर महत्वपूर्ण बन जाता है । प्राचीन काल से लेकर बारहवीं शताब्दी तक का काल प्राचीन भारत के नाम से प्रसिद्ध है । पश्चात् 18 वीं शताब्दी तक का समय मध्यकाल कहा गया है । इस मध्यकाल को सुविधा की दृष्टि से दो उपभागों में विभाजित किया जाता है ।

1. पूर्व मध्य काल (12 वीं से 16 वीं शती तक)
2. उत्तर मध्य काल (16 वीं से 19 वीं शती तक)

पूर्व मध्यकाल के राजनीतिक और सामाजिक इतिहास की स्थिति-गतियों का तेलुगु-हिन्दी प्रान्तों के साथ तुलनात्मक दृष्टि से विवेचन इस अध्याय का लक्ष्य रहा है ।

2·1· पूर्व पीठिका :-

भारतीय इतिहास के मध्यकाल में हिन्दी और तेलुगु प्रान्तों में शासन करने वाले राजवंशों का मुख्य ध्येय राजनीतिक एकता स्थापित करना था । इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अनेक साम्राज्यों का अवतरण हुआ । इस साम्राज्य स्थापना के युग में मगध साम्राज्य उल्लेखनीय है । इस प्रकार मौर्य साम्राज्य, गुप्त साम्राज्यों का भारत के इतिहास में विशेष महत्व है । अनेक राजपूतों ने स्वतंत्र राज्यों को स्थापित कर लिए थे जिनमे उत्तर के गुर्जर वंश, प्रतिहार, गाड्वाल, चौहान, कुलचरी, दक्षिण के चालुक्य, राष्ट्रकूट, चन्देल, परमार और कच्छ आदि राज्य प्रमुख हैं ।

राजपूतों के पारस्परिक संघर्ष के कारण मध्यकाल के पूर्व अर्थात 962 ई· तक ही भारत में मुसलमानों के आक्रमण आरंभ हो गए । सन् 920 ई· के लगभग काबुल के समीप गजनी ने अपना राज्य स्थापित किया । मुहम्मद गजनवी ने आर्थिक दृष्टि से आक्रमण किए है । लेकिन मुहम्मद गौरी साम्राज्य स्थापना की महत्वाकांक्षा लेकर भारत में आक्रमण किए । इस प्रकार गुजरात, सिंधु, पेशावर, पंजाब, लाहौर आदि मुसल मानों के अधीन हो गए । सन् 1198 तक कन्नौज भी मुसलमानों के हाथ आ गया । सन् 1206 से 1290 ई· तक गुलाम वंश का शासन रहा । सन् 1236 से सन् 1240 तक रजिया का शासन रहा । इसके बाद बादमशाह, अलाउद्दीन, मसउद्शाह, बल्बन और गयासुद्दीन शासन पर आए । दास वंश के आखरी सुल्तान कैकुबाद के बाद शासनाधिकार खिलजीवंश के हाथ आ गया ।

2·2· खिलजी वंश (सन् 1290 – 1320 ई·)

गुलाम वंश के पतन के बाद शासनाधिकार खिलजियों ने प्राप्त किया । तुर्कों का एक वर्ग जो असंतुष्ट अफगान सरदार सुल्तानों द्वारा उपेक्षित रखा, उसकी निष्ठाओं को प्राप्त करने के लिए खिलजियों ने अफगान होने का लाभ उठाया ।[1] खिलजी वंश का प्रथम सुल्तान जलालुद्दीन खिलजी बडा कुशल था । उसने समस्त शक्तिशाली व्यक्तियों को ऊंचे पदों में नियुक्त करके दिल्ली वालों को अपनी ओर मिलाया । इस प्रकार उसने सफल शासक बन कर दिल्ली में प्रवेश किया । खिलजी को अनेक विद्रोहों का सामना करना पड़ा । राजपूतों और मंगोलों के विरुद्ध सैनिक अभियान भेजने पडे और उन विद्रोहों का दमन किया गया । सुल्तान ने अपनी स्थिति पूरी तरह मजबूत किया । वृद्ध सुल्तान का एक महत्वाकांक्षी[2] भतीजा अल्लाउद्दीन था । जिसने पूर्वी भारत पर और दक्खिन में सफल आक्रमण किए । सन् 1296 ई· में अल्लाउद्दीन ने देवगिरि पर विजय प्राप्त किया । अल्लाउद्दीन ने सुल्तान की हत्या करवादी ।[3] यादव राजा से प्राप्त स्वर्ण और धन से सरदारों की निष्ठा खरीदकर स्वयं को सुल्तान घोषित किया ।

खिलजी वंश अद्वितीय शासक अल्लाउद्दीन ने अपने अधिकांश समय युद्धों में बिताया । उसने पहले उत्तर भारत पर आक्रमण किया । मंगोलों के आक्रमणों के दमन के बाद सुल्तान ने अपने साम्राज्य का विस्तार किया । उसने गुजरात, रणथम्भोर, चित्तौड, मालवा, देवगिरि, वरंगल, द्वार समुद्र और मलबार पर आक्रमण किया और उन प्रान्तों को अपने राज्य में मिलाया । इस प्रकार

1· भारत का इतिहास – रोमिला थापर – पृ· 222·

2· – वही – पृ· 223·

3· भारत वर्ष का इतिहास – रतिभानुसिंह नाहर – पृ· 174·

अल्लाउद्दीन ने उत्तर और दक्षिण को मिलाकर एक छत्र साम्राज्य की स्थापना की थी । अल्लाउद्दीन के बाद कुतुबुद्दीन मुबारक शाह, नासिरुद्दीन खुसरोशाह आदि सुल्तान रहे किन्तु अयोग्य सुल्तानों के कारण खिलजी वंश का अंत हो गया । सन् 1320 ई॰ में दिल्ली सिंहासन गाजी मालिक गियासुद्दीन तुगलक के अधिकार में आ गया ।

2॰3॰ तुगलक वंश : (सन् 1320 – सन् 1412 ई॰)

जिस समय गियासुद्दीन तुगलक सिंहासन पर बैठा था तब साम्राज्य की दशा छिन्न-भिन्न हो चुकी थी । केन्द्रीय शासन की दुर्बलता के कारण साम्राज्य की सीमा संकुचित हो गई । हिन्दू राजा एवं सरदार स्वतंत्र होने की अपनी - अपनी योजनाएँ बना रहे थे । प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ जोर पकड़ रही थी । मंगोल, खोखर एवं अन्य जातियाँ षडयंत्र रचा रहे थे । पंजाब, सिंध, गुजरात जो दिल्ली साम्राज्य का अंग माना जाता था । अब बुरी अवस्था को प्राप्त किए । राजपूत अपने अधिकार जमाने के भरसक प्रयत्न में थे । दक्षिण में भी लगभग यही दशा थी । गियासुद्दीन ने वरंगल, उडीसा पर विजय प्राप्त किया । लखनौती को भी दिल्ली में मिला लिया । सन् 1324 ई॰ में गियासुद्दीन की मृत्यु हो गई ।

गियासुद्दीन की मृत्यु के बाद उनका पुत्र मुहम्मद बिन तुगलक सिंहासनासीन हुआ । कुछ इतिहासज्ञ उसके असाधारण कार्यों के लिए उसे पागल कहते हैं ।[4] संभवत: अलाउद्दीन के विचारों से प्रेरित होकर मुहम्मद बिन तुगलक भी एक भारत व्यापी साम्राज्य स्थापित करना चाहता था । उसकी आर्थिक नीति इन महत्वकांक्षाओं पर

4॰ भारत का इतिहास - रोमिला थापर - पृ॰ 227॰

आधारित थी । उसका पहला कार्य दो अरब पर राजत्व में वृद्वि करना था । इसलिए उसने दो अरब की जनता पर वृद्वि कर लगा दी दुर्भाग्य से जिस समय उसने लगान बढ़ाया उसी समय दो आब में अकाल पड गया । मुहम्मद का अगला कार्य सुदूर दक्षिण में दक्षिण प्रान्त और उसके निकट प्रान्तो जिन्हे वह सल्तनत में मिलाना चाहता था, वहीं नई राजधानी स्थापित करना था । इसके लिए उसने नई राजधानी दौलताबाद यादवों के पुराने देवगिरि में स्थानान्तरित करने का आदेश दिया । यदि यह स्थानान्तरण दरबार तक ही सीमित होता तो ठीक था परन्तु मुहम्मद ने समस्त प्रजा को भी वहाँ जाने का आदेश दिया । राजधानी परिवर्तन में पूरी तरह असफल होकर तुगलक अपनी राजधानी पुनः दिल्ली बदल दी । इस बीच अन्य परेशानियाँ भी पैदा हो गई । चितौड का किला राजपूतों ने पुनः अपने हाथ ले लिया था । बंगाल के राज्यपाल ने विद्रोह कर दिया । मंगोलो ने सिंधु को लूट लिया जिसे शान्त करने के लिए सुल्तान को अपार धन खर्च करना पड़ा । इन समस्याओं से निपटकर मुहम्मद ने पुनः मध्य एशिया में सेना भेजने का निश्चय किया । परन्तु इसके लिए और अधिक धन की आवश्यकता थी । इस के लिए सुल्तान ने पीतल और ताम्बे के सिक्के जारी करने का निश्चय किया । लेकिन टकसाल पर नियंत्रण न होने के कारण यह योजना भी असफल रही ।[5] मुहम्मद के समय में ही बहमनी वंश को दक्षिण में राज्य स्थापित करने का अवसर मिला । पाण्ड्य, वरंगल स्वतंत्र हो गए । दक्षिण के तटीय प्रदेश स्वतंत्र हो गए । इस प्रकार सामंतों के विद्रोह, दिल्ली के आसपास अकाल, और तुगलक की आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तन आदि तुगलक को निन्दनीय कर दिया । सन् 1351 में विद्रोहों का दमन करते हुए बुखार से पीड़ित होकर मुहम्मद की मृत्यु हुई । इसके बाद के शासक असमर्थ होने के कारण तुगलक वंश का पतन हुआ ।

---

5. भारत का इतिहास - रोमिला थापर - पृ. 228.

2·4· मंगोल – तैमूर लांग का आक्रमण :-

मंगोल मूलतः मध्य एशिया के निवासी थे । यह जाति अपनी बर्बरता क्रूरता एवं नृशंसता के लिए संसार भर में प्रसिद्ध थी । वीर चंगेज खाँ इनका मुख्य नेता था । दिल्ली सुल्तानों के समय मंगोलों के आक्रमण एक बडी समस्या थी । गुलाम वंश के बलबन के समय से मंगोलों के आक्रमण आरम्भ होते हैं । अल्लाउद्दीन खिलजी को भी कई बार मंगोलों से युद्ध करना पडा । गियासुद्दीन तुगलक तथा मुहम्मद बिन तुगलक को भी मंगोलों से टक्कर खानी पडी । दिल्ली सुल्तानों ने मंगोलों के आक्रमणों को दबाने के लिए बहुत सारा धन खर्च किया ।

दिल्ली सुल्तानों को तैमूरों का भी सामना करना पडा । तैमूर मूल रूप से भारत से धन लूटने के लिए आए थे । इन्होंने मूर्ति पूजा का विरोध किया । कट्टरता से व्यवहार किया । तैमूर के प्रभाव से प्रान्तीय शासकों को स्वतंत्र होने का अवसर मिला । इन्हीं के प्रभाव से जौनपूर, गुजरात, मालवा और खान देश आदि स्वतंत्र राज्यों का उदय हुआ । तैमूरों के आक्रमणों ने भारत को आर्थिक रूप से गिरा दिया । देश की सामाजिक कुव्यवस्था की वृद्धि हुई और अनैतिकता तथा पशुता का प्राधान्य हो गया ।

2·5· प्रान्तीय राज्यों का उदय :-

अनेक तुर्क-अफगान शासकों ने जिस परिश्रम और लगन से भारत में इस्लामी राज्य की स्थापना कर के दिल्ली सल्तनत की नींव डाली थी । वह 250 वर्षों में ही छिन्न-भिन्न हो चली । तुगलक वंश इसका अन्तिम राजवंश था जिसके शासन काल में दिल्ली सल्तनत की नींव दुर्बल पड गई और साम्राज्य अनेक छोटे-छोटे राज्यों में बँट गया । इन स्वतंत्र राज्यों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है ।

2.5.1. बंगाल :-

सन् 1198 ई. में बख्तियारुद्दीन खिल्जी द्वारा पराजित होकर बंगाल दिल्ली सल्तनत का एक अंग बन गया था किन्तु राजधानी से काफी दूर होने के कारण यहाँ प्रान्तीय शासकों में स्वतंत्रता की इच्छा बराबर बनी रही थी। वे बराबर विद्रोह के अवसर की ताक में रहते थे। दिल्ली सुल्तान कई बार बंगाल की ओर विद्रोह दमन के लिए आगे बढ़े। हाजी इलियास ने विद्रोह का झंडा खडा किया। उसने ही सबसे पहले स्वतंत्रता की घोषणा की। हाजी इलियास, गियासुद्दीन आजमशाह, सिकन्दर, अल्लाउद्दीन, हुसेन शाह आदि ने बंगाल में राजवंशों की स्थापना की। इस बीच बंगाल ने सभ्यता और संस्कृति के क्षेत्र में अनेक मस्जिदों और शिक्षा गृहों का निर्माण कराया। अल्लाउद्दीन हुसेनशाह के प्रति हिन्दुओं में अधिक श्रद्धा थी। नासिब खाँ के समय बंगाल में कला और साहित्य को संरक्षण मिला। उसके संरक्षण में बंगाल में " महाभारत " का बंगला अनुवाद किया गया। दो मस्जिदों का निर्माण किया गया।[6] नासिबखाँ के बाद उसका पुत्र अल्लाउद्दीन फिरोजशाह, सुल्तान मुहमुद और शेर शाह सूरी ने बंगाल पर राज्य किया।

लगभग तीन सौ वर्षों में बंगाल ने जो उन्नति की वह सराहनीय है। धर्म, कला साहित्य आदि के क्षेत्र में आशातीत उन्नति की थी। बंगाल के मुसलमान सुल्तानों ने अपने राज्य के सांस्कृतिक विकास में बहुत अधिक सहायता दी थी। अधिकांश सुल्तान प्रजावत्सल और कला प्रेमी थे। इनके समय भाषा और साहित्य के प्रति प्रगाढ़ प्रेम था, जिसके फल स्वरुप मौलिक ग्रन्थों के साथ-साथ अनुवादों की भी भरमार हो गई। इस प्रकार बंगला भाषा की भी बहुत उन्नति हुई।

---

6. भारत वर्ष का इतिहास - रति भानु सिंह नाहर - पृ. 201.

2·5·2· जौनपुर :-

जौनपुर नगर की स्थापना फिरोजशाह ने की थी । फिरोज शाह के उत्तराधिकारी मुसलमान तुगलक ने ख्याजाजहाँ को जौनपुर का प्रान्तीय शासक नियुक्त किया जो राज काज में काफी स्वतंत्र था । मलिक सरवर ने तैमूर के आक्रमण के कारण दिल्ली सल्तनत में मची खलबली से लाभ उठाकर अपने को स्वतंत्र शासक घोषित किया । उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका दत्तक पुत्र मुबारक शाह शर्की जौनपुर का शासक हुआ जिसने अपने को शर्की वंश का सर्वश्रेष्ठ शासक सिद्ध किया । मुहम्मद बिन तुगलक के चंगुल से जौनपुर को बचाए रखने का प्रयत्न करके इब्राहीमशाह ने जौनपुर में स्वतंत्रता कायम रखी । वह कला प्रेमी था किन्तु हिन्दुओं का विरोधी था उसने जौनपुर में " अटाला " मस्जिद बनवाया । इब्राहीम शाह की मृत्यु के बाद उसका पुत्र महमूद जौनपुर का शासक हुआ । शर्की शासकों ने लोदि वंशजों को निरंतर उत्तेजित किया परन्तु अन्त में जौनपुर का शासक सिकन्दर लोदी ने जौनपुर को पुनः दिल्ली सल्तनत में मिलाया । [7]

शर्की वंश के अधीन जौनपुर ने कला के क्षेत्र में काफी उन्नति की । इस वंश के शासक साहित्य प्रेमी थे । इनके शासन काल में जौनपुर मुसलमान सभ्यता और संस्कृति का केन्द्र था । [8]

2·5·3· गुजरात :-

गुजरात राज्य का जन्म सल्तनत के विरूद्ध एक राज्यपाल के विद्रोह से हुआ । वास्तव में अहमदशाह के नेतृत्व में गुजरात शक्तिशाली हो गया । गुजरात की सीमा

7· भारत का इतिहास - रोमिला थापर - पृ· 236·

8· भारत वर्ष का इतिहास - नारद - पृ· 204·

बढ़ाकर अहमदशाह ने काफी ख्याति प्राप्त की । इसका प्रसिद्ध कार्य अहमदाबाद नगर की स्थापना है । गुजरात और मालवा के मध्य प्रतिद्वन्द्वता पन्द्रहवीं शताब्दी से चल रही थी । पुर्तगालियों का भारत में आगमन के साथ गुजरात को बहुत बड़ी विपत्ति का सामना करना पड़ा ।[9] मुहम्मद बगीड़ ने मिश्र के सम्राट की सहायता से पुर्तगालियों को पराजित किया। किन्तु दूसरी बार पुर्तगालियों को सफलता मिली । गुजरात का अन्तिम महत्वपूर्ण शासक बहादुरशाह को हुमायूँ के साथ बड़ी पराजय सहनी पड़ी । पुर्तगालियों के हाथ उसकी मृत्यु हुई । इससे गुजरात में अव्यवस्था फैल गई । अकबर के शासन काल में गुजरात मुगल शासन में पूर्णतः आ गया ।

2.5.4. मेवाड़ :-

अल्लाउद्दीन खिलजी ने मेवाड़ पर अपना अधिकार जमाया किन्तु उसके पश्चात् राजपूतों ने मुसलमानों की छावनी चित्तौड़ से उखाड़ फेंकी । अपनी अलग स्वतंत्र राज्य की स्थापना की । राणा हमीर ने मेवाड़ राज्य की स्थापना की । तैमूर आक्रमण के पश्चात् सल्तनत के दुर्बल हो जाने के कारण राजपूतों के राज्यों की स्थापना और उनका विस्तार हुआ । राणा कुम्भा के समय में उनकी शक्ति इतनी बढ़ गई कि समीपवर्ति मुसलमानी राज्यों को सदा उससे भय लगा रहता था । राणा कुम्भा साहित्यकार, नाटकार और आलोचक था । उसने जयदेव कृत " गीत गोविन्द " की सर्वश्रेष्ट टीका लिखी । वह संगीत प्रेमी, कला पोषक भी था । सन् 1509 ई. में राणा संग्राम सिंह मेवाड़ का राज्य भार संभाला । वह सर्वश्रेष्ट एवं लोक विख्यात राणा हुआ । वह उस समय का भारत के एक मात्र हिन्दू समाज का नेता निर्वाचित हुआ । सभी मुसलमान उससे डरते थे ।

---

9. भारत का इतिहास - रोमिला थापर - पृ. 232.

स्वयं बाबर को भी सन् 1527 ई॰ में राणा सांगा से युद्ध करते समय कुछ काल के लिए भारत विजय की भावना त्यागनी पड़ी ।[10] सांगा की मृत्यु के बाद मेवाड़ एक छोटा सा राज्य बन कर रह गया ।

2·5·5· मालवा :-

सन् 1401 ई॰ तक मालवा दिल्ली साम्राज्य का ही एक अंग रहा । पर तैमूर के आक्रमण से लाभ उठाकर दिवाकर खाँ ने यहाँ स्वतंत्र राज्य की स्थापना की क्रमशः अल्पखाँ हुसेन शाह, मुहम्मदशाह, मुहम्मद खिल्जी प्रथम और गयासुद्दीन, अब्दुल कादिर नासिरुद्दीन तथा महमूद द्वितीय ने मालवा की गद्दी पर बैठे ।[11] लेकिन सन् 1561 - 63 ई॰ में मालवा मुगलों के हाथ लग गई ।

2·5·6· काश्मीर :-

14 वीं शताब्दी से काश्मीर हिन्दू राजा के मंत्री शाह मिर्जा ने काश्मीर में मुसलमान राज्य की स्थापना की । जो 16 वीं शताब्दी के मध्य तक चलती रही । शमसुद्दीन शाह को उपाधि धारण करके शाह मिर्जा काश्मीर की गद्दी पर बैठा । उसके बाद आलम शाह, जैनुल आब्दीन गद्दी पर बैठे । इनके समय मे प्रजा ने सुख का अनुभव किया । उन्होंने धार्मिक सहिष्णुता दिखाई जो अब तक के शासकों में नहीं रही । जजिया को रद्द किया गया । हिन्दुओं को पूजा पाठ के लिए स्वतंत्रता दी । उसने साधु-सन्तों का सा जीवन बिताया । उन्हें साहित्य, संगीत और चित्र कला के प्रति प्रगाढ़ प्रेम था । " महां भारत " और " राज तरंगिणी "

10· भारत वर्ष का इतिहास - नाहर - पृ· 206

11· - वही - पृ· 204·

जैसे प्रसिद्ध ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद कराया जिससे उसकी साहित्यिक अभिरुचि का पता चलता है। जैनुल आब्दीन को "काश्मीर का अकबर" कहा जाता है।[12]

2.6. सैयद वंश : (सन् 1414 - 1451 ई.)

तुगलक वंश के पतन के पश्चात् दिल्ली सिंहासन पर एक नए वंश की स्थापना होती है। इस राजवंश का नाम सैयदवंश है। इसका संस्थापक है खिज्रखाँ जिसने दौलत खाँ से दिल्ली राज्य छीन लिया।

सन् 1414 ई. में खिज्र खाँ दिल्ली की गद्दी पर बैठा। लेकिन अपने आपको सुल्तान कभी नहीं कहा। उसने तैमूर की प्रतिनिधि की हैसियत से ही दिल्ली का शासन किया। सिंहानासीन होने के पश्चात् खिज्र खाँ ने आन्तरिक प्रशासकीय दुर्बलताओं का अन्त करने के लिए पदाधिकारियों को नए सिरे से नियुक्त किया। इसने कटेहर, ग्वालियर के विद्रोहों का दमन किया। सन् 1421 ई. में बीमारी के कारण इसकी मृत्यु हो गई। इसमें बाद मुबारकशाह, मुहम्मदशाह और अलाउद्दीन आलम शाह क्रम से गद्दी पर बैठे। लेकिन अल्लाउद्दीन ने राज्य को बहलोल लोदी नामक व्यक्ति को सौंप दिया।[13] इस प्रकार सैयद वंश का अन्त हो जाता है।

---

12. भारत वर्ष का इतिहास - नाहर - पृ.

13. भारत का इतिहास - रोमिला तापर - पृ. 231.

2.7. लोदी वंश : ४ सन् 1441 - 1526 ई. ४

जिस समय बहलोल लोदी गद्दी पर बैठा उस समय उसके अधिकार में उत्तर भारत का लाहौर से दिपालपुर तक, दक्षिण में सरहिंद से हाँसी, हिसार, पानीपत, तथा दिल्ली तक पंजाब का भाग रह गया था । शासनासीन होते ही बहलोल ने विद्रोहियो को दबाया ।[14] आन्तरिक संघर्षों का अन्त करके राज्य विस्तार की ओर ध्यान आकृष्ट किया । उसने जौनपुर, कालपी, धौलपुर, सिंध, मेवात और दो आब पर विजय प्राप्त की । इसके बाद सिकन्दर लोदी गद्दी पर बैठा । इसने ग्वालियर, चन्देरी पर अपना आधिपत्य जमाया । अफगान सरदारों पर कडी दृष्टि डाली । वह कट्टर मुसलमान था । सिकन्दर के बाद इब्राहीम लोदी, लोदीवंश का अन्तिम बादशाह था । इब्राहीमने नीति के बल पर हिन्दु और मुसलमान दोनो को राज्य का शत्रु बना दिया । इब्राहीम के दुर्व्यवहार से त्रस्त होकर काबुल के शासक बाबर को भारत आगमन के लिए अवसर दिलाया । इस प्रकार लोदी वंश का पतन और मुगल साम्राज्य की स्थापना एक साथ हुई ।

2.8. मुगल साम्राज्य ४ सन् 1526 ई. - 1747 ई. ४

मुगुल साम्राज्य के स्थापक के रूप में बाबर का नाम लिया जाता है । बाबर के पिता फरगाना के एक छोटे से राज्य का मालिक था । पिता की मृत्यु के बाद ग्यारह वर्ष की अवस्था में ही राज्य भार बाबर के कन्धे पर आ पडा । बाबर बच्चा था और राज्य चारो ओर शत्रुओं से घिरा था । बाबर ने बडी दृढ़ता से काम लिया । उसका प्रमुख शत्रु उजबेग सरदार शैहबानी खाँ था । उसने समर कंद

---

14. भारत का इतिहास - रोमिला तापर - पृ. 231.

पर आक्रमण करने का निश्चय किया जिससे उसे तैमूर सिंहासन पर बैठने का अवसर मिले । [15] बाबर ने समर कंद जीत लिया और उसपर अधिकार कर लिया । किन्तु उजबेग के अमीरों ने मिलकर उसे अपदस्थ कर दिया । बाबर फरगाना लौट गया । समरकंद उसके हाथ से निकल गया । किन्तु 240 आदमियों से समरकंद को पुन: अधीन में कर लिया । सन् 1503 ई॰ में सरदार ने बाबर पर हमला किया । बाबर जान बचा कर दिल्ली भागा । शाहवानी राज्य में एक विद्रोह उठ खडा हुआ । इस अवसर का बाबर ने लाभ उठाया । वह तुरंत फरगाना का अधिकारी बना । बाबर ने बादशाह की उपाधि धारण की । उसने समरकंद को भी जीत लिया । बाबर काबुल में अपना राज्य विस्तार किया । उस समय दिल्ली सिंहासन पर इब्राहिम लोदी था । इब्राहिमलोदी की राजनीति से सभी खिलाफ हो गए । इस अवसर का लाभ उठाने के लिए बाबर बडी सेना तैयार करके सीमा प्रान्तों तक चढ़ आया था । सन् 1583 में पानीपत के मैदान में विजय प्राप्त की । फिर राजपूत अग्रणी राणा सांगा को भी हरा दिया । घाघा खली लड़ाई में पठानों को परास्त करना चाहता था । लेकिन शहजादे हुँमायूँ के बीमार पड जाने के कारण उसका काम पूरा नहीं हुआ । उसने अपने प्रिय पुत्र की रोग शैया की तीन बार परिक्रमा की और स्वयं रुग्ण हो गए । [16] 1587 ई॰ में हुँमायूँ बादशाह बन गया । बाबर एक उत्कृष्ट कोटि के लेखक थे । उसने तुर्की भाषा में " बाबर नामा " आत्मचरित लिखा ।

बाबर की मृत्यु के उपरान्त हुमायूँ गद्दी पर बैठा । इसके शासन सूत्र को ग्रहण करते हीं न केवल इस की विभिन्न जातियोंवाली सेना के सिपाहियों में झगडे शुरू हो गए राज्य में अन्त:कलह भी शुरू हो गए । इसके विरुद्ध विद्रोह करना

15॰ भारत वर्ष का इतिहास - रति भानु सिंह नाहर - पृ॰ 236॰

16॰ हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास - पृ॰ 22॰

आरम्भ किया । इसके परिणाम स्वरूप बाहरी शत्रु भी आक्रमण करने लगे । इन परिस्थितियों में हुमायूँ का राज कोष भी खाली हो गया । हुमायूँ ने सन् 1555 में अपने बाहुबल से दिल्ली की गद्दी को अधिकृत कर लिया । किन्तु अधिक दिनों तक राज्य सुख भोग न सका । सीढ़ियों से गिर कर 1556 में हुमायूँ की मृत्यु हो गई । लेन पूल ने लिखा है कि वह जीवन भर ढुलकता ही रहा और अन्त में उसने ढुलक कर ही प्राण त्यागे ।

सूरवंश के संस्थापक शेर शाह ने गद्दी पर असीन हुआ ।[17] बाबर द्वारा हस्तगत मुगल साम्राज्य को हुमायूँ गवा देता है तो अक्बर मुगुल साम्राज्य को पुन: स्थापित करते हैं । शेर शाह का जीवन अधिकत: युद्धों में व्यतीत हुआ । उसका राज्य पश्चिम में सिंधु से लेकर पूर्व में काश्मीर, नेपाल और आसाम को छोड कर पूर्व गंगा की घाटी तक फैला हुआ था । दक्षिण की बिहंया श्रेणी, राजपूताना का अधिकांश भाग राज्य में थी । बंगाल पर भी उसका आधिपत्य था । इस प्रकार सूरवंश का बादशाह शेर शाह एक बडे भूभाग का बादशाह बन चुका था । शेर शाह का अंतिम आक्रमण कालिंजर के दुर्ग पर हुआ जहाँ गोला लग जाने से सन् 1585 में इसकी मृत्यु हुई ।

हुमायूँ की मृत्यु के पश्चात उसका 13 वर्षीय बेटा अक्बर गद्दी पर बैठा । वास्तव में मुगल साम्राज्य का संस्थापक अक्बर को ही कहा जाता है क्योंकि उसने अपने प्रभुत्व और योग्यता से सारे भारत को अपने अधीन करके सुव्यवस्थित शासन का अधिकार लेकर साम्राज्य को संभाला जो उसे विश्व के साम्राटों में महत्वपूर्ण स्थान देता है । गद्दी पर बैठते समय बालक अक्बर को बडी विषम परिस्थितियों से गुजरना पडा । इसके सामने पठान विद्रोहियों को झुकाना पडा और वे हेमू की

---

17. भारत वर्ष का इतिहास - रतिबान सिंह नाहर - पृ. 251

सहायता लेने पर भी विजयी न बन सके, जौनपुर की दशा भी बही रही । परन्तु बैरम खाँ को अकबर ने किसी न किसी बहाने उसके उत्तरदायित्व से मुक्त कर शासन का भार स्वयं संभालने लगे । उसने गोंडवान, चित्तौड गढ़ और कालिंजर को अपने वश मे कर लिया । फतेहपुर सीकरी का निर्माण कराया ।[18] बंगाल बिहार गुजरात और काश्मीर को जीत लिया । इस प्रकार अपने साम्राज्य का विस्तार करके राज्यमें आर्थिक, धार्मिक, नैतिक और सांस्कृतिक दशा में बहुत बडा परिवर्तन लाया । इसने " दीन-ए-इलाही " नामक नए धर्म की स्थापना की ।[19] इन के दरबार में कवियों भी प्र्तय मिला था । कहा जाता है कि अकबर के उदबार के कवि " नवरत्न " थे ।

अकबर का शासन काल 1615 ई॰ से 1662 तक रहा । उसका उत्तराधि - कारी उसका पुत्र जहाँगीर बना । जहाँगीर " मिसीत्रसा " नाम की सुन्दरी की ओर आकृष्ट होकर उसके पति शेर अफगान की हत्या कराया । उसी सुन्दरी के साथ विवाह कर लिया । वही आगे इतिहास में " नूर जहाँ " कहलाई जो जहाँगीर के शासन कार्य में बहुत कुछ हाथ बँटाया । जहाँगीर को क्रमश: बंगाल, मेवाड एवं दक्षिण की ओर अभियान की योजना करनी पडी । जहाँगीर के पुत्र खुसरो की हत्या उसके भाई के ही द्वारा कर दी गई । सन् 1684 में जहाँगीर की मृत्यु हुई । शाहजहाँ जहाँगीर का उत्तराधिकार बना ।

शाहजहाँ का असली नाम खुर्रम था । इसे पुर्तगीलियो से लड़ना पडा. । दक्षिण के कई सुल्तानों को जीतकर उन्हें अपने राज्य में मिलाने का प्रयत्न किया जिसमें उसे अपने पुत्र औरंगजेब का भी सहयोग मिला । शाहजहाँ अपनी प्रेयसी

---

18. हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास - पृ॰ 23॰

19. भारत वर्ष का इतिहास - नाहर - पृ॰ 280॰

" मुमताज महल " के नाम पर " ताज महल " का निर्माण कराया । 1723 में शाहजहाँ की मृत्यु के उपरान्त औरंजेब बादशाह बना । औरंगजेब के बाद उत्तराधिकार के लिए गृह कलह आरंभ होकर धीरे-धीरे मुगल साम्राज्य का पतन हो गया ।

2.9. मध्यकालीन सामाजिक स्थिति [हिन्दी प्रान्त]

मुसलमानों से पूर्व यवन, शक, पार्शियन, कुषाण आदि कितनी ही जातियाँ भारत में प्रवेश कर गयी । राजनीतिक दृष्टि से भले ही वे विजयी हो परन्तु सभ्यता और संस्कृति के क्षेत्र में परास्त होकर कालान्तर में अपना अस्तित्व खोकर भारतीय समाज के प्रवाह में समा गयी । भारतीय समाज की यह विशिष्टता है कि यह दूसरे समाजों को अपने में समेट लेने की अद्भुत क्षमता रखती है । मध्य युग में मुसलमान अपूर्व जीवन शक्ति और महत्वकांक्षाएँ लेकर यहाँ आये । बलात् हिन्दू समाज को अपने प्रभाव में आने के लिए मजबूर किया ।

" हिन्दू समाज में प्रतिष्ठित वर्ण व्यवस्था इस युग के चार पाँच सौ वर्ष पूर्व से है । विश्रृंखलित होकर अनेक पेशेवर जातियाँ और उप जातियाँ बन गई । "[20] वर्ण व्यवस्था के आधार पर निर्मित जातियों में से ब्राह्मणों तथा वैश्यों के पश्चात् जातियों के महत्व को इस युग में स्वीकार किया गया । अस्पृश्यों के रूप में केवल चाण्डाल का उल्लेख मिलता है ।[21] समकालीन समाज के समक्ष एक ओर शासक वर्ग की ओर से बल पूर्वक धर्म परिवर्तन की समस्या थी । इसके लिए अनेक प्रलोभन भी थे । मध्यकाल के भारतीय समाज में राज्य की अनुकम्पा प्राप्त करने वाले मुसलमान धर्मावलंबी थे । वे अपने धर्म की उच्चता पर विश्वास करते थे और दोनो

---

20. पूर्व मध्यकालीन भारत - वासुदेव आध्याय

21. संस्कृति के चार अध्याय - दिनकर - पृ. 275.

धर्मावलंबियों में समन्वय साधारण बात नहीं थी । मुसलमानों का जीवन विलास पूर्ण था । बल्बन और खिल्जी ने शराब बंदी के नियम बनाए और उनका जोरदार पालन किया गया । मुसलमान समाज में भारतीय मुसलमानों को बहुत नीचा समझा जाता था । सरकारी पदों में भी इनकी नियुक्ति शीर्ष नहीं होती थी । स्त्री शिक्षा प्रचलन में थी ।

दिल्ली सल्तनत में हिन्दू सबसे बडे शत्रु समझे जाते थे । जजिया नामक कर देने पर ही उनका जीवन सुरक्षित रह सकता था । हिन्दू सरदार घोडे पर चढ़ने, अच्छे कपडे पहनने और अच्छी रीति से रहने के लिए भी योग्य नहीं थे । हिन्दू स्त्रियों को मुसलमानों के काम करना पड़ता था । सती प्रथा प्रचलन में थी परन्तु सती के लिए राजा की अनुमति लेनी होती थी । समाज में दास प्रथा प्रचलन में थी । प्रारम्भ में दासता अभिशाप न थी । एक साधारण से साधारण दास को भी अच्छे पद प्राप्त होते थे । परन्तु धीरे-धीरे स्थिति बदल गई । दासता अभिशाप समझी जाने लगी । दिल्ली सल्तनत मे मदिरापान, धन की बहुलता और विलासमयता और दासप्रथा के कारण ही पतन को प्राप्त किया ।

2.7.1. इस्लाम और हिन्दू संस्कृति का समन्वय :-

मुसलमानों के संपर्क से हिन्दू केवल धर्म, आचरण और कला में ही परिवर्तित नहीं हुए, वरन् हिन्दू संस्कृति का रूप ही बदल गया । यहाँ यह कहना उचित होगा कि इस युग में इस्लाम और हिन्दू संस्कृतियों का सामंजस्य हुआ जिससे एक नवीन संस्कृति का उदय हुआ । मुसलमानों और हिन्दुओं ने सद् भावना से प्रेरित होकर विचारों का आदान प्रदान किया । मुसलमानो ने संस्कृत ग्रन्थों को अपनी संस्कृति में मिला लिए । हिन्दू भी मुसलमानों से विभिन्न कलाओं का ज्ञान प्राप्त

किया । यद्यपि मुसलमानों में कुछ ही शासकों ने धार्मिक सहिष्णुता दिखाई फिर भी इन दोनों में सामंजस्य कुछ हद तक दिखाई देता है । हिन्दू समाज में भक्ति आन्दोलन की शुरूआत इस्लाम के प्रभाव को कम करने के लिए की गई जिसके परिणाम स्वरूप समाज में भक्ति भावना की वृद्धि हुई । गिरती हुई हिन्दू धर्म की नींव ने फिर से मजबूती पकड़ी ।

2·10· आन्ध्र प्रान्त का राजनैतिक इतिहास :

2·10·1· प्राचीन आन्ध्र प्रान्त का इतिहास :-

'पुराणों में सर्व प्रथम आन्ध्र राजा का उल्लेख नानाघाट शिलालेख में मिलता है । वह राजा " सिमुक " था । इसने मौर्यों को अधीनता स्वीकार कर राज - नैतिक जीवन प्रारम्भ किया । इस वंश के राजाओं को " आन्ध्र भृत्य " के नाम से सूचित किया जाता है ।[22] आन्ध्र पर शासन करने वाला प्रथम राजवंश " शातवाहन " वंश है । शातवाहनों के बाद आन्ध्र प्रदेश पर अनेक स्वतंत्र राज्य आविर्भूत हुए जिनमें इक्ष्वाकु, आनन्दगोत्रिज, शालंकायन, बृहत्पलायन, विष्णु-कुण्डिन और पल्लव आदि है । सन् 625 ई· से सन् 1078 ई· के बीच आन्ध्र देश के इतिहास में चालुक्य युग आता है । दक्षिण भारत पर शासन करने वाले राज वंशों में यह प्रसिद्ध है । चालुक्य वंश की पाँच शाखाएँ है - 1· बादामी चालुक्य 2· कल्याणी चालुक्य 3· पूर्वी चालुक्य 4· वेमुलवाड चालुक्य 5· मुदिकोंड चालुक्य इनके युग में तेलुगु भाषा और साहित्य की महत्त्वपूर्ण प्रगति हुई । चालुक्य और काकतीय युगों के बीच चोल वंश के शासन का भी तेलुगु प्रान्त पर योगदान रहा है । तेलुगु साहित्य में शैव साहित्य इसी युग की देन है । इसी समय तेलुगु लिपि भी बदल गयी । लिपि का यह परिवर्तन काल है ।[23]

22· आन्ध्र का इतिहास - आंध्र प्रदेश हिन्दी अकादमी - पृ· 49·

23· आन्ध्र का इतिहास - अकादमी - पृ· 187·

2·11· काकतीय युग : (सन् 1150 ई· से 1323 ई·)

आन्ध्र प्रान्त के इतिहास में काकतीयों का शासनकाल सन् 1150 ई· से माना जाता है । इनके शासन के आरम्भ तक आन्ध्र प्रान्त में कलिंग प्रान्त को छोडकर शेष प्रान्त चालुक्य प्रान्त से मुक्त होकर स्वतंत्र मांडलिकों के अधिकार में आने लगे । इनमें चालुक्य और चोल राज्य के अन्त हो जाने पर अनुमकोंडा के शासक काकतीय रुद्र देव ने एक स्वतंत्र राज्य की स्थापना की ।

काकतीयों के विषय में अनेक मत भेद हैं । मांगल्ल शिला लेख में कार्य गुंड्यना की वंशावली उल्लिखित है । काकतीयों को राष्ट्रकूटो के अनुचर और इक्ष्वाकों के वंशज कहा जाता है ।[24] कतिपय शिला लेखों से यह विदित होता है कि काकतीयों का प्रथम निवास स्थान काकतीपुर था । बय्यारम शिलालेख से पता चलता है कि दुर्जय वंश के मूल पुरुष काकती नगर के केन्द्र में शासन करते थे इसलिए ये काकतीय कहलाए । कई लेखों से यह पता चलता है कि काकतीपुर के आधार पर वे " काकतीपुराधीश्वर " कहलाए । " प्रतापरुद्रीयम् " के व्याख्याता का कथन है कि " काकती " दुर्गाशक्ति है जिसकी आराधना करने-वाले काकतीय कहलाए । " काती देवतोपासको विभूति: काकती विभु:. "[25] इस प्रकार नगर के आधार पर हो या देवता के आधार पर, ये राजा काकत्तिय, काकतीय काकतिय जैसे शब्द रूपो से पुकारे जाते है ।

काकतीय नवीं दसवी शताब्दियों में राष्ट्रकूट द्वितीय, तृतीय कृष्ण वल्लभ के वेंगी पर किए गए आक्रमणों के समय प्रधान दंड नायकों के रूप में आन्ध्र देश में आए

24· आन्ध्र का इतिहास - अकादमी - पृ· 189·

25· आन्ध्रुल चरित्रा - डा· हनुमंत राव - पृ· 245·

काकतीय वंशज बेतराजु आरम्भ में पश्चिम चालुक्यों के सामंत के रूप में अनुमकोंडा में राज्य किया । प्रथम प्रोल राज, द्वितीय बेतराजु, दुर्गराजु आदि प्रथम काकतीयों के शासन में रहे ।

2.12. स्वतंत्र काकतीय राज्य :-

वास्तव में द्वितीय प्रोल राजु ने काकतीय राज्य की नींव डाली । उस समय तेलुगाना के अनेक सामंत इससे दुश्मनी रखते थे । चालुक्य राज्य भी अस्त व्यस्त था ।[26] ऐसी स्थिति में काकतीयों में प्रसिद्ध रुद्र देव सिंहासन पर बैठे । राज्य को सुस्थिर करने के लिए रुद्र को पहले शत्रुओं से निपटना पडा । रुद्रदेव ने ही स्वतंत्र काकतीय राज्य की स्थापना की और राज्य का विस्तार किया । नागुनूर, पोलवासा, सांविनाडु को काकतीय राज्य में मिलाया । उत्तर में गोदावरी तक उसका अधिकार हो गया । तीरान्ध्र पर विजय के लिए प्रयास किया । सन् 1195 ई. में यादव राजाओं के आक्रमण में परास्त हो गया । रुद्र ने ही राजधानी के लिए अनुमकोंडा में " ओरुगल किला " का निर्माण किया । जो ओरुगल्लु दुर्ग के नाम से प्रसिद्ध है । रुद्र के बाद उसका भाई महादेव ने उत्तराधिकार ग्रहण किया । सन् 1262 में महादेव की वीरगति के बाद गणपति देव के समय काकतीय राज्य पर विपत्ति आ पडी । गद्दी पर बैठतेवेलनाडु चोल, कलिंग पाण्ड्यों से युद्ध करना पडा । इसे " राय गज केसरी " की उपाधि मिली । समूचे तेलुगु प्रान्त को एक शासन सूत्र में लाने का श्रेय गणपति को ही प्राप्त है । इनको " काकतीय राज्य स्थापाना चार्य " की उपाधि प्राप्त है । रुद्रदेव राजनीतिज्ञ, कला प्रेमी थे और उन्होंने शिक्षा और संस्कृति का बडा आदर किया ।

---

26. आन्ध्र का इतिहास - अकादमी - पृ. 198.

इनके दरबार में कई विद्वान रहा करते थे। शैव धर्मी होने के कारण अनेक शैवालयों का निर्माण किया। [27]

गणपति देव की वृद्धावस्था में उनकी पुत्री रुद्रमादेवी ने राज्याधिकार संभाला। इनके समय तक कांची, नेल्लूर और कडपा आदि काकतीयों के हाथ से निकल गए थे पर रुद्रम के शासन में आते ही दक्षिण देश काकतीयों के हाथ से निकल गया। रुद्रम देवी निरंतर युद्धों में भाग लेती रही। साथ में " ओरुगल्लु किले " को ठीक कराया। सन् 1298 ई॰ में इनका देहावसान हो गया।

रुद्रम देवी के पश्चात् प्रताप रुद्र ने (सन् 1289 - 1323 ई॰) शासन भार स्वीकार किया। प्रताप रुद्र ने सिंहासन पर बैठते ही सब विद्रोहियों को कुचल कर उनके द्वारा हड़पे गए राज्यों को पुनः काकतीय राज्य में मिलाने को अपना लक्ष्य बनाया। सेना को संगठित करके अंबदेव ने नेल्लूर पर आक्रमण कर उनको काकतीय राज्य में मिलाया। इस प्रकार प्रतापरुद्र ने काकतीयों की सत्ता को पुनः प्रतिष्ठित किया। प्रताप रुद्र के समय मुसलमानों ने दक्षिण पर आक्रमण आरम्भ कर दिया। आन्तरिक कलहों को मिटाने के बाद प्रताप रुद्र की दृष्टि मुसलमानों से दक्षिण को बचाने की ओर गई। अल्लाउद्दीन ने बडी सेना के साथ वरंगल पर आक्रमण किया। प्रताप को राज्य की रक्षा के लिए मुसलमानों के साथ सन्धि करनी पडी। प्रताप रुद्र के समय में खिल्जी और तुगलक वंश के सुल्तान बराबर दक्षिण पर आक्रमण करते रहे। अन्त में उलूखाँ के साथ युद्ध करते हुए प्रताप रुद्र ने बन्दी बनकर मुसलमानों के साथ दिल्ली जाते हुए मार्ग में ही मृत्यु को प्राप्त किया। इस प्रकार आन्ध्र प्रान्त काकतीयों के समय में ही दिल्ली साम्राज्य में मिलकर सुल्तानपुर बन गया। काकतीयों की राज भाषा संस्कृत थी। संस्कृत में अनेक ग्रन्थ रचे गए। रुद्र देव स्वयं कवि थे। इन्होंने " नीतिसार " नामक राजनीतिक ग्रन्थ की रचना की।

---

27. आन्ध्र का इतिहास - अकादमी - पृ॰ 203.

कहा जाता है कि अगस्त्य ने 74 काव्य लिखे थे । [28] तेलुगु साहित्य का इस युग में महत्वपूर्ण स्थान रहा । तिक्कना और सोमनाथ आदि कवियों ने उत्कृष्ट काव्यों की रचना की । देशी कविता का विकास इसी युग में हुआ । जैन, शैव और वैष्णव धर्मों को आदर मिला । शैव धर्म की प्रधानता के कारण इस युग को शैव युग कहा जाता है । [29]

2·13· आन्ध्र प्रान्त का उत्तर मध्ययुग :-

उत्तर मध्य युग में आन्ध्र देश दो भागों में विभक्त था अर्थात् कृष्णा नदी के ऊपरी भाग और कृष्णा नदी के निचला भाग । काकतीय साम्राज्य के पतन के बाद उत्पन्न क्षोभ के कारण उत्पन्न क्षति को दूर करने के लिए प्राच्यान्ध्र और मध्यान्ध्र की रक्षा मुसुनूरि वंशजों के हाथ आयी । आरम्भ में इन्हे सफलता तो मिली लेकिन इनकी एकता नष्ट हो गई ।

2·14· मुसुनूरि वंश : नायक युग : [सन् 1325 – 1480 ई·]

सन् 1323 ई· में उलूखान वरंगल पर आक्रमण कर उसे सुल्तानपुर का नाम दिया । सन् 1324 तक दक्षिणांध्र दिल्ली सल्तनत में मिल गया था । समस्त तेलुगु प्रान्त वजीर मलिक बुरानुद्दीन के अधिकार में आ गया । द्वार समुद्र और होयसल भी दिल्ली सल्तनत में मिल गए । मुसलमानों के शासन में तेलुगु प्रान्त की जनता को अनेक मुसीबतों का सामना करना पड़ा । लगान भार ज्यादा हो गया । लूटमार बढ़ गया । मूर्तियाँ तोड दी गयी । किसान परिवार तबह हो गए । [30] ऐसी

28· आन्ध्रुल चरित्र – डा· हनुमंत राव – पृ· 283·
29· – वही – पृ· 285·
30· – वही – पृ· 296·

स्थिति में आन्ध्र राज्य में हिन्दू राज्य के पुनरुद्धार का उत्तरदायित्व देश के नायकों पर आ पड़ा था। मुसुनूरि प्रोलय नायक के नेतृत्व में नायक राज्य का निर्माण किया गया। इसका लक्ष्य मुसलमान राज्य का अन्त करना ही था। प्रोलय नायक मुसलमानों द्वारा नष्ट किए गए अग्रहारों को ठीक कराया। वैदिक धर्म का पुनरुद्धार किया। प्रोलय के पश्चात् कापय नायक ने शासन भार संभाला। इसके समय में मुहम्मद बिन तुगलक के विरुद्ध दक्खन के सेनापतियों ने जाफर खान को नेतृत्व में विरोध किया। सन् 1347 ई॰ में बहमनी राज्य की स्थापना हुई। अल्लाउद्दीन बहमन शाह की उपाधि से हसन गंगु ने गुलबर्गा को राजधानी बनाई। इन्होंने सिकंदर खान को वरंगल पर आक्रमण के लिए भेजा। हर साल बहमनी सुल्तान को कर देकर उनके स्वामित्व को स्वीकार किया। कापय नायक का जीवन काल बहमनी सुल्तानों से युद्ध करते ही बीत गया। कापय नायक बहमनी सुल्तान के आतंक से मुक्त हुआ। रेचर्ल सिंगम नायक मारा गया। तब उसके पुत्र अवनोत और मादानायक स्वतंत्र राज्य के निर्माण का निश्चय करने लगे। सन् 1289 ई॰ में भीमवरम् युद्ध में कापय नायक मारा गया।

इस प्रकार मुसुनूरि वंशज अर्ध दशाब्दी तक भी तेलुगु देश पर शासन नहीं कर सके। किन्तु अन्ततः मुसलमानों के विरुद्ध मुकाबला करने में सफलता मिली। हिन्दू राज्य की पुनरुद्धार की दीक्षा लेकर मुसलमानों की दासता से तेलुगु भूमि को बचाया।[31] मुसुनूरि वंशजों की विजय के बाद तेलुगु देश में एक नवीन युग का आरम्भ हो गया। एक स्वतंत्र राज्य की स्थापना हुई।

---

31. आन्ध्र का इतिहास - अकादमी - पृ॰ 260.

2·14·1· पद्म नायक :-

वेलमों को ही पद्मनायक भी कहा जाता है । कहा जाता है कि विष्णुपाद से जन्म लेने के कारण ही इनको पद्मनायक का नाम मिला । [32] इनके शासन काल को वाम नायक, रुद्र नायक, प्रदादित्य नायक प्रसिद्ध हैं । वाम नायुडु के तीन पुत्र हैं -- सिंगम नायुडु, वेन्नम नायक और एचम नायक थे । इनमें सिंगम नायक ने प्रताप रुद्र के साथ अनेक युद्धो में भागलिया । मुसलमानों के आक्रमणों में उनकी सेवा के कारण सिंगम नायुडु को प्रसिद्धि मिली । सिंगम नायुडु के अनवोत और मादानी नायुडु दो पुत्र थे । अनवोत नायुडु राजाचल राज्य का संस्थापक था । पिता के राज्य को निश्चित देकर राचकोंडा में राजधानी बनाई । यहाँ दुर्भेद किले का निर्माण किया । वरंगल और भोगगिरि (भुवन गिरि) दुर्गों को जीतकर " आन्ध्रदलादीश्वर " की उपाधि प्राप्त की । कलिंग पर आक्रमण किया रेड्डी राजाओं के राज्य के विस्तार को रोकना ही इस आक्रमण का लक्ष्य था । इनके पश्चात " कुमार सिंगल " नायुडु " (सन् 1383 - 99 ई·) राचकोंड सिंहासन पर बैठा । इसके समय में बहमनी के साथ मैत्री और विजयनगर तथा रेड्डी राजाओं के साथ अनेक युद्ध हुए थे । विजयनगर के हरिहर और बुक्कराय ने इन पर आक्रमण किया । इसमें पद्मनायकों को विजय हुई । कुमार नायुडु कलिंग युद्ध में रेड्डी राजाओं के साथ युद्ध किया । इनके पश्चात अनन्तपोत नायुडु द्वितीय, मादा नायुडु और सर्वज्ञ रावु सिंगम नायुडु का पद्मनायक राज्य में प्रमुख स्थान रहा ।

राचकोंड के पद्मनायक वीराधिवीर और असीम पराक्रमी थे । प्रचंड युद्ध करना इनके लिए विशेष क्रीडा थी । साहित्य और कृषि में भी वे प्रवीण थे । इनके समय में ही विष्णु " भक्ति सुधाकरम " और " उषाभ्युदयम " नामक ग्रन्थ रचे गए ।

32· आन्ध्रुल चरित्र - डा· हनुमंत राव - पृ· 303·

2·15· रेड्डी राजा : कोंडवीडु का राज्य :-

(सन् 1320 ई· – 1443 ई·)

हिन्दू राज्य के लिए पुनरुद्धार में योग देने वालों में रेड्डी राजाओं का महत्वपूर्ण स्थान है । काकतीयों के बाद तेलुगु भाषा संस्कृतियों का विकास करने में रेड्डी राजाओं का विशेष योग है । सन् 1325 ई· में प्रोलय वेमा रेड्डी ने अद्दंकि को राजधानी बनाकर रेड्डी राज्य की स्थापना की ।[33] वेमा रेड्डी के मुसलमानों के साथ युद्ध करते समय मल्ल रेड्डी का अधिक सहयोग रहा । रेड्डी राज्य को बहमनी सुल्तानों से आतंक लगा रहता था । उन्हीं दिनों विजय नगर राज्य का विस्तार होता जा रहा था । संगम वंश के हरिहर राय का वेमा रेड्डी से मुकाबला हुआ था । चोड राजाओं के साथ संबंधों को बनाए रखा । इस प्रकार वेमा रेड्डी ने राज्य का संचालन बडी कुशलता के साथ किया । हिन्दू धर्म की पुन: स्थापना करके "धर्म प्रतिष्ठापक"[34] कहलाए । तेलुगु के प्रसिद्ध कवि इन्ही के राज्य में थे । प्रोलय वेमा रेड्डी के बाद क्रमश: अनवोत रेड्डी, अनवेमा रेड्डी, कुमार गिरि, पेदकोमटि वेमा रेड्डी, राच वेमुडु, काटय वेमुडु, कुमार गिरि द्वितीय, वीर भद्र रेड्डी आदि ने रेड्डी राज्य के शासन में महत्वपूर्ण योगदान दिया ।

इन परिस्थितियों में कर्नाटक सिंहासन पर आसीन प्रौढ देवराय नामक देवराय द्वितीय ने कलिंग पर हमला किया और उसे जीत लिया । वीर भद्रा रेड्डी विजयनगर राजा का सामंत बन गया । विजय नगर राजाओं से छीनने के कारण राजमेन्द्रवरम् को कलिंग उत्कल राज्य के अधीन कर लिया गया ।

33· आन्ध्रुल चरित्र – डा· हनुमंतराव – पृ· 315

34· – वही – पृ· 317·

रेड्डी राजाओं के समय संस्कृत भाषा को बहुत आदर मिला । संस्कृत कवियों का आदर किया गया । रेड्डी नायक राजाओं के समय तेलुगु भाषा को संस्कृत के समान आदर मिला । " देश भाषाओं में तेलुगु अच्छी कही गयी है । श्रीनाथ इसी युग के कवि थे । चित्र कविता की प्राधान्यता भी इस युग की विशेषता है । द्विपद काव्य की रचना भी हुई है । गोन बुद्दा रेड्डी कृत " रंगनाथ रामायण ", पोतन कृत " भोगिनी दण्डकम " रेड्डी राजाओ के समय रचे गए है । " रामायण " और " भागवत " की रचना इस युग की विशेष कृतियाँ है ।

2·16· गजपति राज्य :-

कपिलेश्वर सूर्यवंशी था जो गजपति राज्य का संस्थापक माना जाता है । उत्कल देश के सुप्रसिद्ध राजा कपिलेश्वर वीर और बुद्धिमान था । वह वंग देश के सुल्तानों को हराकर अपना राज्य सुस्थिर किया । पश्चात वह दक्षिण पर विजय यात्रा के लिए आगे बढ़ा । रेड्डी राजाओं के बढ़ते प्रभाव को रोकने का भरसक प्रयत्न किया । कपिलेश्वर के समकालीन सुल्तान-अल्लाउद्दीन और हुमायूँ थे । कपिलेश्वर ने अश्वपतियों और नरपतियों को हराकर तेलंगाना, कोंडवीडु, उदयगिरि और चन्द्रगिरि आदि को राज्य में मिला लिया । सन् 1464 ई· तक गोदावरी से लेकर श्रीरंगम् तक के देश में अपनी सार्वभौमिकता स्थापित की । कहा जाता है कि कपिलेश्वर की पुत्री महादेवी के साथ कृष्णदेवराय ने विवाह किया । कपिलेश्वर के बाद पुरुषोत्तम गजपति और प्रतापरुद्र गजपति भी उल्लेखनीय है । गजपतियों का बहमनियों के साथ संघर्ष चलते थे । विजय नगर के कृष्णदेवराय के कलिंग चढ़ाई में वीर भद्र गजपति हताहत होने और प्रताप रुद्र गजपति के मृत्यु के बाद गजपति सिंहासन पर बैठने योग्य कोई राजपुत्र नहीं रह गया । इस कारण गजपतियों की प्रभुता समाप्त हो गई ।

2·17· विजय नगर साम्राज्य (सन् 1335 - 1506 ई·)

जब वरंगल में कापय नायक की विजय हुई तब दिल्ली के सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक के प्रतिनिधि के रूपमें कंपिल राज्य पर शासन करनेवाले हर हर राय ने इस्लाम को छोड दिया और विद्यारण्य यतीन्द्र के कृपा पात्र बनकर वैदिक धर्म स्वीकार कर लिया और सुल्तान के विरूद्ध अपने को स्वतंत्र घोषित किया । उन्होंने तुंगभद्रा नदी के किनारे विजयनगर की स्थापना करके उसी को अपनी राजधानी बनाई ।

संगराय के पुत्र प्रथम हरि हर राय ने अपने भाइयों के सहयोग से विजय नगर का विस्तार किया । उदय गिरि में विजयनगर राजाओं का प्रथम दुर्ग बना ।[35] हरिहर राय ने अपना राज्य उत्तर में बादामी से लेकर दक्षिण के द्वार समुद्र तक फैलाया । इस्लाम के आक्रमण और आतंक से हिन्दू धर्म और संस्कृति की रक्षा की । बहमनी राज्य के साथ इनके आरंभ से ही संघर्ष चल रहे थे । कृष्णा और तुंगभद्र नदियों के बीच का देश इन दोनो राज्यों के बीच युद्ध का कारण बना । प्रत्येक युद्ध के परिणाम स्वरूप राज्य की सीमा बदलती रही ।[36]

हरिहर राय के निधन के पश्चात् बुक्क राय विजय नगर की गद्दी पर बैठा । इसके सात पुत्र थे । बुक्कराय के समय बहमनी और विजयनगर के बीच युद्ध छिड़ा । इसके पश्चात् क्रम से द्वितीय हरिहर राय, द्वितीय बुक्क राय, प्रथम देवराय, प्रौढ़ देवराय, मल्लिकार्जुन राय और विरूपाक्ष राय विजयनगर के सिंहासन पर बैठे । संगम वंश के अंतिम शासक विरूपाक्षराय थे । प्रथम देवराय के समय में संगम वंश ने उन्नति को प्राप्त किया ।

35· आन्ध्र का इतिहास - अकादमी - पृ· 320·

36· भारत का इतिहास - रोमिला थापर - पृ· 268·

विजय नगर साम्राज्य के सालुव वंश के सालुव नरसिंह देव राय के शासन काल में राज्य में अशांति फैली हुई थी । सामंतों का विद्रोह, गजपतियों का आक्रमण, विधर्मी मुसलमानों के साथ रह कर नरसिंह देवराय असफल रहे । सालुव नरसिंह देव विजय नगर के रायों में अग्रगण्य थे । उन्होंने विच्छिन्न राय साम्राज्य का केवल पुनरुद्धार ही नहीं किया बल्कि दक्षिण के हिन्दुओं के हृदय मे युद्ध करने की प्रेरणा उत्पन्न की ।[37] इनकी मृत्यु के पश्चात तिम्म भूपाल, तम्मराय या इम्मडि नरसिंहराय गद्दी पर बैठा । नरसिंहराय को नाम मात्र का राजा बना कर नरस नायक ही राज्य करने लगा । इम्मदि नरसिंह राय के बाद सालुव वंश का राज्य अन्त हो गया । विजय नगर के प्रमुख राजवंश तुलव वंश के राजाओं ने राज्य का भार स्वीकार किया । वीर नरसिंहराय के समय में कर्णाटक पर आक्रमण होते रहे । वीर नरसिंह राय ने पुर्तगालियों से संबंध स्थापित किए ।[38] विजयनगर साम्राज्य की सेवा की ।

तुलव वंश एवं विजय नगर साम्राज्य के " कीर्ति किरीट " कृष्ण देवराय का समय " स्वर्ण काल कहा जाता है । सिंहासन पर बैठते ही उन्हें शत्रुओं का सामना करना पडा । बहमनी सुल्तान मुहम्मद शाह ने बडी सेना के साथ आक्रमण किया । लेकिन कृष्ण देव राय ने खदेड-खदेड कर कोवेलकोंडा तक भगा दिया । कृष्ण देवराय ने बीजापुर पर आक्रमण किया । कृष्णा तथा तुंगभद्रा नदियों की अंतर्वेदी में प्रवेश कर रायचूर आदि को जीत लिया । गुलबर्गा के पास मुसलमानों को हराया । वहाँ का दुर्ग अपने अधीन कर लिया । कृष्णदेवराय को " यवन राज्य स्थापनाचार्य "[39] की उपाधि मिली । कृष्णदेवराय की सेना उसके प्रधान सालुव तिम्मरसय्या के प्रयत्नो से और बढ गई । कृष्ण देवराय ने कलिंग की विजय यात्रा की । रयचूर, बीजापूर, कलुबरिगे पर आक्रमण किया और साम्राज्य का विस्तार किया ।

---

37. आन्ध्र का इतिहास - अकादमी - पृ. 326.
38. - वही - पृ. 327.
39. - वही - पृ. 328.

विजय नगर साम्राज्य के शासकों में कृष्ण देवराय सर्व श्रेष्ठ है। युद्ध विद्या विशारद, नीति मर्मज्ञ एवं कवीश्वर थे। वे संस्कृत और आन्ध्र भाषा पंडित थे। कविजनों के कल्पतरू थे। उन्होंने अष्ट दिग्गज " कवियों को अपनी सभा में आश्रय देकर " आन्ध्र भोज " की उपाधि प्राप्त की। उन्होंने स्वयं भी " अमुक्तमाल्यदा " नामक महाकाव्य की रचना की। कृष्णदेवराय के बाद अच्युत देवराय, वेंकटपति और निरमल रायनेशासनाधिकार ग्रहण किए। अन्तिम शासक अयोग्य होने के कारण मुसलमानों का पुन: आन्ध्र में प्रवेश निश्चित हो गया। रामराय के समय विजय नगर साम्राज्य का अस्तित्व मिट गया।

2·18· बहमानी राज्य (1347 - 1484)

ई· 14 वीं सदी के दूसरे दशक में दिल्ली के सुलतान मुहम्मद बिन तुगलक दक्षिण के लगभग सभी राज्यों को जीत कर सारे भारत को मुसलमानों के शासन मे ले लिया। सुल्तान के गलत शासन के कारण देश के कई राज्य स्वतंत्र बन गए। इसी समय दक्षिण में हसन गंगूनेएक नए मुसलमान राज्य की स्थापना की जिसकी राजधानी दौलताबाद रही। यही राज्य बहमनी राज्य कहलाया। 40 गद्दी पर बैठते ही हसन गंगू ने अपना नाम अलाउद्दीन खाँ रखा। इसने सन् 1347 से 1358 तक राज्य किया। इसने विजय नगर पर आक्रमण करके तुंगभद्रा नदी के तट तक फैले विजयनगर राज्य को अपने अधीन कर लिया। " कोंकण " को भी अपने राज्य में मिला लिया। ग्यारह साल तक शासन करके हसन गंगू दिवंगत हुए। उसके पश्चात बहमनी राज्य पर पहले मुहम्मद शाह, मुजाहिद शाह, दूसरा मुहम्मद शाह, अहमद शाह, दूसरा अलाउद्दीन अहमद, निजाम शाह, और मुम्मडि मुहम्मद शाह क्रम से शासन पर आये। इनके शासन में आयोजित हत्याओं, भीषण नर-संहारों, क्रूरता पूर्वक लूटमार, धार्मिक अत्याचारों, अमीरों

40· आन्ध्र का इतिहास - अकादमी - पृ· 305·

के षडयंत्र आदि से युक्त दीर्घकालीन परंपरा के युद्धों से रंजित बहमनी राज्य के 180 वर्षों के इतिहास में 14 सुल्तानों ने राज्य किया । धार्मिक असहिष्णुता के शिकार होकर देवालयों को ध्वंस किया । हिन्दुओं के प्रति कट्टर नीति अपनाई । "[41] बहमनी राज्य के सुल्तानों ने साहित्यकारों तथा कलाकारों को आश्रय दिया था। उनके दुराचार और शासन व्यवस्था से भरे होने के कारण बहमनी राज्य का पतन हो गया ।

2.19. कुतुबशाही वंश (सन् 1512 ई. – 1687 ई.)

कुतुबशाही राजवंश ने सोलहवीं शताब्दी ई. के आरम्भ से सत्रहवीं शताब्दी के अन्त तक दो सौ वर्षों तक राज्य किया । उनका इतिहास अत्यन्त वैभव पूर्ण रहा था । "सांस्कृतिक दृष्टि से भी यह काल सुसंपन्न था । इस वंश का मूल पुरुष "कुली कुतुबशाह" था । वह "हन्दुम" राज वंश का अंकुर था ।[42] बहमनी राज्य के पतन के बाद 15 वीं शती में गोलकोंडा राज्य की स्थापना हुई । स 1496 में सुल्तान कुली बहमनी साम्राज्य के अन्तर्गत तेलुगु राज्य के लिए अधिकारी के रूप में नियुक्त हुआ । उनमें साहित्यिक और प्रशासनिक क्षमता थी । मुहम्मद शाह की मृत्यु के उपरान्त कुलीने अपने को स्वतंत्र घोषित किया । सुल्तान कुली कुतुब शाह 90 वर्षों तक वृद्धावस्था में भी राज्य करता रहा । इसलिए उसका पुत्र जमशेद ने सुल्तान की हत्या करवा दी । अपने को सुल्तान घोषित किया । जमशेद ने 1550 तक राज्य किया । जमशेद की मृत्यु के बाद तेलुगु राज्य में इब्राहीम कुली कुतुबशाह "मल्कभराम" के नाम से प्रसिद्ध हुआ । ये ही गोलकोण्ड राज्य के वास्तविक निर्माता थे । सन् 1565 ई. "रक्कसि तंगडि" युद्ध का परिणा विजय नगर का पतन और इब्राहीम को अपार धन प्राप्त हुआ । इब्राहीम के बाद

---

41. भारत वर्ष का इतिहास – रतिभान सिंह नाहर – पृ. 212.
42. आन्ध्र का इतिहास – अकादमी – पृ. 363.

उसका सुपुत्र मुहम्मद कुली कुतुबशाह और पौत्र मुहम्मद कुतुबशाह ने चालीस वर्षों तक राज्य किया । वर्तमान हैदराबाद नगर का निर्माण इन्हीं के शासन काल में हुआ । अनेक भव्य वास्तु निर्माण भी किए । इनके बाद क्रमश: सुल्तान मुहम्मद कुली, अब्बुल कुतुबशाह, अबुल हसन आदि ने गोलकोंडा राज्य पर शासन किया ।

कुतुब शाही राजाओं को महानता युद्धों की विजयों के अलावा कला विज्ञान के क्षेत्र में भी योगदान रहा है । तेलुगु और फारसी भाषा में साहित्यिक ग्रन्थों का प्रणयन कराया । मुहम्मद कुली ने अपने दीक्खनी काव्य " ग्रन्थ में तेलुगु साहित्य की प्रशंसा की । गोदावरी तट पर भद्राचल रामालय को अबुल हसन कुतुबशाह ने भूमि दान दी । राम भक्त कवि रामदास भी इसी युग के थे ।

2·20· मध्यकालीन तेलुगु प्रान्त की सामाजिक स्थिति :-

काकतीयों के समय जनता ने वीर शैव का आदर किया । शैवों में भी पाशुपत, कापालिक, कालामुख, शक्तेय आदि अनेक शाखाएँ फैल कर जनता में शैव भक्ति को बढ़ावा दिया । वीर वैष्णव ने भी जनता को अपनी ओर आकृष्ट किया । उन दिनों निम्न वर्ग के लोगों को मन्दिरों में प्रवेश निषिद्ध था । लेकिन नल्लमल्ल चेंचु जाति के लोगों को मन्दिरों में प्रवेश है । वे रथ को रस्सा खींचते थे । पुजारी की अनुमति के बिना मन्दिर में प्रवेश करते थे और पूजा करते थे । विवाह के बाद " स्त्री " की जायदाद को पहचान कर स्त्री धन को पाँच तरह से विभक्त किया उत्तराधिकार में प्राप्त धन, खरीदा हुआ धन, भेंट, वसीयत में मिला धन । " यदि पिता ने सब कुछ खो दिया तो मातृधन बेटी को मिलना चाहिए । [43] स्त्री धन केवल बेटी और पोतियों को ही मिलना

43· आन्ध्रुल संस्कृति चरित्रा - कम्भंपाटि सत्यनारायण - पृ· 49·

चाहिए । स्त्रीधन को पति को लेने का अधिकार नही है । यद्यपि मध्य युग में स्त्री को पुरुष के समान अधिकार नही थे, लेकिन पूर्व युगों से उसकी स्थिति में परिवर्तन आ गया । शिवालयों के निर्माण के लिए अमीर गरीब सभी अपनी शक्ति के अनुसार दान देते थे । अनेक वर्गों के लोगों को इन मंदिरो निर्माण में काम मिल जाता था ।

इस समय जाति व्यवस्था में अनेक शाखाएं थी जो एक दूसरे को अलग करती हैं । लेकिन युद्ध काल में ये लोग अपने भेद भावों को भूलकर तलवार पकड़ते थे । ब्राह्मण ने विद्या और पांडित्य से अपना स्थान बनाए रखा । वैश्य वणिज्य व्यापार में लगे रहते थे । शूद्र अन्य सभी कार्य करते थे । अस्पृश्यों की अति दीन स्थिति रही । उँचीजाति के लोग निम्न जाति के लोगों के साथ कुटता से व्यवहार करते थे । व्यभिचार के लिए राज पोषण प्राप्त था । मध्य युग की सामाजिक स्थिति का हमे श्रीनाथ कृत " क्रीडाभिरामम् " से पता चलता । भक्ति प्रधान हिन्दू धर्म के पुनरुद्धार से समाज के वर्ण भेदों को मिटाना चाहा । लेकिन इनमे ऐक्य स्थापित नहीं हो सका । चतुर्वर्ण का महत्त्व वैसे का वैसा हो रहा । लेकिन वैदिक कर्म को प्रधानता देनेवाले ब्राह्मण, शासन कार्यों में नियुक्त हुए । वाणिज्य व्यापार भी करने लगे । सामान्य जनता खेती को ही प्रधान मानकर जीवन यापन करने लगी ।

2·20·1· उत्तर मध्य कालीन तेलुगु प्रान्त की सामाजिक स्थिति :-

§ सन् 1325 – 1565 ई· §

तेलुगु देश के इतिहास सन् 1325 का अनेक रूपो में प्राधान्य है । राज - नीतिक दृष्टि से सारा देश मुसलमानो के अधीन हो गया । समाज पर इनका प्रभाव दिखाई देता है ।

उत्तर मध्य युग में गावं की स्वतंत्र प्रशासनिक व्यवस्था थी । ग्राम रेड्डी और पटवारी के अधीन होते थे । उन दिनों वर्ण व्यवस्था अमल में थी । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के नाम से चार वर्ण होते थे । हर एक वर्ण की कई शाखाएँ होती थी । गाँव का मुखिया " रेड्डी " कहलाता था । नौकरी करने वाले ब्राह्मणों को नियोगी ब्राह्मण कहते थे । वैदिक कर्म प्रधानता देने-वाले " वैदिकी " [44] इसी प्रकार मुसलमानों में भी सय्यद और शेख नाम से दो शाखाएँ थी । युद्ध में पकड़े गए हिन्दू को इस्लाम स्वीकार करना पड़ता था ।

इस युग में शूद्रों की संख्या अधिक थी । वे ही हिन्दू समाज की रीड थे । इनमें अधिक सेना में भर्ति होते थे ।

इस युग की प्रजा का मुख्य आहार चावल ही था । मद्यपान प्रचलन मे था । लोग सुगंधद्रव्यों का प्रयोग करते थे । विद्या सीखने या सिखाने के लिए राजाओं का दबाव नहीं होता था । वेदाध्ययन करनेवालो, कवियों और धर्म शास्त्रों का बडा आदर होता था । तेलुगु साहित्य में इस युग का महत्वपूर्ण स्थान है । यह प्रबंध युग के नाम से प्रसिद्ध है । अग्रहार और मठ विद्या केन्द्र थे । मध्ययुगीन मनोरंजन के साधनों में " वीथि नाटक " प्रमुख थे । इनकी कथावस्तु पुराणों से ली जाती थी । " भागवत " कहलाने वाले ब्राह्मण इन नाटको में भाग लेते थे । ब्राह्मणेतर कलाकार " तोलु बोम्मलाट " अर्थात कटपुतली खेल और चित्रपट प्रदर्शन द्वारा मनोरंजन कराते थे । मुर्गो, भेड़-बकरियों की स्पर्धायें भी इस युग के मनोरंजन के साधन थे । [45] पल्नाटि वीर चरित्र " में इन खेलों का विशद वर्णन है ।

---

44. आन्ध्र का इतिहास - अकादमी - पृ. 335.
45. - वही - पृ. 336.

काकतीय और रायलु युगीन समाज में वीर पूजा देखने को मिलती है। मृतवीरो की आराधना परंपरागत हो गयी लेकिन बाद में इसका अंत हो गया। वीर शैव के नाम पर आत्मबलि देने की प्रथा थी। पलनाडु के मृत वीरों की प्रतिमाएँ भी स्थापित की गई।[46] ऐसी स्त्री मूर्तियों को ग्राम देवता कहते है।

इस युग की समाज में वेश्या वृत्ति बे रोक टोक चलती थी। मंदिर और राजमहलों में "वेश्याओं का नृत्य होता था। देवदासी प्रथा प्रचलन में थी। इस्लाम धर्म के प्रवेश के बाद शैव, वैष्णव और जैन मुसलमानों के क्रोध का शिकार हो गए। हिन्दू धर्म का पुनरुद्धार करने के लिए रेड्ड राजा, नायक राजा प्रयत्न करते रहे। विजय नगर के शासन काल में इस्लाम का प्रवेश आन्ध्र में नहीं हो सका। वैदिक धार्मे को प्रोत्साहन मिला। मुख्यत: वैष्णव धर्म को आदर मिला। यद्यपि शैव, वैष्णव जैन इस युग के प्रधान धर्म रहे। जनता अपनी इच्छानुसार धर्म स्वीकार करते थे।

2·21· तुलनात्मक अनुशीलन :-

मध्यकालीन भारतीय राजनैतिक इतिहास में उत्तर और दक्षिण भारत में लगभग परिस्थितियाँ एक समान थी। मध्यकाल तक दोनो प्रान्तो में मुसलमानों का आगमन हो चुका था। मुसलमानों के आक्रमणो का सामना उत्तर भारत के राजाओं को करना पडा। मुसलमानों ने पहले धन प्राप्त करने के उद्देश्य से भारत में कदम रखे। बाद में उनकी दृष्टि साम्राज्य स्थापना की ओर गई।

46· आन्ध्र का इतिहास - अकादमी - पृ· 336·

आन्ध्र (दक्षिण भारत) में काकतीयों के समय से मुसलमानों का आगमन हो गया था । खिलजी वंशजों ने देवगिरी वरंगल पर कई बार आक्रमण किया । तुगलक भी दक्षिण भारत पर आक्रमण कर के राज्य विस्तार किया । धीरे-धीरे दक्षिण भारत के कई प्रान्त दिल्ली सुल्तानों के हाथ आ गये ।

दिल्ली सुल्तानों से तंग आकर अनेक स्वतंत्र हिन्दू राज्य स्थापित किए गए जैसे गुजरात, मेवाड, मालवा, काश्मीर, चित्तौड आदि । हिन्दुओं के साथ सहिष्णुता का व्यवहार किया ।

आन्ध्र में भी मुसलमान शासको के प्रभाव को कम करके, हिन्दू धर्म के पुनरुद्धार के लिए अनेक स्वतंत्र राज्य स्थापित हुए जिनमें मुसनूरि नायक राज्य, रेड्डी राज्य, विजय नगर आदि प्रमुख है । दक्षिण भारत में विजयनगर साम्राज्य के समय मुसलमान राज्य बहमनी राज्य की स्थापना हुई । अक्सर इन दोनों राज्यों में युद्ध हुआ करते थे । बहमनी सुल्तान कट्टर मुसलमान थे ।

उत्तर भारत में मुसलमानों से बढ़ते हुए इस्लाम धर्म के प्रभाव को कम करने के लिए भक्ति आन्दोलन शुरू किया गया । इस समय का भक्ति साहित्य उल्लेखनीय है । कबीर, सूर, तुलसी, मीरा, बिहारी आदि भक्त कवि इसी युग के थे । इनका उद्देश्य हिन्दू तत्व को पुन: जगाना ही था ।

दक्षिण में भी इस समय भक्ति साहित्य विपुल मात्रा में रचा गया । शैव, वैष्णव और जैन धर्म से संबंधित साहित्य क्रमश: शिव, विष्णु और महावीर के रूपों की चर्चा साहित्य में की गई ।

तृतीय अध्याय

सांस्कृतिक, धार्मिक परंपराएँ और साहित्य पर प्रभाव

मध्यकालीन सांस्कृतिक परिवेश : तुलनात्मक अनुशीलन

3.0. प्रस्तावना :-

भारत अति प्राचीन काल से ही विभिन्न जातियों और धर्मों का केन्द्र रहा और सामाजिक संगठन का कार्य स्थल भी । भारत की परिस्थितियाँ तथा परंपराएँ भी भिन्न रही हैं । इस दृष्टि से यहाँ के सांस्कृतिक इतिहास की पृष्ठभूमि अपने आप में सर्वथा स्वतंत्र रूप में रही है । भारत के सांस्कृतिक विकास की परंपरा को दृष्टि में रख कर देखा जाए तो यह निश्चित रूप से दिखाई देता है कि एक संस्कृति के निर्माण में जो कारण तथा प्रयोजन विद्यमान रहे हैं; दूसरी जाति के सांस्कृतिक निर्माण में लग भग वे ही कारण तथा प्रयोजन विद्यमान रहे हैं । इनका एक समन्वित रूप समस्त धार्मिक सांस्कृतिक परंपरा में परिलक्षित होता है ।

3.1. संस्कृति का स्वरूप और विकास :-

संस्कृति का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक और गहन है । सामान्यत: यह माना जाता है कि समस्त मानव समाज के विकास की व्यष्टिमय तथा समष्टिमय उपलब्धि ही संस्कृति है ।

" मानव जीवन की संपूर्ण गतिविधियों का संचालन अंतर्वृत्तियों की जिस समष्टि द्वारा होता है तथा जिसको अपनाने से वह सच्चे अर्थों में मनुष्य बनने की दिशा में अग्रसर होता है उसे संस्कृति कहते हैं । "[1] व्युत्पत्ति की दृष्टि से संस्कृति शब्द " सम " उपसर्ग पूर्वक " कृ " धातु से निष्पन्न होता है । यह परिष्कृत और परिमार्जित करने के भाव का सूचक है साथ ही इसमें शिष्टता, सौजन्यता आदि अर्थों का भी आविर्भाव हो जाता है । मानवता को शिष्ठ बनाने वाले उसके आदर्श तथा उसकी परंपराएँ और अन्य मान्यताएँ संस्कृति में समाहित हैं । अंग्रेजी में संस्कृति शब्द का समानार्थक शब्द है : " कल्चर " । व्युत्पत्ति की दृष्टि से " कल्चर " और " कल्टिवेशन " शब्दों में साम्य है । " कल्टिवेशन " का अर्थ " कृषि " है । कृषि का उद्देश्य भूमि की प्राकृतिक अवस्था को परिष्कृत करना है । संस्कृति के प्रभाव से ही व्यक्ति विशेष समाज के ऐसे कार्यों में प्रवृत्त होता है जिनसे सामाजिक, साहित्यिक, कलात्मक, राजनीतिक तथा वैज्ञानिक क्षेत्रों में परिष्कार और उन्नति होती है ।

" संस्कृति " के उद्देश्य तथा कार्य से यह स्पष्ट विदित होता है कि वह मानव जीवन को निरापद तथा स्थाई ही नहीं प्रत्युत अनेक महत्त्वपूर्ण उपादानों द्वारा उत्कृष्ठ बनाने वाले समस्त व्यक्तिगत तथा सामाजिक व्यवहारों, कार्य कलापों, विचारों, आस्थाओं, अनुभूतियों तथा आदर्शों का एक शक्तिशाली पुंज है "[2] संस्कृति मानव की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन भी है । संस्कृति एक अविच्छिन्न प्रवाह है । जीवन में उपलब्ध सांस्कृतिक गतिविधियाँ आनेवाली पीढ़ी को विरासत के रूप में प्राप्त हो जाती है और उसे परंपरा से क्रमशः जोड़ती चली जाती हैं ।

1· मध्यकालीन हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति : मदनगोपाल गुप्त – पृ· 1·
2· – वही – पृ· 21·

संस्कृति से व्यक्ति तथा समाज की सर्वकालिक परस्पर संबद्धता स्पष्ट होती है । संस्कृति व्यक्तियों और समाज के घटकों के बीच उन्हीं के लिए तथा उन्ही के द्वारा निर्मित स्थाई तथा विकास की दिशा में गतिशील अवस्था है । संस्कृति की अविच्छिन्न गतिशीलता में अनुपयोगी तत्वों की अस्वीकृति एवं उपयोगी तत्वों का ग्रहण, दोनों साथ-साथ चलते जाते हैं किन्तु यह परिवर्तन तेज गति से नहीं होता । यह सामाजिक परंपरा है जो व्यक्ति को अनन्तकालीन जीवन से संबद्ध करती है । ए॰इर्विंग हैलोवेल(A. Irving Hallowell) के शब्दों में " जीवन रस के पोषण की जैविक परंपरा से भिन्न हमारी वह सामाजिक रिक्थ है जो समवस्था की पद्धति द्वारा परंपरागत रूप से चली जाती है । " [3]

3॰2॰ संस्कार और संस्कृति का अर्जन :-

प्रत्येक व्यक्ति का व्यवहार वैयक्तिक अनुभव तथा समाज से प्राप्त संस्कार पर निर्भर करता है । जन्म के समय उसमें मानवता के गुणों का पूर्ण विकास नहीं होता किन्तु समाज से वह संस्कृति के गुणों का अर्जन मृत्यु पर्यन्त करता जाता है । मानव व्यक्तित्व के विकास में संस्कारों का सर्व प्रथम स्थान है ये ही जीवन के प्रगतिपथ के सोपान समान हैं और क्रम से उसे अधिक ऊँचा उठाता जाता है । [4] सुप्रसिद्ध इतिहासकार गिब्बन (Gibban) के अनुसार " प्रत्येक व्यक्ति दो प्रकार से शिक्षा ग्रहण करता है एक तो वह दूसरों से प्राप्त करता है और दूसरी अपने स्वानुभव से । स्वानुभव आत्मगत संस्कारों को प्रेरणा देते हैं तो दूसरों से वह सामाजिक संस्कारों को प्राप्त करता है । " ... " आत्मगत संस्कार मे ही मनुष्य

3॰ Heading; culture, personality and society. A.L Kreber Page - 599

4॰ भारतीय संस्कृति का उत्थान - प्रथम संस्करण - डा॰ रामजी उपाध्याय - पृ॰38

को संपूर्ण शक्ति लगाना चाहिए। भारतीय मनीषा का मूल आत्मगत संस्कार ही है।"[5] सुकरात ने कहा था "नो दैं सेल्फ" अर्थात् "अपने आप को पहचानो" "आत्मानंम् जानीहि" सिद्धान्त के समान ही अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।[6]

व्यक्ति समाज में रहते हुए संस्कार ग्रहण करता हुआ अपनी संस्कृति के गुणों को आजीवन सीखता है। वस्तु, व्यवहार ज्ञान, भाषा, विचार, आदर्श आदि सामाजिक परंपरा की उपलब्धियाँ उसे उत्तराधिकार में मिलती जाती है किन्तु उसके साथ ही निकटवर्ती व्यक्तियों के रहन-सहन, आचार विचार तथा आदर्शों से प्रभावित होकर संस्कार ग्रहण करता है।

3.3. संस्कृति और सभ्यता :-

समाज शास्त्रियों के अनुसार मनुष्य का जीवन अपनी प्रथम अवस्था में आज जैसा नहीं था। "सभ्यता उसके जीवन से हटकर समाज की ओर बढ़ने की स्थिति है। खोज और आविष्कार उसके विकास की मंजिलें हैं।[7] डा.बलदेव प्रसाद ने मिश्र ग्रेशम के विश्व कोश में आए हुए संस्कृति और सभ्यता विषयक विवेचन का उल्लेख करके उसके आधार पर निष्कर्ष प्रस्तुत किया है कि "संस्कृति एक प्रयत्न नहीं किन्तु एक विशिष्ट स्थिति हुई और यह सभ्यता ज्ञान पर अंश नहीं है सभ्यता उसके ज्ञान परक अंशों से उद्भूत हुई है।"[8] फिलिप बेगबी के अनुसार "सभ्यता

---

5. मध्यकालीन हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति - मदनगोपाल गुप्त - पृ. 27.
6. - वही -
7. भारतीय कृष्ट का क ख - डा.जयचन्द्र विद्यालंकार प्रथम संस्करण - पृ. 9-12.
8. भारतीय संस्कृति में गोस्वामी तुलसीदास का योगदान - सं.-1953 - पृ. 3-4.

व्यावहारिक तथा बौधिक ज्ञान का निकाय एवं प्रकृति का नियंत्रण करने वाले यांत्रिक साधनों का समूह है । 9

इतिहासकार मानते हैं कि मानव सभ्यता तथा संस्कृति का विकास क्रमशः हुआ है । मनुष्य की भौतिक उन्नति धीरे-धीरे हुई है । मानव ने अपनी सभ्यता के आदिम युग से आगे बढ़कर आज जो उन्नति की है उसका कारण मनुष्य के मस्तिष्क की उत्कृष्ठता है । अपनी प्राथमिक आस्था से मनुष्य जिस प्रकार सभ्यता के क्षेत्र में अग्रसर हुआ है ठीक उसी प्रकार वह तभी से संस्कृति के क्षेत्र में भी प्रविष्ठ हुआ होगा । संस्कृति तथा सभ्यता दोनों के विकास क्रम से इस महत्वपूर्ण तथ्य पर प्रकाश पड़ता है कि ये दोनों ही मानव विकास के दो पहलू हैं, एक उसकी अंतश्चेतना सौन्दर्यानुभूति एवं आन्दोल्लास आदि अभ्यांतरिक तत्वों से संबंधित है तो दूसरी ओर उसकी स्थूल तथा भौतिक सुख सामाग्री के आयोजन और उसके लिए आवश्यक संगठित प्रयत्नों की ओर संकेत करता है । यह कहा जा सकता है कि संस्कृति का संबंध मानव की आन्तरिक परिष्कृति तथा चेतना से है किन्तु सभ्यता सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों से बंधी हुई है ।

यह सच है कि संस्कृति धीरे-धीरे विकसित होनेवाली एक कृत्रिम किन्तु अनिवार्य स्थिति है जो मूलतः नैसर्गिक न होकर भी निरंतर विकसित होती हुई परिस्थितियों के प्रति प्रकृत या स्वाभाविक हो जाती है । सभ्यता की स्थिति में पहुँच कर सामाजिक विकास की कुछ मंजिले पार करने के बाद सामूहिक विरासत से व्यक्ति तथा उसका समाज अपनी परंपराओं का निर्माण कर लेता है । संस्कृति तथा सभ्यता को "साध्य और साधन" के विवेचन द्वारा भी स्पष्टतः समझा जा सकता है ।

---

9. Culture and History - Phillip Bagby - पृ. 160

निष्कर्षत: सभ्यता का क्षेत्र व्यापक या बहुदेशी हो सकता है परन्तु संस्कृति के सूक्ष्म होने तथा देशीय भौगोलिक एवं प्राकृतिक परिस्थितियों, रीति - रिवाजों, सामाजिक परंपराओं तथा लोक विश्वास आदि से अनुप्राणित होने के कारण देशगत, समाजगत परंपराओं के अनुसार प्रत्येक देश या राष्ट्र की अपनी विशेषता होती है । यह मानव जीवन के समस्त क्रिया कलापों की प्राण शक्ति भी होती है । यह सामूहिक अस्मिता की शक्ति है ।

संस्कृति के निर्माण तथा विकास में भौगोलिक परिस्थिति तथा सामाजिक परंपरा प्रधान रूप से कार्य करती हैं । अत: संसार में दिखाई देने वाली भिन्नता के कारण विश्व में संस्कृति के विविध भेदों का होना आवश्यं भावी है । यही कारण है कि विचारकों ने व्यापक अर्थों में विश्व मानव की एक संस्कृति मानकर भी देश जाति एवं धर्म के आधार पर निश्चित संस्कृतियों का वर्गीकरण किया । [10] प्रत्येक देश या राष्ट्र का अपना एक निश्चित आदर्श होता है और आदर्श की दिशा में अग्रसर होने वाले आचार, विचार, मान्यताएँ तथा उसके परंपरागत संस्कार देशीय संस्कृति का निर्माण करते है । अत: यह स्वत: सिद्ध है कि संसार अनेक राष्ट्रों में विभक्त होने के कारण निश्चित वैशिष्ट्य से संयुक्त संस्कृतियों की अव - स्थिति संभव है जिसकी युक्ति युक्तता डा॰ प्रसन्न कुमार आचार्य ने विद्वतापूर्ण ढंग से प्रमाणित किया है -- " Just as the world is divided into nation and races, so it divided into types of culture, each having its distinctive charactors, its spirit, its talant, its tone as recongnizable in nation as in an individual." [11]

10• भारतीय संस्कृति - बलदेव प्रसाद मिश्र - पृ• 157•

11• Glories of India an Indian culture and Civilization

Page -- V

इस आधार के साथ ही इसके मूलाधार के रूप में राष्ट्र, जाति, धर्म से संबंधित तत्व ही नहीं अपितु अंतर्राष्ट्रीय तत्वों का अनुपम समन्वय दृष्टि गोचर होता है ।

3·4· संस्कृति और धर्म :-

भारतीय संस्कृति के उदय और अस्तित्व के मूल में धर्म सदाशय रूप में निहित है । भारतीय संस्कृति में विश्व जनीन मानवीय आदर्शों का समावेश धर्म के संपर्क से ही हुआ । समय-समय पर उसके अस्तित्व के लिए जब-जब खतरे तथा संकट उपस्थित हुए तब-तब धर्म ने ही उसकी रक्षा की । पुरातन आर्य - आर्येतर युग से लेकर आज तक के लगभग पाँच हजार वर्षों के इतिहास में संस्कृति की अक्षुण्णता और उनका निरन्तर विकास धार्मिक समन्वय के कारण ही संभव हो सका । " धर्म वही है शास्त्र जिसका निर्देश करें संस्कृति में शास्त्र - अविरूद्ध अर्थात् शास्त्र -सम्मत आचार का समावेश होता है । वह आचार लौकिक भी है अलौकिक भी । संस्कृति का अलौकिक पक्ष धर्म तथा तात्त्विक पक्ष कर्म संस्कृति में जो आचार समन्वित है उनमें धर्म और कर्म दोनो का योगदान है । "[12]

वस्तुत: देखा जाए तो संस्कृति और धर्म में अधिक अन्तर नहीं है । भारतीय दृष्टि से वेदों को धर्म का मूल कहा गया है । धर्म का प्रतिपादन एवं विधान करने वाली स्मृतियाँ भी वेद मूलक हैं । सदाचार अर्थात् कर्तव्या कर्तव्यों का समुच्चय ही संस्कृति है । सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, त्याग, तप और परोपकार आदि सार्वभौम कर्तव्य है । इस राष्ट्र में लोकायातिक, जैन, बौद्ध, वैष्णव, शैव और शाक्त आदि जितने भी धर्मावलंबी हुए उन सबने अपने अपने पन्थों,

---

12· भारतीय संस्कृति और कला - पृ· 84·

मतो तथा सिद्धान्तों के प्रतिपादन तथा प्रवर्तन के लिए इन सार्वभौम विश्व जनीन कर्तव्यों को अपनाया है ।

संस्कृति की व्यापकता धर्म की व्यापकता से सिद्ध होती है । धर्म की छोटीबडीनदी-नालियों को अपने में समाहित करती हुई भारतीय धर्म गंगा अपनी पावनता एवं महानता से सदा ही समरस बनी रही । इस प्रकार यह उदार एवं विशाल धर्म गंगा ही भारतीय संस्कृति है । धर्म ने सभ्यता तथा संस्कृति के उन्नयन में मानव समाज का पथ प्रदर्शन किया धर्म के स्वरूप का साक्षात्कार इस प्रकार है -- " यह मानव धर्म जिसके इहलोक तथा परलोक दोनों में अभ्युदय और निःश्रेयस (मोक्ष) इन चारों पुरूषार्थों की प्राप्ति होती है वही धर्म है ।" [13] इसका आशय यह हुआ कि सबको समान रूप से भेद भाव दिखाए बिना, अभ्युदय की ओर ले जाए और सबको कल्याण का मार्ग दिखाए वही धर्म है । धर्म एक मर्यादा है अनुशासन है जिससे समस्त बहूयांगों को नियंत्रित किया जा सकता है । धर्म ही भारतीय संस्कृति का प्राण एवं प्रेरणा स्त्रोत रहा है ।

भारतीय संस्कृति की व्यापकता एवं धार्मिक उदारता ने अपने प्रति सहिष्णुता के भाव लेकर आनेवाली विदेशी जातियों का स्वागत किया । इतना ही नहीं उसे भी अपने स्नेहांचल में समेटा जो उसके प्रति असहिष्णुताओं, क्रूरताओं की दुर्धारणाओं की गठरी बांधकर यहाँ आए थे । इसने वैदिक धर्म को ही मानव धर्म के रूप में स्वीकार किया ।

---

13. भारतीय संस्कृति और कला - पृ. 80.

3.5. वैदिक संस्कृति :-

हिन्दू संस्कृति का आविर्भाव आर्य और आर्योतर संस्कृतियों के मिश्रण से हुआ । इसी को वैदिक संस्कृति कहा गया ।[14] वेद ही भारतीय संस्कृति के मूल उत्स हैं । वे वैदिक और प्राग्वैदिक संस्कृतियों के मिलन से उत्पन्न हुए । वैदिक साहित्य में आर्य और आर्योतर जातियों उल्लेख मिलता है ।[15]

पौराणिक हिन्दू धर्म निगम और आगम पर आधारित माना जाता है । निगम वैदिक विधान है । आगम प्राग्वैदिक काल से आती हुई परंपरा वाचक है । ऐतिहासिक संदर्भों से पता चलता है कि पुरातन काल से ही भारत में अनेक धर्मों का उदय और अस्त होता रहा है । सभी धर्मों ने थोडे बहुत रूप में यहाँ की संस्कृति को प्रभावित किया । इस देश के सांस्कृतिक अभ्युदय की दृष्टि से दो धर्मों का मुख्य रूप से योगदान रहा है वे हैं - अवैदिक और वैदिक ।[16]

वैदिक संस्कृति को प्रभावित करने में जिन अवैदिक संस्कृतियों का महत्त्वपूर्ण योग रहा है उनमें लोकायातिक संस्कृति का नाम अग्रणी है । बौद्धिक एवं वैचारिक क्रान्ति के इस परवर्तीयुग में जिन लोकायातिक और जैन बौद्ध धर्मों का नवोदय हुआ उनकी मूल प्रेरणा के सूत्र वेदों में ही निहित थे ।

---

14. संस्कृति के चार अध्याय - पृ. 50.

15. भारतीय संस्कृति और कला - पृ. 128.

16. - वही - पृ. 129.

आर्य और आर्योतर जातियों के सांस्कृतिक समन्वय में वैदिक रुद्र और पौराणिक शिव का महत्वपूर्ण योगदान रहा है । इस समन्वय की परिचायिकी एवं वाहिका शिव संस्कृति है, जिस का व्यापक प्रचार-प्रसार उत्तर से दक्षिण भारत तक रहा है । वेदों और वैदिक साहित्य में रुद्र को प्रमुख देवता के रूप में माना गया है । उसकी उग्र और करूण दोनो रूपों की स्तुति की गई है । सिंधु सभ्यता में भी यही परंपरा दिखाई देती है । यहाँ शिव शक्तियो तक एकमुख, त्रिमुख तथा चतुर्मुख शिव के रूप में अंकित किए हैं । भारतीय संस्कृति में शिव का इस दृष्टि से विशेष महत्व है कि उसके माध्यम से वैदिक संस्कृति का प्रचार एशिया भर में हुआ ।

3·5·1· भारतीय संस्कृति की प्राचीनता :-

भारतीय संस्कृति के निर्मातृ और उसके उत्तराधिकार को वहन करने वाली जाति का इतिहास सदा जीवन्त और ज्वलन्त रहा है । भारतीय संस्कृति का आविर्भाव आर्य और आर्योत्तर संस्कृतियों के मिश्रण से हुआ जिसे वैदिक संस्कृति कहते हैं । वह वैदिक प्रागवैदिक संस्कृतियों के मिलन से उत्पन्न हुई । उसके मूल निर्माता वैदिक ऋषि थे [17] जिन्होंने धर्म को अर्थात् धर्म स्वरूप वेद मंत्रों को साक्षात् किया है।वैदिक ऋषियों ने वेदांग, ब्राह्मण ग्रन्थ, अरण्यक आदि का निर्माण किया।उनकी उक्त परंपराओं ने अपने ढंग से संस्कृति के विकास में योगदान दिया । उनके कर्म और ज्ञान का आदान प्रथम मंत्र द्रष्टा ऋषियों द्वारा हुआ । उसके बाद ऋषियों ने परंपरागत कर्म और ज्ञान की विरासत को विकसित करने की दृष्टि से वैदिक धर्म को अधिक व्यापक तथा बहुजन बोधगम्य बनाने का कार्य किया । इस युग के ऋषियों की सांस्कृतिक देन यज्ञ संस्था के रूप में प्रकाश में आई । इन्होंने वैदिक समाज को संगठित किया और उसमें सामूहिक चेतना के भाव भरें ।

17· संस्कृति के चार अध्याय - रामधारी सिंह दिनकर - पृ· 58·

प्राचीन काल में अगस्त्य मुनि जैसे सांस्कृतिक पुरस्कर्ताओं ने प्रान्तीय भेदों को समाप्त कर आसेतु-हिमाचल पर्यन्त एकता की परंपरा का सूत्रपात कर दिया है । भारतीय संस्कृति के आरम्भिक विकास काल में ही आर्यों ने आर्येत्तर संस्कृति को आत्मसात कर लिया था जो कि के॰एन॰ पणिकर के अनुसार पौराणिक हिन्दू धर्म में दीर्घकाल से पाए जाने वाले अनेक सांस्कृतिक तत्वों का समन्वय प्रमाणित है । [18]

संस्कृति के विकास में उपनिषदों का अपना योगदान है । उपनिषदों की विचार प्रधान तर्क पद्धति ने मोक्ष पुरूषार्थ का नया उद्घाटन किया और ज्ञान की अनंत धाराओं का विकास किया । ये वैदिक ज्ञान की विरासत को तर्क तथा प्रमाण की कसौटी पर कसकर तत्व चिन्तन की नई पद्धतियों के द्वार खोले । उपनिषदों की इस विचार प्रधान संस्कृति के अनेक सुपरिणामों के उदय के बावजूद बहुसंख्यक समाज प्राय: अछूता ही रहा । [19] इस की पूर्ति पुराणों मे और मुनि-महात्माओं ने की ।

पुराणों ने परंपरागत वैदिक धर्म को लोकोपयोगी बनाकर जन जीवन को अत्यधिक प्रभावित किया । वेदों में जिस समन्वित संस्कृति के दर्शन होते हैं । पुराणों ने उसको विकास के उच्च शिखर पर पहुँचाया । स्मृतियाँ और पुराण भारत की आध्यात्मिक चेतना के अजस्र श्रोत रहे हैं । उनके द्वारा एक ओर सामाजिक संगठन की स्थापना हुई और दूसरी ओर मानवाधिकारों की रक्षा के प्रयत्न हुए ।

---

18. A. survay of India – K.M. Panikkar – Page – 4 Edi – 1960

19. भारतीय संस्कृति और कला – वाचस्पति गैरोला – पृ॰ 63.

भारत के अभ्युदय के इतिहास में स्मृतियों तथा पुराणों का इस दृष्टि से विशेष महत्व है कि इनके द्वारा भारतीय जन जीवन में मर्यादा तथा नियंत्रण के सुदृढ़ आधार बने, जिसके परिणाम स्वरूप अनेक विपद्ग्रस्त परिस्थितियों में देश की रक्षा होती रही । विश्व में सांस्कृतिक पुनरुत्थान के मूल में जहाँ रक्तरंजित प्रभुसत्ता तथा बल, वैभव, भूख रही है वहाँ भारत में इस पुनरुत्थान के मूल में ज्ञानवंत एवं आत्म त्यागी मनीषियों के सुचिंतित विचार निहित रहे हैं । [20] उनकी इस आध्यात्म परक एवं धार्मिक मान्यताओं ने अतीत के अनेक युगों तक भारतीय जीवन को संचालित किया और समस्याओं को सुलझाया ।

पुराणों के आदर्शमय, लोक प्रिय आख्यान उपाख्यानों के आधार पर समकालीन उदात्त चरित राज पुरुषों के जीवनादर्शों को काव्य के कलेवर में ढाल कर वाल्मीकि और कृष्ण द्वैपायन वेद व्यास जैसे दिव्यचेता मनस्वियों ने क्रमश: " रामायण " और " महाभारत " की रचना कर परंपरागत सांस्कृतिक धाराओं को युग के अनुकूल रूप दिया ।

3·5·2· भारतीय संस्कृति की विशेषताएँ :-

अमृतत्व, आध्यात्मिकता लक्ष्य युक्त जीवन, शाश्वत जीवन का जीवनक्रम, सार्वभौम सिद्धान्त परक समाज व्यवस्था, कर्म तथा पुनर्जन्म का सिद्धान्त, एकात्मता की भावना, तथा लोक मंगल की भावना आदि भारतीय संस्कृति के तत्वों की कुछ मुख्य विशेषताएँ हैं ।

20· भारतीय संस्कृति और कला - पृ· 64·

संस्कृति का क्षेत्र समस्त जीवन में व्यापक रूप में प्रतिष्ठित है जिसके साथ ही एतद्विषयक भारतीय अवधारणा तथा उसकी संस्कृति की पूर्व निर्दिष्ठ विशेषताओं द्वारा उसके मूल तत्वों पर भी प्रकाश पडता है । निष्कर्ष रूप में उन्हें इस प्रकार विभक्त किया जा सकता है ।

3·5·2·1· आध्यात्मिक तत्व :-

परलोकीय धारणा, मोक्ष, स्वर्ग, साधना मार्ग, उससे निर्मित जीवनादर्श तथा इतर साधन इस तत्व के अन्तर्गत पाए जा सकते हैं ।

3·5·2·2· लौकिक तत्व :-

जीवन क्रम, संस्कार तथा सामाजिक उत्सव, दिन चर्या, मर्यादा का भाव, मनोरंजन के साधन उद्योग धन्धे, वस्त्रालंकरण, भोजन, सामाजिक रूढ़ियां लोक विश्वास तथा मान्यताएँ एवं कलाएँ इसके अन्तर्गत हैं ।

इन तत्वों के आधार पर काल विशेष की संस्कृति के स्वरूप का सम्यक अनुशीलन किया जा सकता है ।

3·6· पूर्वमध्यकालीन सांस्कृतिक पर्यावरण :-

तुर्क-आगमन शासकों की घोर असहिष्णुता के कारण हिन्दुओं को हत प्रभ होकर भगवान की शरण में जाना पडा था । भारत में सूफियों तथा शिया मुसलमानों के साथ अनेक तुर्की सरदारों ने जो अत्याचार किए वे किसी प्रकार भी कम महत्वपूर्ण नही थे । कभी-कभी तो भयंकर प्रतिक्रिया हुई थी । रजिया बेगम { 1236-37 } के शासन काल में इस सीलया मुसलमानों ने जामा मस्जिद पर आक्रमण कर दिया था ।

सन् 1320 ई• में कुछ दिनों के लिए दिल्ली राजनीति में क्रान्तिकारी परिवर्तन आ गया था और इब्नबतूता के शब्दों में सुल्तान की हिन्दुओं पर विशेष कृपा की। इसलिए उसने मुसलमानों की निन्दा आरम्भ कर दी थी । वह इस्लाम के विरुद्ध काम करने लगा था । गोहत्या बन्द कर दी गई । यदि कोई व्यक्ति गोहत्या कर देता तो उसी गाय की खाल में उसे भरवा कर मार डाला जाता था । ••• उसने मुसलमानों को गाय का सम्मान करने के लिए बाध्य किया ।[21]

अनेक राजनीतिक क्रान्तियों में नवोदित इस्लाम संप्रदायों ने भाग लिया और विशेषतया पश्चिमोत्तर तथा दक्षिण भारत के हिन्दू विद्रोह में तो इन्होंने काफी योदान दिया था । राजनीति का आश्रय लेकर कट्टर मुसलमानों की धर्मान्धता में कमी लाने का प्रयत्न शिथा, सूफी तथा खोजा लोग बराबर करते रहे ।

जनता पर प्रभाव लगभग चार शताब्दियों की कठोर राजनीतिक श्रृंखला ने जन जीवन को अशान्त बना दिया, बलात् मुसलमान बनाए गए अथवा आर्थिक विपन्नता के कारण इस्लाम स्वीकार करने वालों ने इस लचीलेपन को प्रोत्साहन दिया । अपने भक्त कवियों को ये सारे तत्व प्राप्त होते हैं । उनमें विक्षोभ जो उग्रता और राजसत्ताओं के प्रति अवहेलना की जो भावना कभी बहुत दबी और कभी उभरी हुई मिलती है उसके मूल में राजनीतिक परिस्थिति ही है ।

हर्षवर्धन के अन्त के साथ ही हिन्दू साम्राज्यवाद का पतन आरम्भ हो जाता है । सातवीं से बारहवीं शताब्दी तक का उत्तरी भारत अनेक राजनीतिक इकाइयों में विभक्त होकर शक्तिहीन बन गया । फलत: मध्यकालीन हिन्दी साहित्य का रचना क्षेत्र उत्तर भारत कालान्तर में पराधीनता की श्रृंखला में आबद्ध होकर सर्वथा नवीन सामाजिक धार्मिक, सांस्कृतिक परिस्थिति का अनुभव करने लगता है ।

21• भक्ति आन्दोलन का अध्ययन – डा•रतिभानुसिंह नाहर – पृ• 242•

प्राचीन काल में यूनानी, शक, कुषाण, हूण आदि अनेक विदेशी जातियों का हमारे देश में प्रवेश हुआ। इन जातियों ने यहाँ अपना राजनीतिक प्रभुत्व भी स्थापित किया। किन्तु भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति इतनी प्रभावशाली थी कि शासकवर्गीय विदेशियों ने भी स्वयं इसकी प्रभुता स्वीकार की। वे इस संस्कृति में इस प्रकार घुल मिल गए कि उन्हें अलग करना या अलग पहचानना कठिन हो गया। लेकिन तुर्क अफगान एक ऐसी जाति थी कि जिसका अपना पृथक सुदृढ़ सामाजिक संगठन था, कठोर धार्मिक विश्वास थे और साथ-साथ सशक्त राजनीतिक संगठन। दुर्भाग्यवश दिल्ली सल्तनत के कुछ ही शासकों ने धार्मिक सहिष्णुता की नीति अपनायी। ऐसी दशा में हिन्दू समाज में मुसलमान समाज का खप जाना नितान्त कठिन हो गया था। हिन्दू समाज में हीनता की भावना ने बलात् निम्न वर्ग को इस्लाम की ओर खींचा। सौभाग्य से दोनो विदेशी संस्कृतियों के कुछ प्रगतिशील विचारकों का अभ्युदय हो चुका था जिन्होंने अपने - अपने धर्म एवं समाज की धर्मान्धता एवं संकोर्णता के मूल पर ही कुठाराघात आरम्भ कर दिया।

सांस्कृतिक क्रान्ति का युग :-

ईसा पूर्व छठी शताब्दी का इतिहास में एक विशिष्ठ महत्व है। इस युग में भूमंडल के विशाल क्षेत्र में एक असाधारण आध्यात्मिक चेतना जागी। 22 विश्व के अनेक देशों में सुधारकों ने तात्कालीन धार्मिक व्यवस्था के विरोध में आवाज उठाई। यूनान में हिराक्लिट्स और पायथागोरस ने सामन्तों के अत्याचार तथा सामाजिक कुप्रथाओं के विरुद्ध युद्ध आरम्भ किए। फल स्वरूप यूनान में पुरातन परंपरा का ह्रास हुआ। प्रजातांत्रिक सिद्धान्तों का विकास हुआ। ईरान में

---

22. भारत का सांस्कृतिक इतिहास - राजेन्द्र पाण्डेय - पृ.

जरथुस्थ ने तत्कालिक धार्मिक अन्धविश्वासों का विरोध करके एकेश्वरवाद तथा अग्नि की महत्ता पर बल दिया । अवेस्ता उनके धार्मिक उपदेशों का संकलन है । चीन में भी इसी काल में महानदार्शनिक कंफ्यूशस ने पुरातन सिद्धान्तों के विरुद्ध आन्दोलन चलाया । इसी समय भारत में भी एक धार्मिक क्रान्ति का जन्म हुआ । भारतीय सभ्यता संस्कृति और इतिहास के नव निर्माण तथा सामाजिक अभ्युत्थान की दिशा में धार्मिक पन्थों को सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान रहा । उनमें जैन बौद्ध धर्म प्रमुख हैं । वेदों की प्रमाणिकता पर उपनिषदों में संदेह नहीं किया किन्तु वैदिक धर्म काम्य स्वर्ग को अयथेष्ट बता कर वेदो की एक प्रकार से आलोचना उपनिषदों ने शुरू करदी ।[23] वेद सबसे अधिक महत्त्व यज्ञों को देते थे । वैदिक धर्म में हिंसापूर्ण प्राबल्य के कारण समाज में वैषम्य बढ़ने लगे । समाज में वर्ण व्यवस्था विरोध गति में बढ़ने लगी । ब्राह्मणों को समाज में प्रमुख स्थान प्राप्त हो गया था । अन्य वर्ग अधम समझे जाने लगे । इसी लिए वैदिक धर्म के खिलाफ जैन बौद्ध धर्म प्रकट हुए ।

3·7· जैन धर्म :-

भारत के सुधारवादी आन्दोलनों में जैन धर्म का प्रमुख स्थान एवं योगदान रहा है । इस में सर्वज्ञ रागद्वेष के विजयी, त्रैलोक्यपूजित, यथास्थित, यथार्थ-वादी तथा समर्थवान सिद्ध पुरुष संज्ञा अर्हत है ।

" सर्वज्ञोजित रागद्वेष व त्रैलोक्यपूजित:
यथास्थितार्थवादी च द वार्न्हत परमेश्वर: ।[24]

23· संस्कृति के चार अध्याय - पृ· 137·

24· भारतीय दर्शन - आचार्य बालदेव उपाध्याय - पृ· 90·

अत: तद् द्वारा प्रचारित होने से यह धर्म " आर्हत " कहलाता है। रागद्वेषी शत्रुओं पर विजय पाने के कारण " वर्धमान " की उपाधि " जिन " ‖ जेता ‖ थी। अत: इनके द्वारा प्रचारित धर्म " जैन धर्म " कहलाने लगा।

जैन साहित्य के अनुसार जैन धर्म ईसा पूर्व छठी शताब्दी की देन नहीं अपितु यह बहुत पुराना है। समय-समय पर इस धर्म में चौबीस तीर्थ कर हुए हैं। महावीरस्वामी चौबीसवें तीर्थकर थे। उनसे पहले 23 तीर्थकर हो चुके थे। जैन साहित्य के अनुसार प्रथम तीर्थकर ऋषभदेव थे जो प्राग्वैदिक काल में हुए जिन्होंने लोगों को सभ्यता का पाठ पढ़ाया। 23 वे तीर्थंकर पार्श्वनाथ थे। जैन धर्म को प्रशस्त मानवीय आदर्शों से परिमण्डित करके लोकप्रिय बनाने तथा उन्हें प्रचलित करने में महावीर स्वामी का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

जैन संस्कृति का वैचारिक पक्ष अत्यन्त उदार, व्यापक और मानवतावादी है। उसमें देशकाल, द्रव्य और भाव के अनुसार प्रत्येक वस्तु का स्वरूप निर्णय किया गया है। आरम्भ से ही जैन धर्मानुयायियों ने राष्ट्र की भावात्मक एकता को बनाए रखने में विशेष योगदान दिया है। धर्म, कला और साहित्य इन तीनों के माध्यम से इन्होंने जन जीवन में राष्ट्रीयता को उत्प्रेरित किया।

यह सत्य है कि जैन धर्म का उदय एक महान उद्देश्य को लेकर हुआ था किन्तु कुछ समय बाद ही यह धर्म इतनी शाखाओं में विभक्त हो गया। जिनके कारण अपने मूल उद्देश्य को लोक प्रिय बनाने की अपेक्षा इसका विकास ही अवरुद्ध हो गया। महावीर स्वामी की मृत्यु के पश्चात् जैन धर्म के दो दल बन गए 1• श्वेताम्बर 2• दिगम्बर। इन विभाजनों के कारण धीरे-धीरे जैन धर्म में रूढ़िबद्धता ने अपना स्थान ग्रहण कर धर्म के प्रचार व प्रसार को रोक दिया।

जब सिकंदर भारत आए तब जैन साधु सिंधु के तट पर भी बसे हुए थे। कहा जाता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य जैन हुए थे किन्तु अशोक के शिला लेखों से पता चलता है कि उनके समय मगध में जैन धर्म का प्रचार था। मौर्यकाल में भद्रबाहु के नेतृत्व में जैन श्रमणों का एक दल दक्षिण गया और मैसूर में रहकर अपने धर्म का प्रचार करने लगा। ईसा की पहली शताब्दी में कलिंग के राजा खारवेल ने जैन धर्म स्वीकार किया, ईसा की आरम्भिक सदियों में उत्तर में मथुरा तथा दक्षिण में मैसूर जैन धर्म के बडे केन्द्र थे। पाँचवीं से बारहवीं शताब्दी तक दक्षिण के गंग , कदम्ब, चालुक्य और राष्ट्रकूट राजवंशों ने जैन धर्म की बडी सेवा की और उसका काफि प्रचार किया। इन राजवंशों ने अनेक कवियों को आश्रय दिया। चालुक्य वंश के राजा सिद्धराज और उसके पुत्र कुमार पाल ने जैन धर्म को राजधर्म ही बना दिया। [25]

3·7·1· जैन धर्म का भारतीय संस्कृति को देन :-

यद्यपि जैन धर्म का अधिक प्रचार नहीं हो सका फिर भी इस धर्म ने भारतीय संस्कृति को अनुपम देन दी है। इसने भारतीय दर्शन, कला, साहित्य के विकास में महत्व योग दिया।

धार्मिक क्षेत्र में जैन धर्म की सबसे बडी देन अहिंसा का सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त का भारतीय समाज पर काफी प्रभाव पड़ा। अहिंसा के वास्तविक जन्म - दाता जैन हैं। महावीर ने कहा था हिन्सा बहुत बडा पाप है इसीलए मनुष्य को इससे दूर रहना चाहिए। उन्होंने मन, वचन और कर्म से सभी प्राणियों के प्रति मैत्रीपूर्ण, दयापूर्ण व्यवहार करने का आदेश दिया है।

25· संस्कृति के चार अध्याय - पृ· 159·

जैन धर्म ने जाति-भेद का विरोध कर सामाजिक समानता पर बल दिया । जैन धर्म से पूर्व समाज ने जाति प्रथा तथा ऊँच नीच की भावनाएँ विद्यमान थी । महावीर समाज में किसी प्रकार के जातिगत भेद भावों को स्वीकार नहीं करते थे । उनकी यह मान्यता है कि सभी जातियों के व्यक्तियों में एक जैसी आत्मा निवास करती है । इसलिए सभी जातियों के व्यक्ति मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। महावीर ने अच्छे कर्मों की प्रेरणा भी दी । उन्होंने उच्च नैतिक जीवन पर बल दिया । वैदिक धर्म के यज्ञों कर्म काण्डों व्यर्थ आडम्बरों का विरोध किया है । उन्होंने शुद्ध और सरल धर्म के रूप में जैन धर्म को अपनाया । इसका प्रभाव वैदिक धर्म पर बाद में पड़ा । फलत: वैदिक धर्म में पशुबलि धीरे-धीरे समाप्त होने लगी । खर्चीले यज्ञ भी बन्द होने लगे । परिणाम स्वरूप वैदिक धर्म शुद्ध और सरल धर्म बनने लगा ।

राजनीतिक क्षेत्र में भी जैन धर्म की देन उल्लेखनीय है । जैन धर्म के अहिंसा सिद्धान्त से प्रभावित होकर जन साधारण को यज्ञों से घृणा हो गई और उन्होंने शान्तिपूर्ण पद्धति से जीवन व्यतीत करना प्रारम्भ किया । मगध का अजातशत्रु और नन्द नरेश जैन धर्म के अनुयायी बन गए ।

साहित्य के क्षेत्र में जैन धर्म की देन उल्लेखनीय है । इस काल में प्रचलित संस्कृत तथा प्राकृत में अपने ग्रन्थों की रचना हुई । इनके कारण इन भाषाओं का विकास हुआ जैन साहित्य को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है - 1. श्वेताम्बर संप्रदाय का साहित्य 2. दिगम्बर संप्रदाय का साहित्य ।

श्वेताम्बर साहित्य को " अंग " कहते है इनकी संख्या 12 है । इन ग्रन्थों को लिपि बद्ध पाँचवी शताब्दी में किया गया है । ये अर्ध मागधी में हैं। हेमचन्द्र एक प्रसिद्ध जैन लेखक थे जो कुमारपाल के दरबार में कार्यरत थे । इनका कुमारपाल

चरित प्रसिद्ध है । दिगम्बर सम्प्रदाय का साहित्य संस्कृत भाषा में लिपि बद्ध है । इन्हें " पुराण " कहा जाता है जो चार भागों में हैं ।

जैन धर्म ने भारतीय दार्शनिक विचारों को भी काफी प्रभावित किया । जैन धर्म के दार्शनिक सिद्धान्त अनेकान्तवाद या स्यादवाद का वर्तमान समय में काफी महत्व है । महावीर ने इस दर्शन की मूल भावना का विश्लेषण करते हुए सांसारिक प्राणियों से कहा था किसी बात के सिद्धान्त को एक तरफ से मत देखो एक ही तरफ से उस पर विचार मत करो । तुम जो कहते हो वह सच होगा, पर दूसरे जो कहते हैं वह भी सच हो सकता है इसलिए सुनते ही भड़को मत, वक्ता की दृष्टि से विचार करो, आज संसार में तनाव और द्वन्द्व है, वह दूसरे के दृष्टिकोण को न समझने के कारण हैं । - 26

भाषा के क्षेत्र में जैन धर्म ने देश की भाषाओं के विकास में योगदान दिया है । इन्होंने संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, अर्द्धमागधी, मागधी ही नहीं आधुनिक युग में मराठी, गुजराती, कन्नड, तमिल एवं तेलुगु आदि भाषाओं में रचनाएँ हुई हैं ।

कला के क्षेत्र में इनकी स्मृतियाँ, मंदिर, गुफाएँ आदि जीवन्त उदाहरणों के रूप में उपलब्ध हैं । श्रवण बेल गोला में स्थित गोमतेश्वर की प्रतिमा (60 फीट ऊँची) दुनिया को आश्चर्य चकित करती है ।

---

26. भारतीय संस्कृति - डा. एस.एल. नागोरी - पृ. 51.

अन्त में कहा जा सकता है कि जैन धर्म उन्नत एवं कल्याण कारी धर्म था। यह कोई बाहर से आया हुआ धर्म नहीं था। यह वैदिक धर्म की आधार शिला पर विकसित नव्य धर्म था। उसका लक्ष्य वैदिक धर्म का सुधार था।

आज जैन धर्म पूर्ण रूपेण हिन्दू धर्म में समाहित हो गया है। हिन्दू धर्म की जो वैष्णव शाखा है उसने भगवान महावीर के अनेक उपदेशों को अपने भीतर भली भाँती पचा लिया है।

3·7·2· बौद्ध धर्म :-

भारतीय सभ्यता, संस्कृति और इतिहास के नव निर्माण में बौद्ध धर्म का प्रमुख स्थान रहा है। छठी शताब्दी ईसा पूर्व की धार्मिक क्रान्ति के जन्म दाता या बौद्ध धर्म के प्रवर्तक महात्मा बुद्ध थे। उन्होंने वैदिक धर्म में व्याप्त जटिल आडम्बरों, हिंसक एवं खर्चीले यज्ञों, धार्मिक कर्म काण्डों आदि के विरुद्ध आवाज उठाई। बुद्ध ने बौद्ध मत के रूप में भारतीय जनता को एक सरल तथा शुद्ध धर्म दिया बौद्ध धर्म परंपरागत ब्राह्मण धर्म के विरोध में उदित हुआ था। इस रूप में उसने वैदिक संस्कृति के महनीय आदर्शों को उजगार किया। आर्य एवं आर्योतर जातियों के समन्वित प्रयास से जिस उदात्त संस्कृति का निर्माण हुआ था उनकी दृष्टि में किसी वर्ग या संप्रदाय का भेद भाव नहीं था। [27]

27· भारतीय संस्कृति और कला - पृ· 222·

बौद्ध धर्म ने जो नए उपदान दिए वे वेदमूलक थे। धर्म सूत्रों तथा स्मृतियों में सत्य, अहिंसा, अस्तेय, सदाचार और सर्व भूतानुकम्पा आदि के जो चारित्रिक नीति धर्म हैं, बौद्ध धर्म ने उनको उसी रूप में वरण किया है। लोकाचार जिन मान्यताओं को स्मृतियों ने स्थापित किया, "धम्मपद" में उनको अक्षरशः वैसे ही स्वीकार किया।[28] इस प्रकार देखा जा सकता है कि बुद्ध ने जीवन के आदि अन्त की पुरातन परंपरा को ही प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत किया। इसलिए उनके सिद्धान्तों में प्राचीन ज्ञानियों के विचारों का साम्य है। उपनिषदों से उनकी अत्यन्त निकटता है। बौद्ध निर्वाण और ब्रह्म निर्वाण में कोई अन्तर नहीं है, गीता में जिसको "स्थित प्रज्ञ" और दर्शन में "जीवन मुक्त" कहा गया है वही बौद्ध धर्म में "निर्वाण" है। निर्वाण वास्तव में जीवन की वही स्थिति है जहाँ रागद्वेष, मोह, मत्सर, स्व और पर का प्रवेश नही करता।[29]

धर्म की एकांगिकता एवं वर्ग संकीर्णता को उपनिषदों ने स्वीकार नहीं किया। बौद्ध धर्म ने भी उसका अनुसरण किया। व्यक्तिगत अनुभूतियों की सत्यता पर जो विचार उपनिषदों के हैं वे ही बौद्धधर्म के भी है। उपनिषद में जिस ब्रह्म तत्व का निरूपण किया गया है वही बुद्ध के चार आर्य सत्यों का मूल है। दोनो की दृष्टि में जीवन और जगत परिवर्तन शील होने के कारण नाशवान है। दोनों ही यह मानते हैं कि मोक्ष या निर्वाण तक पहुँचने के लिए वैराग्य, ध्यान और समाधि उत्तम साधन है।

बौद्ध संस्कृति के आधार स्तंभ बुद्ध के चार आर्य सत्य हैं। बुद्ध ने इन्हें नैतिकता और आत्मोन्नति के साधनों के रूप में वरण किया। वे हैं - 1. दुःख 2. दुःख समुदाय 3. दुःख निरोध 4. दुःख निरोधगामी मार्ग।

---

28. संस्कृति और कला - पृ. 222.

29. - वही - पृ. 223.

दु:ख को आर्य सत्य कह कर उन्होंने उसको जन्म, जरा, व्याधि और अभाव का कारण बताया । दुख समुदाय को उन्होंने तृष्णा उत्पन्न करने का कारण बताया । दु:ख विरोध के अनेक विध कारणों को खोज निकाला । दु:ख मुक्त होने के लिए उन्होंने सम्यक दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाचन, सम्यक कर्मान्त, सम्यक् आजीव सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि को बताया इन्हें अष्टांगिक मार्ग कहते हैं ।

3·7·2·1 भारतीय संस्कृति को बौद्ध धर्म का योगदान :-

बौद्ध धर्म अपनी जन्म भूमि भारत से लुप्त हो गया । इसमें संदेह नहीं है । किन्तु बौद्ध धर्म ने सरलता, सुबोधता, शुद्धाचरण, नैतिकता पर बल, जातिवाद की उपेक्षा, समानता, सहनशीलता, अहिंसा सिद्धान्त, दार्शनिक प्रगति, विहारों की स्थापना और कला आदि में भारतीयता पर काफी प्रभाव छोडा है । इसी कारण विदेशों में भी ख्याति पाई । इस दृष्टि से देखा जाए तो बौद्ध धर्म एक विश्व व्यापी आन्दोलन का फल कहा जा सकता है ।

3·7·3· सिद्ध संप्रदाय :-

एक सर्व मान्यमत है कि सिद्ध संप्रदाय बौद्ध धर्म का युगानुकूल विकसित रूप है । ईसा की प्रथम शताब्दी में महायान का अस्तित्व स्वीकार किया गया है । महायान का विकास मूलत: लोक धर्म प्रवृत्तियों को ग्रहण करने के कारण हुआ है । महायान में भक्ति, करूणा और शरणागति पर जोर दिया गया है । महायान में व्यक्ति के आदर्श पर जोर दिया गया है । इसमें त्रिकाय सिद्धान्त की स्थापना की गई है । वे हैं धर्म काय, सर भोग काय और निर्माण काय । ईसा की छठी शताब्दी तक महायान में तांत्रिक लक्षण मिलने लगे थे और महायान में परिवर्तन भी

आने लगे अर्थात् महायान में तांत्रिक साधना का विकास हुआ, त्रिकाय में वज्रकाया भी जोड दिया गया । क्रमशः महायान में वज्रयान का रूप तांत्रिक हो गया । वज्रयान की मुख्य विशेषता प्रवृत्ति मूलक है । बौद्ध धर्म मूलतः निवृत्ति मूलक धर्म था । यह एक गुणात्मक विकास है । वज्रयान का अन्तिम रूप सहजयान है । तात्त्विक दृष्टि से अन्तर न होते हुए भी साधना के क्षेत्र में नए विकास दृष्टिगोचर होते हैं । वज्रयान की सहज भावना ने ही सिद्धों की वाणी में सहज सिद्धि का रूप धारण किया । वज्रयान में हठयोग, मद्य, गुरुमंत्र आदि प्रवृत्तियों के साथ-साथ योगिनी का होना भी आवश्यक माना गया है । सहज-यान ने नैसर्गिक जीवन पर अधिक बल दिया । सहज भावना को ही ऋजमार्ग भी कहा गया है । सहजयान मिथुनपरक है वह यह मानता है कि करुणा से परिभावित शून्य रूपी भगवती योग और उसके चिन्तन से सिद्धि का साक्षात्कार होता है । मुक्ति स्वतः सिद्ध है, जब मन का भ्रम दूर हो जाता है तब परम सुख की स्थिति आती है । वह परम सुख आदि मध्यान्त रहित है । सहजयान ही सिद्ध संप्रदाय के रूप में विकसित हुआ । परंपरा से सिद्धों की संख्या चौरासी मानी जाती है । इस संप्रदाय के प्रवर्तक सरहपा थे ।

3.7.4. नाथ संप्रदाय :-

नाथ संप्रदाय की पृष्ठभूमि में जहां एक ओर वज्रयानी योग साधना है तो दूसरी ओर शाक्तमत । साथ-साथ शैव के अनेक अन्तर भी प्रचलित थे । योग की इस पृष्ठभूमि पर भारत में अनेक संप्रदाय फूट निकले । जब सामाजिक धर्म से मन का संतोष होना बन्द हो चुका था तब व्यक्ति ने अपने लिए नए साधनों की खोज आरम्भ करदी थी । इसमें कहीं सामंजस्य है तो कहीं दुरूहता । नाथ संप्रदाय सहज यानी सिद्धों की परवर्ति शाखा अथवा उसका ही विकसित रूप है ।

सहजयान संप्रदाय ही बाद में " नाथ संप्रदाय " के नाम से विख्यात है । सहज जीवन पर जोर, ब्रह्माचार का विरोध, वशीकरण का प्रयोग आदि दोनों संप्रदायों में माने जाते हैं। सिद्धान्त और साधना की दृष्टि से दोनो में अन्तर है । सहजयानी सिद्ध प्रवृत्ति मार्गी थे और नाथ योगी निवृत्ति मार्गी । सिद्ध बौद्ध थे तथा नाथ योगी मूलत: शैव थे । सिद्ध निरीश्वरवादी थे तथा नाथ ईश्वरवादी । नाथ योगियों ने नारी को मोक्ष मार्ग में बाधा बताई और उसकी घोर निन्दा की है । वस्तुत: चारित्रिक दृढ़ता, आचरण शुद्धि और मानसिक पवित्रता नाथ योगियों में मिलती है । नाथ का दर्शन हठयोग पर आधारित है ।

वस्तुत: मध्यकालीन साधना की एक सामान्य विशेषता है कि विभिन्न संप्रदायों को एक दूसरे से प्रभाव ग्रहण करना । नाथ संप्रदाय का संबंध न केवल " बौद्ध सिद्धों " से जोडा जाता है अपितु उसके कई संप्रदायों से चर्चा की जाती है । कहा जाता है कि " कौल मार्ग " और " कापालिक " नाथ अनुयायी ही थे । नाथ संप्रदाय के प्रवर्तक आदिनाथ को साक्षात् शिव माना गया है इसीलिए शैवों से उसका घनिष्ठ संबंध है । इस प्रकार तांत्रिक पर भी इसका प्रभाव बताया जाता है । शंकराचार्य को भी इसी संप्रदाय में दीक्षित होने की बात भी की जाती है ।[29] नाथों का विस्तृत साहित्य भी उपलब्ध होता है ।

3·7·4· शाक्त धर्म :-

शाक्त मतावलंबी शाक्त धर्म को उतना ही प्राचीन मानते हैं जितना कि वैदिक धर्म है । प्रत्युत यह भी विश्वास करते हैं कि इसका विकास वैदिक धर्म के प्रभाव से हुआ है, किन्तु उसके बीज प्राक आर्य भारत में विद्यमान थे । शैव धर्म तथा शाक्त संप्रदाय का निकटतम संबंध हैं । शैव मत में शिव का जो स्थान है शाक्त में उतना ही शक्ति का है ।

29· संस्कृति के चार अध्याय - पृ· 230·

तंत्रवाद के अनुसार सृष्टि का उद्‌भव और विकास शिव और शक्ति के संयोग से होता है। किन्तु शिव और शक्ति प्रेरणाप्रद है। शक्ति के प्रेरित होने पर ही शिव में गति उत्पन्न होती है । स्पंदन अथवा चालन उसमें ऊर्जा शक्ति से आती हैं । शाक्त दर्शन के अनुसार पुरुष और प्रकृति दोनों अनादि हैं और उन्हीं के योग से सृष्टि उत्पन्न होती है । सांख्य दर्शन का प्रभाव अन्य संप्रदायों पर भी पड़ा । "विष्णु की शक्ति के रूप में लक्ष्मी की उपासना, ब्रह्मा की शक्ति के रूप में सरस्वती की उपासना और कुछ नही पुरुष और प्रकृति के समन्वय का ही प्रयास है । इसी क्रम में शिव और उनकी शक्ति पार्वती की कल्पना विकसित हुई । "[30] आज भी शाक्त शैव धर्म के समीप समझा जाता है । शैव धर्म की साधना पहले ज्ञान मयी भक्ति की साधना थी । आज ज्ञान सम्मत भक्ति का ही मार्ग है । शाक्त धर्म मोक्षकामी होते हुए अपना ध्येय शैव की भाँति मुक्ति नहीं अपितु सिद्धि को माना है । उनकी साधना पद्धति मंत्र, यंत्र और योग की हो गई थी । तंत्र को शाक्त धर्म ने इस बल से अपना लिया कि अब तंत्र मार्ग कहते ही ध्यान सीधे शाक्त धर्म पर चला जाता है ।[31]

दार्शनिक दृष्टि से शाक्त दर्शन भी अद्वैत दर्शन है । इस दर्शन के अनुसार सृष्टि के मूल में जो वास्तविक तत्व है वह अद्वैत है । उसका नाम शिव शक्ति और उसका स्वभाव सत् चित् आनन्द है । शाक्त दर्शन में माया भी शिव शक्ति का ही गुण माना जाता है । शिव शक्ति की शक्तियाँ दो हैं - एक विद्या जो चेतना उत्पन्न करती है । दूसरी अविद्या जो माया का प्रतीक है ।

---

30. संस्कृति के चार अध्याय - पृ. 231.
31. - वही - पृ.235.

शाक्त दर्शन के आदि तत्व को मातृ रूप मानते हुए नारी मात्र को पूजनीय समझे जाने लगे । विशेष कर माताओं और अविवाहित बालिकाओं का शाक्त धर्म में अत्यन्त ऊँचा और पवित्र स्थान है । 32

सिद्धि का प्राधान्य शाक्त धर्म में बाद में हुआ । यह साधना मोक्ष की ही साधना है । जीव मात्र को शाक्त तीन भागों में रखते है - पशु, बीर और दिव्य । साधना के क्रम में " पशु " को ऊपर उठाकर " वीर " की कोटी में जाना पड़ता है । जो " वीर " की कोटी से ऊपर उठ गया वह " दिव्य " बन जाता है । बौद्धों के यहाँ " आर्हत " नाथों के यहाँ " सिद्ध " का जो स्थान है, शाक्त धर्म ने " दिव्य " का वही स्थान है ।

3·7·6· शैव धर्म :-

शैव धर्म हिन्दू धर्म का एक प्रमुख अंग है । इस धर्म के अनुसार आराध्य शिव है । विद्वानों में यह मत प्रचलित है कि शैव धर्म प्राग्वैदिक एवं द्राविड संस्कृति की देन है । शैव धर्म के अन्तर्गत एक ओर शैव सिद्धान्त की गूढ़ विचार धारा है तो दूसरी ओर कापालिक गर्हित कर्म भी है । शिव वैदिक देवता भी माने जाते है । वैदिक काल से ही शिव का एक नाम रूद्र है । ऋग्वेद में रूद्र को विनाशकारी झंझावत अथवा घने जंगलों में चमकती हुई विध्वंसक बिजली का प्रतीक माना गया है । उनकी स्तुति लोग पशुओं को बचाने के लिए करते । 33 ऋग्वेद में रूद्र को परमशक्ति के रूप में देखा गया है । अथर्ववेद में रूद्र के विनाशकारी रूप का वर्णन हुआ है । 34 " नेचुरल रिलिजेन्स आफ इंडिया " के लेखक " लायल " ने

32· संस्कृति के चार अध्याय - पृ· 236·

33· मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन का सामाजिक विवेचन - डा·सुमन शर्मा - पृ· 40·

34· संस्कृति के चार अध्याय - पृ· 55·

भगवान शिव के दो मुख्य स्वरूपों - एक सौम्य और शुभ दूसरा भयावह और विध्वंसक का समाधान इस प्रकार किया है कि प्रारम्भ में भगवान शिव प्रकृति के सर्जनात्मक और संहारात्मक रूप के प्रतीक थे। वे लिखते है कि " भगवान शिव में हम दो आदि शक्तियों का मेल पाते हैं। एक जीवन दायिनी और दूसरा जीवन धारिणी। इस प्रकार दार्शनिकदृष्टि कोण से इस महान देवता की कल्पना में उस विचार का सर्वांगीण मूर्तिमान रूप दृष्टिगोचर होता है जिसको प्राकृतिक धर्म का मूल मानते हैं। " 35

शैवमत के अन्तर्गत शिव का रूप वैदिक रूप से प्रारम्भ होकर अनेक रूपों विकसित हुआ है। शिव वैदिक रूप के परवर्ति रूप है। वेदों में रूद्र की कल्पना प्राकृतिक तत्वों के मानवीकरण से की गई है। वैदिक रूद्र की उपाधि " कृतिवासा " के कारण ही पौराणिक शिव को भी " कृतिधारी माना गया है। ब्राह्मण ग्रन्थों तक आते-आते रूद्र एक महान देवता माने जाने लगे। पहले " लिंग पूजा " वैदिका काल में शिवोपासना का सबसे प्रमुख रूप बन गई और उसका दूसरा रूप शक्तिपूजा है। इसमें रूद्र के साथ एक स्त्री देवता का भी उल्लेख हुआ है। " शक्ति प्रथम श्रेणी की देवता है जो महामाता मानी जाती थी, तीसरा रूप स्थाई उपासना अर्थात् मूर्तियों के रूप में उपासना। इसमें लिंग के रूप में शिव की उपासना अधिक होती है। 36 सिंधु घाटी के लोग भी लिंगोपासक थे। आर्यों ने भी लिंगोपासना को स्वीकार किया था अन्त में शिव का " लिंग " एक प्रतीक मात्र रह गया, वह उनके निर्गुण स्वरूप का प्रतीक संकेत है। 37

---

35. शैवमत - यदुवंशी - भूमिका

36. - वही - पृ. 23.

37. - वही - पृ. 24.

उत्तर वैदिक काल में योगी चिंतक और शिक्षक के रूप में शिव की कल्पना की गई है। " श्वेताश्वतर " उपनिषद में वे अंकुर भी हैं जिनके बाद में सांख्य विचार धारा प्रवाहित हुई। " श्वेताश्वतर " उपनिषद में जो पुराण है दूसरा कोई नही रूद्र हैं जिनको " शिव और ईशा " भी कहा गया है। वे पुरूष को ही रूद्र या परब्रह्म मानते हैं। इसी से शैव धर्म के विकास की दिशा निर्धारित होती है।

" केन " उपनिषद में शिव के साथ प्रथमबार उमा का नाम मिलता है। उन्हे हिमवान की पुत्री कहा गया, उनके पुत्र " विनायक " का नाम भी मिलता है। शिव का वाहन बैल, शस्त्र त्रिशूल तथा सेवक को " गण " कहा गया है।"[38]

शिव के लिए अनेक नामों का उल्लेख हुआ है - रूद्र, भव; शर्व, महादेव, शंकर, त्रयंबल, अकुलीश, पाशुपत आदि। इनके अतिरिक्त काश्मिरी शैव, लिंगायत, कापालिक, भैरव, कालामुख, रामेश्वर, देवी पूजा, गागात्य, कार्तिकेय आदि अनेक उपसंप्रदाय भी जन्म लिए। इनमें महादेव, महेश्वर और शंकर का प्रयोग अधिक मिलता है। उनको व्याधि निवारक कहा गया है। पहले रूद्र को मृत्यु संबंधी देवता माना जाता था फलत: जन साधारण के मत में श्मशानों से जोड़ा जाता है।[39]

वैदिक युग के समाप्त होते-होते रूद्र की उपासना के स्वरूप में आमूल परिवर्तन हो गया मानो इसी परिवर्तन के प्रभाव स्वरूप रूद्र का नाम भी बदल गया और वे "शिव " कहलाने लगे। पाणिनि के समय भगवान शिव के विकसित स्वरूप का प्रमाण वे सूत्र है जिनको " महेश्वर " कहा गया है। उनकी अष्टाध्यायी

---

38. मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन का सामाजिक विवेचन - पृ. 46.

39. शैवमत - पृ. 46.

के ही नहीं अपितु तत्कालीन संस्कृति के समस्त व्याकरण के आधार है । ये सूत्र महेश्वर अर्थात् शिव से प्रकट हुए माने जाते हैं । यह शिव के महान उत्कर्ष का सूचक है ।

रामायण और महा भारत में शैव धर्म का काफी विकसित रूप दिखाई देता है जिसमें पौराणिक शैव धर्म के प्राय: सभी लक्षण वर्तमान है । रामायण में शिवोपासना का लोक प्रचलित रूप दिखाई देता है । वे एक कल्याणकारी देवता तो माने जाते थे रामायण में प्रथम बार " नन्दी " का भी उल्लेख किया गया है ।

शिव की उपासना के दो प्रचलित रूप हैं एक दार्शनिक और दूसरा लोक प्रचलित दार्शनिक रूप में शिव को परब्रह्म माना जाता है । वे असीम अचिंत्य, विश्व सृष्ठा और विश्व को अपने में समेटे हुए हैं । लोक प्रचलित रूप में शिवोपासना का सार " भक्ति " है और " रामायण " की तरह यहाँ भी शिव की कल्पना सतत् कल्याणकारी और भक्तानुकंपी देवता के रूप में की गई है । इसमें शिव को पार्वती-पति माना गया है और पार्वती को शिव की उपासिका के रूप में ।

इस प्रकार शैव धर्म का एक भारतीय रूप उभरता है । इसी आधार पर आन्ध्र प्रदेश में शैव की कई शाखाएँ विकसित हुई ।

3·7·8· वैष्णव धर्म :-

वैष्णव धर्म हिन्दू धार्मिक समाज का एक प्रमुख अंग है । वैष्णव धर्म का संबंध भगवान विष्णु से है । भक्ति की वैष्णवानुमोदित भावना का आविर्भाव आर्यों के आध्यात्मिक एवं दार्शनिक विचारों के पीछे अधिक गंभीतर आने पर हुआ और तभी वह प्रारम्भिक श्रद्धा व उपासना से विकसित होती हुई क्रमशः उपास्य भावना के ऐश्वर्य के मूल तत्व में भाग लेने या व्यक्त करनेवाले अधिक व्यापक रूप या भाव में परिणत हुई ।[40] वैष्णव धर्म वैदिक और अवैदिक तथा उत्तर और दक्षिणी विचार धाराओं के समन्वय का परिणाम है । इसमें संदेह नहीं कि शैवमत की अपेक्षा वैष्णव अर्वाचीन है । संहिताकाल में विष्णु सर्व प्रथम एक साधारण देवता थे । " ऋग्वेद " के कई स्थलों पर वे एक आदित्य मात्र समझे जाते हैं और दिन भर की यात्रा को केवल तीन पगों में ही समाप्त करने के कारण आर्य लोग उन्हे महत्व देते थे और उनका यशोगान करते थे ।

" त्रीणि पादिनी चक्र में विष्णो व अदाश्या "[41]

विष्णु कहीं कहीं " ऋतस्य गर्भम " आदि प्रसंगों में यज्ञ के बीज रूप देवता अथवा ब्राह्मणों की रचना के समय तक " यज्ञोहवैविष्णुः " अर्थात् यज्ञों की सफलता में बहुधा सहायक समझे गए हैं । विष्णु पहले वामन रूप में दिखाई पडते हैं। वैष्णव धर्म के उपास्य देव विष्णु के लिए कई नाम है - हरि, केशव, वासुदेव, ऋषभ, लक्ष्मीपति आदि हैं इनके अतिरिक्त एक महत्वपूर्ण नाम " नारायण " है जो वैदिक साहित्य के अन्तर्गत अनेक स्थलों पर आया है । वैष्णव धर्म नारायणीय

40· वैष्णव धर्म - परशुराम चतुर्वेदी - पृ· 12·

41· वैष्णव धर्म - पृ· 13·

संप्रदाय के रूप में प्रकट होने लगा । विष्णु या ईश्वर को पुरूष या आत्मा के रूप में दिखाकर उन्होंने आत्म विद्या का उद्घाटन कर दिया जो भक्ति के विकास में बहुत अनुकूल सिद्ध हुआ । नारायण ऋषि के प्रचलित होने के कारण संभवत: वैष्णव धर्म नारायणीय संप्रदाय का नामपड़ा । विष्णु को नारायण रूप में अभिन्नत किया गया । [42]

अवतारवाद के सहारे विभिन्न लोक प्रिय संप्रदायों को आत्म सात करके सांस्कृतिक समन्वय उपस्थित करना वैष्णव धर्म का मुख्य लक्ष्य था । विष्णु के विभिन्न अवतार वास्तव में इन संप्रदायों के प्रतिष्ठाता मात्र थे । वैष्णव धर्म में दशावतारों की प्रमुखता है इनमें भी राम और कृष्णावतारों को इतिहास में विष्णु के अधिक मिला है । वैष्णव धर्म ने क्रमश: भागवत धर्म का एक नवीन रूप धारण कर लिया है ।

वैष्णव संप्रदाय में विष्णु को परब्रह्म पद देने का प्रथम प्रयत्न मैत्रायनियोपनिषद ने किया है । कर्म को छोड कर समस्त वैष्णव अवतारों के संप्रदाय तथा पद्धतियाँ आज तक मौजूद हैं ।

लक्ष्मी जो विष्णु की पत्नी है वैष्णव संप्रदाय की आराध्या है । ये प्रत्येक वैष्णव आराध्य की सहधारी देवी के रूप में अवतार लेती है । इस कल्पना का दार्शनिक आधार सांख्य मत की प्रकृति है । वैष्णव धर्म का पुरूष निराकार नहीं परन्तु अनन्त गुणों का निकेतन है ।

---

42. भक्ति आन्दोलन और साहित्य - डा. एम. जार्ज पृ. 164.

वैष्णव धर्म का समन्वयात्मक रूप निश्चित हो जाने के बाद उसकी अनेक धारायें विकसित हुई। वैष्णवमत की तीन प्रमुख धारायें – नारायण और उनके पांचरात्रिक धर्म, वासुदेव-सात्वत तथा उनके क्षत्रिय सहयोगियों और कृष्ण व उनके अनुयायियों के सात्वत का बन गया । वैष्णव धर्म अनेक संप्रदायों का निर्माण होने लगा । क्रमशः एक एक कर निखरने लगी और उनका रूप उज्वलतर एवं स्पष्ट तर होता गया । वैष्णव धर्म सिद्धान्त " श्री संप्रदाय द्वारा प्रकट हुआ । वैष्णव मत कई नामों से जाना जाता है । पहले यह " ऐकांतिक धर्म " कहलाया । वासुदेव की उपासना पद्धति के कारण इसे भागवत मत भी कहने लगे । पुरूष नारायण ने इसे " पांच रात्रसत्र " का आयोजन किया । [43] मध्य युग में वैष्णव मत इन सभी नामों से जाना जाता था । लेकिन वैष्णव संप्रदाय के नाम से ही अधिक लोकप्रिय है । इसमें भी प्रेम लक्षणा भक्ति विविध कृतियों का विकास " सनक संप्रदाय " और गौडीय संप्रदाय द्वारा संपन्न हुआ । दास्य भाव मध्व संप्रदाय द्वारा पूर्णता को पहुँचा । श्रृंगारिक माधुर्य भाव का समावेश प्रेम लक्षणा भक्ति में हुआ । साथ-साथ सख्य, वात्सल्य भी इसमें जुडे हुए हैं। वैष्णव धर्म का प्रचार उसकी साहित्यिक एवं कला संबंधी कृतियों के कारण भी अधिक हुआ ।

नवीन वैष्णव धर्म का संघटन डा॰ भण्डरकर के अनुसार वस्तुतः चार धार्मिक विचार धाराओं का परिणाम था । जिनमें प्रथम के मूल स्रोत वैदिक विष्णु थे, दूसरे दार्शनिक देवता नारायण, तीसरे ऐतिहासिक देवता वासुदेव और चौथे अभियान देवता बाल गोपाल थे । वैष्णव शब्द संप्रदायिक दृष्टि से " महा भारत " के अठारहवे पर्व में कहा गया है कि अठारहों पुराणों के श्रवण करने का जो फल होता है उसे मनुष्य वैष्णव होकर प्राप्त कर लेता है ।

43· पूर्व मध्य युगीन धार्मिक आस्थाएँ – डा॰ शरद पगारे – पृ॰ 104·

3·8· आन्ध्र में संस्कृति और धर्म : एक झलक :-

भारतीय संस्कृति, साहित्य और इतिहास के नव निर्माण में आन्ध्र शातवाहन राजाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है । लगभग दो सौ वर्ष ईसवीं पूर्व से लेकर दसवी शती ई· तक के सांस्कृतिक इतिहास के नव निर्माण में दक्षिण के शातवाहन और शुंगों के नाम विशेष उल्लेखनीय है । इन्हीं के शासन काल में साहित्य, संस्कृति और कला के क्षेत्र में अभूतपूर्व उन्नति हुई ।

आन्ध्र के धार्मिक इतिहास में शातवाहनों के समय में ही जैन और बौद्ध धर्म प्रवेश पाए हैं । उनके समय अनेक पुराणों को मूल रचनाओं का पुन: संस्करण किया गया । शातवाहनों के उदय के पूर्व जैन और बौद्ध धर्मों के कारण वैदिक धर्म शिथिल पड़ गया था । अशोक ने बौद्ध धर्म को अत्यन्त सहज, उदार और जीवनोपयोगी बनाया ।[44] आन्ध्र में व्याप्त बौद्धधर्म महायान है । ठीक इसी समय वैदिक धर्म का पौराणिक रूप पुन: संस्कारित हुआ । इसके पुन: संस्कर्ता विचारकों ने राष्ट्र में भक्ति माधुरी बिखेर कर जनता को उस में समाहित कर दिया ।

भक्ति की ये विभिन्न भावधाराएँ अनेक क्षेत्रों में पृथक-पृथक धार्मिक पन्थों के रूप में एक साथ जनता के समक्ष उदित हुई । इस नए धर्म को भागवत, शैव, पाशुपत, शाक्त आदि विभिन्न नामों से अभिहित किया गया है । इस परिवर्तन का श्रेय शातवाहनों को ही है । भारत में जो स्थान बौद्धधर्म को था शातवाहनों के शासन में उसे वैदिक धर्म ने प्राप्त किया । किन्तु शातवाहनों के समय में जैन तथा बौद्ध धर्म अनेक पन्थों में विकसित हुआ । फल स्वरूप जिस साहित्य की रचना

44· आन्ध्रुल चरित्र संस्कृति - खण्डवल्लि लक्ष्मी रंजनम् - पृ· 139·

की गई उस पर भी पौराणिक धर्म का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है । इनके शासन में निर्मित जैन बौद्धों के अनेक कला केन्द्र आज भी धार्मिक तीर्थ माने जाते है । शातवाहनों के पुराण धर्म अनुराग के आधार पर उन्हें " ब्राह्मण " [45] कहा गया है । पौराणिक धर्म में शिव और विष्णु की आराधना, दान, तीर्थ आदि की प्रमुखता है । इस युग में शैव और वैष्णव धर्मों ने जनता का आदर प्राप्त किया ।

उत्तर शातवाहन युग के सभी राजवंशों ने शैव धर्म को ही आश्रय दिया । इनमें इक्ष्वाकु शैव ही थे । महेश्वर, बृहत पलायनों के इष्ट देव थे । शालंकायन वृषभलायन थे । उत्तर गंग महेश्वर के आराधक थे । [46] शैव के साथ-साथ वैष्णव धर्म का भी समान प्रचार किया । पल्लव वैष्णव धर्म अनुयायी थे । इन्होंने कंदकूरू में विष्णु मन्दिर बनवाए । उन्होंने विष्णु के दशावतारों को मान्यता दी । [47] साथ ही शक्ति की भी आराधना की । नागार्जुनकोंडा का " हारती " मन्दिर इसका उदाहरण है ।

वैदिक धर्म के पुनरुत्थान के परिणामस्वरूप बौद्ध धर्म क्षीण होता गया । लेकिन इसका अन्त नहीं हुआ । इक्ष्वाकुओं के समय थोडा बहुत आदर प्राप्त हुआ । विष्णुकुंडिन गोविंदवर्मा की महारानी परम भट्टरिका ने एक बौद्ध विहार का निर्माण किया । बौद्ध तांत्रिकता को प्रधानता देने के परिणाम स्वरूप यह क्षीण भी हुआ ।

---

45. भारतीय संस्कृति और कला - पृ. 347.
46. आन्ध्रुल चरित्र - हनुमंत राव - पृ. 144.
47. - वही - पृ. 145.

दक्षिण की सांस्कृतिक गरिमा को बढ़ाने वाले राजवंशों में गंग, पल्लव, चोल और चालुक्य वंशों के नाम उल्लेखनीय है । गंग की कीर्ति का अमर स्मारक कोणार्क सूर्य मन्दिर धार्मिक महत्व और कला की भव्यता को आज भी घोषित कर रहा है । पल्लव, चोल और चालुक्य अपनी धार्मिक, सांस्कृतिक सहिष्णुता विचारगिता के कारण प्रसिद्ध है । चोल युगीन धार्मिक उन्नायक रामानुजाचार्य का भारतीय इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है । इसी समय शैव और वैष्णवों में संघर्ष आरम्भ हो गए । चोल युग में बौद्ध धर्म अपनी अन्तिम सांस ले रही थी । जैन पंडितों को चोल युग के श्रीबसवेश्वरनेपंडित गोष्ठी में हराया ।[48] इससे यह स्पष्ट होता है कि जैन धर्म भी अंतिम स्थिति को पहुँचा हुआ था और शैव व वैष्णव धर्म की बहुलता दिखाई देती है ।

चालुक्यों में युग § 7 वीं शती से 11 वीं शती तक § में धार्मिक अनुशासन प्रधानतः वैदिक धर्म से अनुप्राणित रहा है । राज राज नरेन्द्र के द्वारा " महाभारत " के अनुवाद कार्य को संपन्न करने के लिए तेलुगु के आदि नाद नन्नय को निर्देश देना और नन्नय द्वारा स्पष्ट रूप से स्वीकृति इसी का सूचक है । " महाभारत " रचना के समानान्तर मे राजा नन्नेचोड द्वारा अनुवादित " कुमार संभवम् " शैव धर्म द्वारा स्वीकृत साधना और तपस्या के मार्ग को आधार मान कर शैव भक्ति के प्रचार को दिशा का भी निर्देश करता है ।

यह स्थिति एक समन्वित रूप में तिक्कना के समय में उभर कर साहित्य के क्षेत्र में भी शिव केशव के अभेद रूप को प्रसार में लाती स्पष्ट होती है । तिक्कना द्वारा प्रसारित " हरि हरा द्वैत " भक्ति के क्षेत्र में समन्वय और सामंजस्य की एक स्थिति को उद्भासित करती है ।

---

48. आंध्रुल चरित्र संस्कृति - पृ. 288.

तीन सौ वर्षों से अधिक शासन करनेवाले काक्तीयों के समय में आन्ध्र संस्कृति ने अपनी उत्कर्ष प्राप्त किया । काक्तीयों के समय शैव और वैष्णव के साथ जैन और बौद्ध धर्म भी प्रमुख रूप से दिखाई देते है । काक्तीयों के जैन एवं बौद्ध मन्दिर आज भी दर्शनीय हैं । उस समय की वास्तु, शिल्प कलाएँ आज भी जीवनृतता को स्पष्ट कर रही हैं ।

काक्तीयों के समय में आन्ध्र में प्राचीन बौद्ध और जैन धर्म क्षीणता की ओर मुड़े । बुद्ध को श्री महा विष्णु का अवतार मानकर पूजा करने लगे । बौद्ध महायान रूप धारण कर मूर्ति पूजा अधिक होने लगी । क्रमश: वैदिक में लीन है । परन्तु जैन धर्म ने उनके समय में बल पकड़ा। काक्तीयों ने जैन धर्म का बहुत आदर किया और अपनाया । उनकी कुल देवी " काक्ती " जैन धर्म की देवता थी । इनके द्वितीय बेतराज ने जैन धर्म को स्वीकार किया । शैव धर्म भी अपनी चरम सीमा पर था । इन्होंने शैव धर्म का भी आदर किया । ये पर धर्म द्वेषी नहीं थे । इनके समय शैव और जैनों के बीच संघर्ष भी शुरू हो गए थे । शैव जैनों के साथ हिंसा का व्यवहार करते थे । जैन मन्दिरों को तोडकर शिवालय निर्मित करने लगे । " पद्माक्षी मन्दिर " इसका स्पष्ट उदाहरण है । [49] इसी समय वीर शैव और वीर वैष्णव धर्म भी प्रचलन में आ गए । काक्तीयों के समय में ही मुसलमानों का आगमन भी हुआ । सन् 1303 ई॰ में पहलीबार अल्लाउद्दीन मालिक काफर ने सन् 1309 में वोरुगल (वरंगल) पर हमला किया । लेकिन प्रताप रूद्र ने इनसे सन्धि कर ली ।

रेड्डी राजाओं के समय हिन्दू मुसलमानों के संघर्ष शुरू हो गए थे । हिन्दू धर्म की रक्षा के प्रयत्न भी शुरू हो गए थे । इनके समय शैव धर्म को गौरव स्थान प्राप्त हुआ । वैदिक धर्म को भी आदर मिला । लेकिन ये वीर शैव नहीं थे । शैव ने तांत्रिक पद्धति को अपनाया । शिव पूजा के साथ शक्ति पूजा भी प्रचलन में थी ।

49॰ आंध्रुल संस्कृति चरित्र – खण्डवाल्ली लक्ष्मी रजनम् – पृ॰ 313॰

वैष्णव धर्म का भी रेड्डी राजाओं ने आदर किया । श्रीकूर्मम्, सिंहाचलम् आदि पुण्य क्षेत्र इसी के परिणाम थे । श्रीरंगम महा क्षेत्र भी वैष्णव धर्म प्रचार क्षेत्र बना । हिन्दू धर्म की रक्षा के साथ वैदिक साहित्य की रक्षा भी रेड्डी राजाओं का कर्तव्य रहा । संस्कृत भाषा ने इस युग में आदर प्राप्त किया ।

विजय नगर राजाओं ने धर्म के विषय में निष्पक्ष व्यवहार किया । इस युग के संगम वंशी राजाओं ने शैव धर्म को स्वीकारा है । सालुव, तुलुव तथा आर्वीट वंशी राजाओं में वैष्ण वधर्म के प्रति लगन अधिक रही । परन्तु उन्होंने अन्य धर्मों का अनादर नहीं किया ।

सभी मतों को समान दृष्टि से देखा । इस युग में वैष्णव और जैनों के बीच संघर्ष, वाद विवाद अधिक होते थे । बुक्क रायलु ने इनके बीच सन्धि स्थापित की ।[50] रायल युग में ही मुस्लिम धर्म ने आन्ध्र में प्रवेश किया । विजयनगर राजाओं ने उनके साथ सद्व्यवहार किया । श्रीकृष्ण देवराय के समय शैव-वैष्णव मन्दिरों का निर्माण भी हुआ । तिरुपति, कांची, सिंहाचलम् आदि वैष्णव मन्दिर तथा तिरुवण्णमलै, चिदंबरम्, कालहस्ती, श्रीशैलम्, अमरावती आदि शैवालय भी इसी युग के स्पष्ट उदाहरण हैं । वार्भोस नामक एक विदेशी ने लिखा है कि इस युग में हिन्दू मुस्लिम धर्मावलंबियों के साथ-साथ ईसाई आदि धर्मों के लोग भी मिलकर शान्ति से जीवन बिताते थे । इनके बीच किसी प्रकार के बन्धन नहीं थे । जैन धर्म को भी जनता ने आदर किया । प्रथम देवरायलु ने मुसलमान सेना के लिए अपने राज्य में एक मसीद भी बनवाया था । तेरह शताब्दियों के आन्ध्र में जो धार्मिक आन्दोलन चले उन्होंने विजयनगर राज्य तक आकर कुछ शान्ति को प्राप्त किया ।[51] सभी धर्मों के प्रचार के लिए अलग-अलग मठ आदि स्थापित किए गए थे ।

---

50. आन्ध्रुल चरित्र संस्कृति - पृ. 404.
51. - वही - पृ. 406.

3.8.1. वैदिक धर्म :-

तेलुगु साहित्य का आरम्भ तब हुआ जब वैदिक धर्म के पुनरुद्धरण के लिए प्रयत्न आरम्भ हो चुके थे। उस समय जैन और बौद्ध धर्मों का प्रभाव भी प्रचलन में था। वैदिक धर्मों का प्रभाव भी प्रचलन में था। वैदिक धर्मोद्धरण के समय ही शातवाहन साम्राज्य का आरम्भ हुआ। प्रथम शातवाहन ने वैदिक धर्म की रक्षा का शपथ लिया और सातकर्णी ने दो अश्वमेघ यज्ञ भी किये। गोदान भूदान इत्यादि वैदिक धर्म के नियमों का पालन भी किया गया। वेद विद्या और वर्ण व्यवस्था को सुप्रतिष्ठित कर वैदिक धर्म के स्तम्भ को पुन: स्थापित करने में प्रयत्न शील रहे। इन के समय में ही वैदिक धर्म ने अनेक परिवर्तन शुरू हो गए। इस परिवर्तन का मुख्य कारण बढ़ती हुई जैन और बौद्ध धर्मों का सामना करना ही था। शैव और वैष्णव धर्म भी इस युग में पाए गए है। वैदिक धर्म की पुन: स्थापना के लिए वैदिक धर्मा कुयायियों को इस कार्य में जुटकर प्रयास करना पड़ा।[52] इस तरह वैदिक धर्म पौराणिकधर्म में परिणत हो गया। पौराणिक धर्म में शिव और विष्णु को प्रमुखता मिली।

आन्ध्र में वैदिक धर्म की स्थापना के लिए साहित्य वैतालिक नन्नय भट्ट हैं। ये राज राज नरेन्द्र (चालुक्य) के राज कवि थे। वैदिक धर्म के पुनरुद्धार के लिए उन्होंने महाभारत की रचना की। चालुक्यों ने वैदिक धर्म को सुस्थिर बनाया। चालुक्यों ने वैदिक धर्म को पुन: स्थापित किया। वैदिक विरोधी धर्म क्षीण हो गए। मुख्य रूप से इनके समय कुमारिल ने वैदिक धर्म को पुनरुद्धार करने में विशेष प्रयास किया पश्चात् शंकराचार्य ज्ञान मार्ग का विकास हुआ। इन दोनों के प्रभाव से जैन धर्म का प्रभाव कम हुआ। वैदिक एवं पुराण धर्म के प्रति

---

52. आन्ध्रुल चरित्र - पृ. 83.

जनादर बढ़ गया । शैव और वैष्णव ने भी जनादर प्राप्त किया । राजाओं के " परम भागवत ", " परम महेश्वर ", " परमब्राह्मण " आदि उपाधियाँ इनके प्रमाण हैं ।

चोल युग तक आते-आते जैन धर्म तेलंगाना के कुछ प्रान्तों तक सीमित रह गया । लेकिन बौद्ध क्षीण हो गया । शैव और वैष्णवों की बहुलता थी । वैदिक धर्म की रक्षा भी दिखाई पड़ती है । वीर शैव, वीर वैष्णव इस युग में अपनी धाक जमाने लगे । इन दोनों का समन्वय भी इस युग में दिखाई देता है । तिक्कना ने " शिवाया विष्णु रूपाय शिव रूपाय विष्णवे " कहकर शैव वैष्णव में सामंजस्य स्थापित कर हरिहर संप्रदाय को जन्म दिया ।

काकतीयों के समय वीर शैव और वीर वैष्णव का आधिक्य रहा । इनमें अधिक संघर्ष भी होते रहे थे । ये परिस्थितियाँ वैदिक धर्म के प्रसार के लिए अनुकूल रही हैं । शिव और विष्णु में अभेद स्थापित कर वर्ण व्यवस्था पर आधारित समाज के निर्माण के लिए वैदिक धर्म के अनुयायियों ने प्रयत्न किया । काकती रूद्र ने रूद्रेश्वर में शंभु के साथ केशव, सूर्य की प्रतिष्ठा कर उनकी उपासना की । मंदेन शिला लेख के आधार पर पता चलता है कि मंचि भट्टोपाध्यायने केशव और महादेव के आलयों का निर्माण किया ।[53] इन प्रयासों का विरोध भी हुआ इसमें वैदिक धर्म की जीत हुई । तिक्कना के प्रभाव से गणपतिदेव ने भी वैदिक धर्म को स्वीकार किया । " गोलकी " मठ वैदिक मत का एक उदाहरण है । अनेक वेद पाठशालाएँ स्थापित की गई । चारों गोत्रों के पंडितों को एक जगह एकत्रित कराया गया । काकतीयों के रूद्र गणपति ने " चातुर्वर्ण समुद्धरण " उपाधि भी प्राप्त की । लेकिन धार्मिक आन्दोलनों के प्रभाव और संघर्षों के फल स्वरूप ब्राह्मण्य का आधिक्य बढ़ने लगा । इनका उल्लेख बसवपुराण (7 वीं ई.) में ही हुआ था ।[54] बहुदेवता -

---

53. आंध्रुल चरित्र - पृ. 279.

54. - वही - पृ. 277.

राधना भी बढ़ने लगी । जैन धर्म के आचार-विचार धीरे-धीरे शैव धर्म में लीन होती दिखाई देती हैं । वैदिक धर्म धर्म के प्रभाव से वर्ण व्यवस्था शुरू हुई । वीर शैवों और वीर वैष्णवों ने इस व्यवस्था को और तीव्र रूप दिया । वीर वैष्णव के प्रभाव से ही " पद्मनायक " हुए ऐसा कहा जाता है ।

रेड्डी नायक युग में मुस्लिम संघर्ष भी शुरू हो गए थे । वैदिक धर्म क्षीण गति को प्राप्त कर रही थी । इसलिए रेड्डी-नायक राजाओं ने हिन्दू धर्म की रक्षा का भार अपने पर लिया । शैव और वैष्णव धर्मों को अधिक आदर प्राप्त हुआ । वैदिक कर्म काण्ड के कहीं दर्शन नहीं होता । वैष्णवों में यह युग ऐसा युग है जब इस्लाम धर्म के प्रभाव को कम करने के लिए भक्ति आन्दोलन शुरू हो गया था । अन्ध विश्वासों को दूर कर भगवत् साक्षात्कार के लिए निश्चत भक्ति के उपदेश दिए जा रहे थे । वर्ण व्यवस्था में परिवर्तन भी दिखाई पड़ने लगे । इस युग में बसवेश्वर के वीर शैवों में भी इस्लाम धर्म का प्रभाव दृष्टि गोचर होता है । इतना होते हुए भी आन्ध्र प्रदेश में भक्ति आन्दोलन या धार्मिक आन्दोलन शुरू नहीं हुआ । लेकिन भक्ति के मूलाधार शैव और वैष्णव धर्मों ने जनादर प्राप्त किया । शैव धर्मावलंबी रेड्डी राजाओं ने अपने अंतिम समय में वैष्णव धर्म को ही स्वीकारा है । इसी युग में वैष्णव धर्म में भी अनेक शाखाएँ निकली । प्राचीन वैष्णव और वैदिक रीतियों का समन्वय कर रामानुजाचार्य ने श्री वैष्णव को स्थापित किया । निम्न वर्णों में वैष्णव धर्म के प्रचार के लिए भी वैष्णव का प्रचार किया गया । फलत: वैष्णव तेंगल और वड़हल के रूप में बँट गए । तेंगल वर्ग ने तमिल प्रबंधम् संप्रदाय को स्वीकार किया । तो वड्हल वर्ग ने वैदिक रूप में वैष्णव धर्म को बढ़ाया । आन्ध्र में वड्हल रूप देखने को मिलता है । 55

---

55. आन्ध्रुल चरित्र - पृ. 343.

3.8.2. बौद्ध धर्म :-

यद्यपि वैदिक धर्म को राजाश्रय प्राप्त हुआ तथापि शातवाहन इक्ष्वाकु दाक्षिणात्य इतिहास बौद्ध धर्म का स्वर्ण युग कहा जा सकता है। [56] आन्ध्र में बौद्ध धर्म प्रजा धर्म का रूप ग्रहण किया। बौद्ध धर्मने उच्चस्थिति को प्राप्त किया। शातवाहनों के कुछ राजाओं ने बौद्धों को अनेक दान किए और अनेक स्तूपों का निर्माण भी करवाए। लेकिन वैदिक धर्म पुन: प्रतिष्ठित हो जाने के कारण बौद्ध धर्म का पतन शुरू हुआ। इस युग में बौद्ध धर्म का महायान रूप ही मिलता है। शातवाहनों के पश्चात इक्ष्वाकुकाल में श्रीपर्वत बौद्ध धर्म का केन्द्र रहा है। इक्ष्वाकु बौद्ध धर्म के प्रेमी थे। कहा जाता है कि बौद्ध धर्मादरण के कारण ही इक्ष्वाकु वंश का अंत हो गया। विष्णु कुण्डिनो के समय भी बौद्ध धर्म का प्रभाव रहा है। महारानी परमभट्टारिका महादेवी ने एक बौद्ध विहार का निर्माण कर बौद्धों को दान दिया। पृथ्वी मूल के पुत्र हरिवर्मा को दिया गया एक गाँव उन्होंने बौद्ध विहार को दान में दिया। बौद्धों में एकता न होने के कारण इस युग में बौद्ध धर्म क्षीण होता हुआ दिखाई देता है। महायान के बढ़ जाने के कारण बौद्ध धर्म ने अपनत्व को खो दिया। इनकी भाषा जनता से दूर हो गई अर्थात प्राकृत से इन्होंने संस्कृत को अपनाना शुरू किया। आन्ध्र में भी बौद्ध महायान से तांत्रिकता को अपना कर वज्रयान का रूप धारण किया। कहा जाता है कि महात्मा बुद्ध ने ही काल या क्रांत्र को " धान्यकटक " का बोध किया जिसका " धरणी कोटा " नाम पडा। इसको " वज्रपर्वत " भी कहा जाता है। [57] वज्रयान के प्राबल्य के साथ ही बौद्ध धर्म जनता से दूर हो गया। चालुक्य युग तक बौद्ध धर्म पूरी तरह क्षीण हो गया। चोल राज्य के समय " कोटा " वंश में बौद्ध धर्म का उल्लेख मिलता है।

---

56. आन्ध्रुल चरित्र - पृ. 85.

57. - वही - पृ. 141.

3·8·3· जैन धर्म :-

जब शातवाहन साम्राज्य का उदय हुआ तब तक ही मालव, कलिंग और मैसूर प्रान्तों में जैन धर्म दिखाई देता है । कहा जाता है कि मालव से ही जैन धर्म आन्ध्र में प्रवेश किया । (मथीशली) प्रथम शातवाहन जैन धर्माभिमानी थे । उन्होंने अनेक जैन चैत्यों का निर्माण किया । आन्ध्र में बौद्धों का प्रभाव अधिक होने के कारण दिगंबर जैनों का विशेष प्रचार नहीं हो सका । लेकिन ईसवीं के आरम्भ में जैनाचार्य कोंडकुन्दाचार्य अनंतापूर के कोनकंड में जैनाश्रय बनाकर जैन धर्म के प्रचार के लिए अनेक सिद्धान्त ग्रन्थों का निर्माण किया । उसमें " समयसार " श्वेतंबर और दिगंबर दोनों के लिए अधिक आदरणी रहे ।[58]

चालुक्यों के समय जैन धर्म ने भी राजादर प्राप्त किया । तृतीय विष्णु वर्धन जैनों के अनेकविश्राम गृहों को दान दिया । इस समय जैनो में वहलीर, गण, कोटिमुडुपगण, अड्लिगच्छ, तथा नंदिगच्छआदि शाखाएँ थी । चोल राजवंशों के समय जैन धर्म था । लेकिन शैवों के साथ चर्चा में हार जाते थे । राष्ट्र कूटों ने जैन धर्मनआदर किया ।

आगे कहा जा चुका है कि काकतीयों की कुल देवता " काकती " जैन देवताही थी । इस युग के द्वितीय बेतराजु ने जैन धर्म को स्वीकार किया और आदर भी किया । द्वितीय प्रोलराजु के पुत्र बेतय्या उनकी पत्नी मैलम्मा । जैन धर्म के प्रेमी थे ।

58· आन्ध्रुल चरित्र - पृ· 65·

इस युग में वीर शैव और जैनों में संघर्ष होते थे। शैवों ने जैनों के अनेक धार्मिक ग्रन्थों को जलाया। जैनों के साथ हिंसा प्रवृत्ति के साथ उन्हें वीर शैव धर्म में परिणत करने के प्रयास भी किए गए। तेलंगाना के वेमुलवाडा, जोगिपेट, कोलनपाका आदि प्रान्तों के जैन मन्दिरों को वीर शैवों ने शैवालयों में बदल दिया। विजयनगर साम्राज्य में जैन धर्म का प्रभाव क्षीण होता हुआ दिखाई देता है। वीरशैव और वैष्णवों के संघर्ष होते थे। धीरे-धीरे वैदिक धर्म के पुनरुद्धार के प्रयत्न शुरू हो गए थे तथा शैव और वैष्णवों के आधिक्य के कारण जैन धर्म ने पतन को स्वीकार किया।

3·8·4· शैव धर्म :-

आन्ध्र में शैव धर्म की अनेक शाखाएँ देखने को मिलती हैं। यहाँ वैदिक धर्म के प्रति प्रेम और शैव धर्म के प्रति आदर भी दिखाई देता है। आन्ध्र प्रान्त में दिखाई पड़नेवाली शैव शाखाएँ इस प्रकार हैं - पाशुपत, कालामुख, कापालिक, लिंगायत या वीर शैव इत्यादि।

3·8·5· पाशुपत :-

पाशुपत शैव धर्म की प्राचीन परंपरा है। ईसवी शती के आरम्भ में मध्य भारत में लकुलीश्वर ने पाशुपत मत की स्थापना की। ई·सन् सातवीं शताब्दी से इनका उल्लेख आन्ध्र में मिलता है। ये मूलत: अहिंसा वादी थे। महाभारत में इनका उल्लेख मिलता है। पाशुपत ने वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था को तोड दिया। ये साधारण शैवों से भिन्न थे। " महेश्वर " पाशुपत संप्रदाय का ही नाम है। काकतीयों के समय भी पाशुपतों का उल्लेख मिलता है।

3.8.6. कालामुख :-

लुकलीश के शिष्य कालानमानि के अनुयायि " कालामुखी " कहलाते हैं । ये तीव्रवादी शैव थे । शैव धर्म के प्राबल्य और प्रमुखता को स्थापित करने के लिए बलपूर्वक अपने सिद्धान्तों को जनता पर थोपने से पीछे नहीं हटते थे । जैनों के विध्वंस में इनका बडा हाथ रहा । बेजवाडा, अमरावती आदि प्रान्तों में " सिंहपरिषदों " को स्थापित कर कालामुखी अपने धर्म प्रचार करते थे । श्रीशैलम् अनंतपुर, दाक्षारामम् कालामुखों के केन्द्र रहे हैं । मध्यकाल में इनकी बहुलता थी । काकतीयों के समय इनका आधिक्य देखने को मिलता है । ये मूलत: वाम मार्गी भी थे ।

3.8.7. कापालिक :-

कालामुखियों के वाममार्गी ही कापालिक थे । कापालिक शिव के भयंकर रूप की उपासना करते थे । ये अधिकतर श्मशान भूमिका में रहते थे । इनमें नरबलि की प्रथा भी प्रचलित थी । ये जन साधारण से दूर थे । काकतीयों के समय भी इनका उल्लेख मिलता है । कापालिक लोकोत्तर शक्तियाँ रखने का दावा करते थे । ये स्त्रीयों को भी अपने में सम्मिलित करते थे । इन लोगों ने वर्ण भेद को मिटा दिया । ये शिव के " भैरव " तथा " कापालिक " रूप की उपासना करते थे । वे अपने अनाचार कृत्यों को " सिद्धियाँ " कहते है -- वे इस प्रकार हैं - 1. मांस मदिरा पान 2. कपाल में भोजन 3. भस्मलगाना 4. श्मशान शव लेकर चलना 5. लठ लेकर चलना 6. सुरापात्र रखना 7. सुरापात्र में स्थित भैरवी की पूजा करना आदि । कहा जाता है कि शंकराचार्य ने इनको पराजित किया ।

3·8·8· लिंगायत : वीर शैव :-

आन्ध्र प्रदेश में एक नए संप्रदाय का भी पादुर्भाव हुआ जिसे लिंगायत या वीर शैव संप्रदाय कहा जाता है। वास्तव में यह अति प्राचीन संप्रदाय था। श्रीपति पंडितनेइसकी स्थापना की। ऐसा माना जाता है। लिंगायतों को शैवों का सुधारवादी दल कहा जाता है। शैव धर्म के अनावश्यक आडम्बरों और उनकी कतिपय कुरीतियो के विरुद्ध आवाज उठाई। ये परिशुद्धता, सरलता और बुद्धि संगत विकास करने के लिए प्रयत्न शील रहे।[59] इन्हें आराध्य " भी कहा जाता है। उपनयन (उपाकर्म) (यज्ञोपवीत धारण करने की क्रिया) के पश्चात लिंग चिन्ह को शरीर में धारण करते है। इसी कारण इनको लिंगायत कहा जाता है। ये मदिरापान के विरोधीआत्म संयम के कड़े नियम पालन करने-वाले हैं। ये विधवा विवाह के पक्षपाती थे। मध्य युग में मुख्य रूप से काकतीयों के समय इनकी बहुलता दिखाई देती है।

3·8·9· वीर वैष्णव :-

रामानुज ने वैष्णव का प्रचार किया। उन्होंने निम्न वर्ग के लोगों को अपने धर्म में दीक्षित किया। लेकिन वर्ण व्यवस्था का खण्डन नहीं किया। वीर वैष्णव धर्म का प्रवर्तन " पलनाटि वीर चरित्र " में ब्रह्म नायडु ने किया। उन्होंने वीर शैव के विरुद्ध वीर वैष्णव की स्थापना की। वीर वैष्णवों ने वर्ण व्यवस्था को मिटाने का प्रयत्न किया। वर्णान्तर विवाहों का प्रोत्साहन किया। निम्न वर्ग के लोगों को मन्दिरों में प्रवेश कराया। इस प्रकार के विप्लवात्मक सिद्धान्तों के कारण इसे जनता का आदर प्राप्त नहीं हुआ।

59· शैवमत - पृ· 152·

3.9. इस्लाम का प्रभाव :-

सन् 1310 ई. में जब मुसलमानों ने भारत पर आक्रमण किए तब से दक्षिण में भी इस्लाम का प्रभाव शुरू हो गये। मुसलमानों के आक्रमणों ने जनता के हृदय में धर्म के प्रति विश्वासों में परिवर्तन ला दिए। मुसलमान सैनिक इन्ही प्रान्तों में अपना निवास स्थापित करने लगे। इससे हिन्दू-मुसलमान एक दूसरे के प्रति प्रभावित होने लगे। उनकी आदतों, विचारों और संप्रदायों में मेलजोल शुरू हो गए। खिल्जी और तुगलक के साथ टर्की के सैनिक भी यहाँ आकर हिन्दू स्त्रीयों के साथ विवाह करने लगे। इस प्रकार हिन्दू मुसलमानों में सामंजस्य शुरू हो गए। सूफी मत का प्रभाव भी बढ़ने लगा। 12 वीं 13 वीं शताब्दियों में सूफिमत का प्रसार दक्षिण के प्रधानत: दक्खिन प्रान्तों में हुआ है। अनेक सूफी प्रेमाख्यातक काव्यों के द्वारा सूफी प्रेम सिद्धान्तों का भी प्रचार और प्रसार हुआ है। इसकी एक लंबी परंपरा 12 वीं शताब्दी के अन्त तक मिलती है।

3.9.1. धार्मिक अभ्युत्थान - भक्ति आन्दोलन :-

दसवीं से बारहवीं शताब्दी तक जब कि समस्त भारत एवं सुदूर दक्षिण तक मुहम्मद गजनबी और गोरी के आक्रमणों से जनता त्रस्त, भयभीत आत्म रक्षा और धर्म रक्षा के लिए व्याकुल थी। ऐसी स्थिति में सांस्कृतिक नवोत्थान हुआ। यह एक बौद्धिक एवं वैचारिक क्रान्ति थी। इस क्रान्ति के प्रमुख व्यक्तित्वों पर विचार करना भी अनिवार्य है।

3•9•2• शंकराचार्य ॥ 688 – 720 ई• ॥ :-

सांस्कृतिक नवोत्थान के अग्रदूत शंकराचार्य थे । उन्होंने पूर्व से पश्चिम तक दक्षिण से उत्तर तक अपने विलक्षण एवं अद्भुत पांडित्य का एकच्छत्र स्थापित कर वैदिक पौराणिक परंपराओं के आधार पर नया सांस्कृतिक अभियान चलाया । वे अद्वैतवाद और छायावाद के प्रवर्तक उपनिषदों के निर्गुण ब्रह्म के समर्थक थे । उन्होंने वेदों, उपनिषदों, गीता और ब्रह्म सूत्रों के पूर्व प्रतिपादित विचारों की भूमि पर अपने अद्वैत की स्थापना की । उनका एकमात्र लक्ष्य हिन्दू धर्म की पुन: स्थापना है। उनके अनुसार परमार्थ तत्व सत्ता रूप ब्रह्म अद्वैत और सत्य है । जगत् मिथ्या है । ब्रह्म और जीवन में कोई तात्त्विक अन्तर नहीं है । ब्रह्म निर्वैकाल्पिक, निरूपाधि और निर्विकार है । शंकर ने अपने अद्वैतवादी सिद्धान्तों के आधार पर भारतीय दर्शन को इस्लाम धर्म से श्रेष्ठ घोषित करने का प्रयास किया ।

3•9•3• आलवार संप्रदाय :-

देश की धार्मिक भीषण परिस्थितियो में भक्ति की एक नयी धारा का उदय हुआ जिसके नेता नम्मालवार थे । भक्ति का द्वितीय उत्थान आलवार सन्तों द्वारा हुआ । आलवार सन्तों ने वैदिक भक्ति को सुधार किया और उसका सरल रूप भक्तों के सम्मुख रखा । " आलवार " तमिल शब्द है जिसका अर्थ है " भक्ति में लीन व्यक्ति " । ये विद्वान नहीं थे लेकिन साधना में लीन व्यक्ति थे । आलवार नाम स्मरण को अधिक महत्व देते हैं । भक्ति मार्ग को ही श्रेष्ठ बताया है । [60]

60• वैष्णव भक्ति आन्दोलन – डा• मालिक मुहम्मद – पृ• 16•

दक्षिण का यह भक्ति आन्दोलन जातीय तथा क्षेत्रीय संकीर्णताओं से ऊपर उठकर वस्तुतः एक सार्वजनीन मानवीय धर्म के रूप में विधृत हुआ जिसमें ब्राह्मण धर्म, मूर्तिपूजा और वर्ण व्यवस्था के प्रतिबन्ध नहीं थे। [61] नम्मालवार ने अपने " तिरु विरुत्तम " नामक ग्रन्थ तथा " पेरियार और गोदा " पदो द्वारा दया अनुकम्पा का गुणगान किया। आलवारों का भक्ति आन्दोलन वस्तुतः परंपरागत वैष्णव धर्म सिद्धान्तों के अनुरूप था। आलवारों के " प्रबन्धम् " का प्रभाव उत्तर में भी पहुँचा।

3.9.4. रामानुजाचार्य :-

दसवीं शताब्दी के लगभग ही नए धार्मिक समन्वय का जो निर्वाह हुआ उसके प्रवर्तक रामानुजाचार्य थे। इन्होंने अपने गुरु यमुनाचार्य से प्रेरणा प्राप्त कर श्री संप्रदाय को व्यवस्थित रूप दिया तथा विशिष्टाद्वैत के सिद्धान्त का प्रचार किया। विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त में हृदय पक्ष तथा बुद्धि पक्ष एवं धर्म तथा दर्शन का समन्वय है।

" visistadvaita is neither pure philosophy nor pure religion, but is really a philosophy of religion" [62]

इन्होंने ब्रह्म को अद्वैत मानते हुए आत्मा और जगत् को विशिष्ठ बताया है। उनके अनुसार जीव तथा जगत् परमात्मा के अधीन हैं। श्री संप्रदाय की भक्ति का सार " प्रपत्ति " है अर्थात् शरणागति है। इनके अनुसार भक्ति और ज्ञान से ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है। इन्होंने उपनिषद, गीता और ब्रह्म सूत्रो के

---

61. भारतीय संस्कृति और कला - पृ. 524.

62. Philosophy of visistadvaita - P.N. Srinivasachari Page - 1

सिद्धान्तों को ही अधिक मान्यता दी । उन्होंने " महाभारत " के पाँच - रात्र मत का विकास कर वैष्णव संप्रदाय की प्रतिष्ठा की ।

3·9·5· मध्वाचार्य :-

शंकर के अद्वैत और रामानुजाचार्य के विशिष्ठाद्वैत के विरुद्ध मध्वाचार्य ने द्वैतवाद की स्थापना की । भागवत पुराण तथा पाँचरात्र संहिताओं के आधार पर अपने मत की पुष्टि की । उन्होंने 37 ग्रंथो की रचना की । उन्होंने ब्रह्म और जीव को परस्पर निरपेक्ष माना । उनके अनुसार विष्णु ही परब्रह्म हैं। परब्रह्म कारण है जीव कार्य । जीव परब्रह्म से उत्पन्न होकर न ब्रह्म बना रहता है और ब्रह्म में लीन हो सकता है । अतः जीव और ब्रह्म दोनो परस्पर निरपेक्ष तत्व हैं ।

3·9·6· विष्णुस्वामी :-

विष्णुस्वामी ने शंकर के अद्वैत के विरुद्ध शुद्धाद्वैतवाद की स्थापना की और रुद्रसंप्रदाय का प्रवर्तन किया । वे अद्वैत को माया से रहित मानकर शुद्धाद्वैत का प्रतिपादन किया । ब्रह्म के शुद्ध स्वरूप में दृश्य आनन्द व्याप्त है ।

3·9·7· निम्बार्काचार्य :-

निम्बार्काचार्य ने द्वैताद्वैत सिद्धान्त की स्थापना की और सनकादि संप्रदाय अथवा निम्बार्का संप्रदाय को स्थापित किया । वे पहले आचार्य थे जिन्होंने कृष्ण के साथ राधा की युगल पूजा का प्रतिपादन किया । उनके दो ग्रंथ वेदान्त पारिजात सौरभ और दशश्लोकी प्रसिद्ध है । निम्बार्क ने द्वैताद्वैत सिद्धान्त के अनुसार ब्रह्मजीव में अद्वैत और द्वैत दोनो प्रकार का सम्बन्ध हैं।

उपाधि भेद से ब्रह्म और जीव भिन्न हैं । उनकी भिन्नता भी सत्य है, अभिन्नता भी सत्य है । यह भिन्नता माया अथवा भ्रम नहीं है । इनके प्रचार का केन्द्र उत्तर भारत है ।

3·9·8· रामानन्द :-

स्वामी रामानन्द जी रामानुजाचार्य की शिष्य परंपरा में हुए और राघवानन्द के शिष्य थे । उत्तर भारत के सगुण भक्त कवियों को सबसे अधिक प्रभावित करने वाले रामानन्द थे । रामानन्द ने जहाँ एक ओर श्री संप्रदाय को व्यापक और लोक प्रिय बनाया वहाँ दूसरी ओर उत्तर और दक्षिण की भक्ति पद्धति के समन्वय का भी महान कार्य किया ।

रामानन्द के समय पश्चिम प्रभाव बढ़ चुका था । इस हठ धर्मिता धर्मानुयायियों के लिए संकट बन गया था । ऐसी स्थिति में संस्कृति की रक्षा के लिए प्रयत्नशील हिन्दू विचारकों को रामानन्द परमावश्यक प्रतीत हुए । धर्म विद्रोह के इस विनाशकारी समय में दक्षिण भारत में रामानन्द का आविर्भाव हुआ । उन्होंने रामानन्द के धर्म को सहज और उदार बनाया । इनके भीतर धर्म और समाज के प्रति चिन्ता उत्पन्न हुई । उन्होंने तीर्थ यात्रा के क्रम में सारे देश में भ्रमण किया और भक्ति का प्रचार किया । दक्षिण से भक्ति तत्व को उत्तर तक पहुँचाने का श्रेय रामानन्द को प्राप्त हुआ ।

" भक्ति द्राविड उपजी लाए रामानन्द
परगट कियो कबीर ने सात द्वीप नौ खण्ड " 63

63· संस्कृति के चार अध्याय - पृ· 38

उन्होंने सगुण और निर्गुण समन्वय का प्रयत्न किया । इनके सगुण भक्ति के शिष्य तुलसी है तो निर्गुण भक्ति परंपरा में कबीर का उच्च स्थान है।

3·9·9· चैतन्य :-

गौडीय संप्रदाय के संस्थापक चैतन्य देव हैं । इनका समय 1485 ई॰ माना जाता है । चैतन्य देव अपने अनुयायियों द्वारा स्वयं कृष्ण स्वरूप समझे जाने के कारण इन्हें कृष्ण चैतन्य भी कहा जाता है। चैतन्य देव ने देश भर भ्रमण करते हुए अपने सिद्धान्तों का प्रचार किया । धार्मिक संघर्षमय परिस्थितियों में भारत में एक सुदृढ़ भूमिका स्थापना करने में इनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है । वे कृष्ण को अनन्त शक्ति मुक्ति और आनन्दी मानते हैं ।[64] उनकी अनन्त शक्ति प्रकट होने पर उन्हें भगवान कहते है अन्यथा ब्रह्मा भी कहते हैं। जब शक्ति कुछ प्रकट और कुछ अप्रकट रहती है तब वह परमात्मा कहलाता है । कृष्ण ही चैतन्य संप्रदाय का आलंबन है ।

3·9·10· वल्लभाचार्य :-

वल्लभाचार्य का आविर्भाव भक्ति आन्दोलन को नई दिशा देने के अर्थ में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। उन्होंने भारत की सगुण भक्ति शाखा को दार्शनिक विचार धारा एवं साधना पद्धति को विशेष रूप से प्रभावित किया । उनके मत को शुद्धाद्वैत कहा जाता है और साधना क्षेत्र में पुष्टिवाद । इनके शुद्धाद्वैत को ब्रह्मवाद तथा अविकृत परिणामवाद भी कहा जाता है ।

64· वैष्णविज्म – शैविज्म – आर·डी· भण्डारकर – पृ· 119·

हिन्दी साहित्य की दृष्टि से इनका अधिक महत्व है। इनके राधा कृष्ण या वल्लभ या गोपी वल्लभ कृष्ण ही हिन्दी कृष्ण काव्य के नायक हैं। इनका ब्रह्म सूत्रों पर भाष्य अति प्रसिद्ध है।

इस प्रकार धार्मिक पुनरुत्थान के इस युग में इन विभिन्न संप्रदायों ने वैदिक कोपुन: स्थापना में विशेष महत्वपूर्ण उपलब्धि प्राप्त की। इस्लाम धर्म के प्रभाव को कम किया और उनके प्रसार को रोकने में सफल हुए।

3.10. तुलनात्मक अनुशीलन :-

प्रस्तुत अध्ययन के आधार पर जो धर्म और संस्कृति संबंधी भूमिका उभरी है उसकी कुछ उल्लेखनीय विशेषताओं का तुलनात्मक अनुशीलन भी आवश्यक हो जाता है।

हिन्दी प्रान्त में वैदिक संस्कृति और धर्म का आरम्भ और क्षेत्र गत विकास देखा जा सकता है। ई.पू. 600 से सन् 300 तक बौद्ध धर्म का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रहा है। जैन धर्म का भी बौद्ध धर्म के समानांतर में उद्भव और विकास संपन्न हुआ है। सिद्ध साहित्य और उसके प्रभाव के परिणाम भी अवतरित हुए। तेलुगु प्रान्त में बौद्ध धर्म और जैन धर्मों का प्रसार अत्याधिक रहा है। आरंभ और मध्य कालीन अनेक राजवंशों ने बौद्ध जैन धर्मों का आदर किया। जनता पर भी प्रभाव रहा है। इनके प्रभाव से जो साहित्यिक रूप उभरे हैं वे अनुपलब्ध हैं।

उत्तर भारत में जैन बौद्ध धर्म के प्रभाव को कम करने और वैदिक धर्म की पुन: स्थापना के लिए प्रयत्न किए गए है। उसी प्रकार के प्रयास आन्ध्र में भी हुए। राजपूत युग में हिन्दी प्रान्त में इन दोनों धर्मों का प्रसार कम दिखाई देता है। तेलुगु प्रान्त में वेंगी चालुक्यो से इन दोनो धर्मों का प्रभाव कम होता दिखाई देता है। मध्य युग के कुछ राजवंशों ने जैन धर्म का आदर किया। वैदिक धर्म ने फिर से अपना स्थान प्राप्त किया।

शैव संप्रदाय का उत्तर भारत में उतना अधिक प्रभाव नहीं रहा जितना विकास तेलुगु प्रान्त में दिखाई देता है। साहित्य के क्षेत्र में तो बहुत ही कम प्रभाव रहा है। शैव धर्म के विभिन्न रूपों का विकास आन्ध्र में दिखाई देता है। उन रूपों की प्रत्यक्ष झलक साहित्य में दिखाई देतो है। हिन्दी प्रान्त में नाथ संप्रदाय शैव संप्रदाय के प्रभाव से ही विकसित हुआ। शैव के विभिन्न रूप - पाशुपत, कापालिक, कालामुख आदि तेलुगु साहित्य में विशेष महत्व रखते है हिन्दी साहित्य में इनका कोई विशेष प्रभाव दिखाई नहीं देता।

आन्ध्र में वैष्णव धर्म का महत्वपूर्ण स्थान है। शैव और वैष्णव दोनो आपस में संघर्ष करते रहे थे। वैष्णव धर्म का धार्मिक प्रचार-प्रसार में श्री संप्रदाय का उदय और मंदिराश्रित साहित्य यहाँ दिखाई देता है। इस दिशा में श्री रामानुजाचार्य का प्रभाव अधिक रहा। उतर भारत में रामानन्द और श्रीकृष्ण चैतन्य के प्रभाव में वैष्णव धर्म दिखाई देता है। इस धर्म को आचार्य वल्लभ ने और श्री रूप गोस्वामी ने माधुर्य का रूप प्रदान किया है।

यद्यपि भक्ति के अभ्युत्थान में दक्षिण भारत का अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान रहा है तथापि उत्तर भारत का भी अपना कम योगदान नही रहा है। भक्ति आन्दोलन का प्रसार और प्रचार उत्तर भारत में अधिक दिखाई देता है। भक्ति

साहित्य जोरो से लिखा गया । तेलुगु प्रान्त में भी भक्ति साहित्य उपलब्ध होता है ।

हिन्दी और तेलुगु प्रान्तों में राजवंशों ने धर्म को आश्रय दिया है । वैदिक धर्म के पुनरुत्थान में इनका विशेष योगदान रहा है । इस्लाम धर्म का प्रभाव भी दोनों क्षेत्रों में दिखाई देता है ।

इस प्रकार मध्यकालीन हिन्दी और तेलुगु साहित्य में धर्म का विशेष प्रभाव रहा । संपूर्ण भक्ति साहित्य के पीछे धर्म और संस्कृति का प्रभाव रहा है । उसी प्रकार तेलुगु में वैदिक,बोद्ध, शैव, और वैष्णव धर्मो का विशेष योगदान रहा है । इसका स्पष्ट प्रभाव मध्य युगीन साहित्य पर है ।

की पद्धति तेलुगु में प्राचीन काल से ही प्रचलित है। वीर रस प्रधान काव्य हिन्दी में मध्य युग में कम मिलते हैं। फिर भी रास और चरित काव्यों में यह प्रवृत्ति है तेलुगु में "पलनाटिवीर चरित" महत्व पूर्ण वीर काव्य है। इस प्रकार हिन्दी और तेलुगु साहित्य में सभी प्रकार के काव्य रूपों को देखा जा सकता है। काव्य और कवि हृदय की दृष्टि से एक विशिष्ट साम्य समय के भीतर मिलता है।

भाषा का ऐतिहासिक विकास और साहित्यिक अवतरण की प्रकृति

4.0. प्रस्तावना :-

भाषा साहित्य सृजन का आधार है । भाषा की स्थिति और विकास की गति के चरणों के बीच भाषाएँ साहित्यावतरण के लिए उपर्युक्त स्वरूप धारण करती हैं जो प्राय: राजनीतिक गतिविधियों पर भी आधारित रहती हैं । यह भी एक सत्य है कि भाषा स्वरूप की विशिष्ट स्थितियों के आधार पर युग विशेष में भाषा रूप की प्रचुरता आधारित रहती है । इतना ही नहीं कभी-कभी यह भी देखा जाता है कि कुछ विशिष्ट परिस्थितियों के दबाव से किसी प्रान्त की भाषा को साहित्य के क्षेत्र में एक विशिष्ट स्थान प्राप्त हो जाता है । भाषा के विकास में उसकी प्रकृतिगत विशिष्टताओं के आधार पर भी विशिष्ट रूपों का उद्गम होता रहता है । ये ही रूप साहित्य के भाषा-रूपों में प्रभावित होते हैं । तुलनात्मक साहित्येतिहास के क्षेत्र में भी भाषा की गति विधियों के

अध्ययन का विशेष योगदान रहता है। प्रस्तुत अध्याय में तेलुगु और हिन्दी भाषाओं की ऐतिहासिक स्थितियों का एक सम्यक विवेचन लक्ष्य रहा है जिससे मध्यकालीन साहित्यिक भाषाओं का एक अवगाहन हो सकें।

4.1. हिन्दी भाषा का इतिहास :-

ऋग्वेद की भाषा वैदिक भाषा कहीं जाती है। वह भाषा विकास की दृष्टि से पहले चरण के स्वरूप को स्पष्ट करती है। इसके बाद वेदों की तांत्रिक विशेषताओं और उनमें कथित जीवन दर्शन से प्रेरित होकर अनेक प्रकार के ग्रन्थों की रचना हुई। उनमें ब्राह्मण ग्रन्थ, प्रातिशाख्य आदि उल्लेखनीय हैं। इनके साथ-साथ भाषा के मानकीकरण के प्रयास जोरो से चलने लगे। इन प्रयासों के फल स्वरूप एक नयी सुसंस्कृत भाषा का स्थापन हुआ। इसी को विद्वानों ने संस्कृत नाम से अभिहित किया। 800 ई. पू. से जो भाषा एक मानक भाषा की ओर उन्मुख होने लगी और लगभग 500 ई.पू. में वैयाकरण पाणिनी ने जिसका संस्कार किया वही संस्कृत कहलायी। इस प्रकार प्राचीन आर्य भाषा के दो रूप हैं - वैदिक भाषा और लौकिक भाषा। 500 ई.पू. से सन्. 1000 ई. तक के लगभग डेढ हजार वर्षों का समय "मध्य कालीन भारतीय आर्य भाषा काल" कहा जाता है। इस समय की भाषाओं को "प्राकृत" कहते हैं। हेमचन्द्र सूरिका कथन है कि "प्रकृति संस्कृतम् तत्र भव तत्र आगतार वा प्राकृतार" अर्थात् प्रकृति मूल संस्कृत है और उससे जो आई वह प्राकृत है। प्राकृत के दो रूप है - पालि और अपभ्रंश। पालि के संबंध में कहा जा सकता है कि - "पार कर वतीतति बुद्ध वचनं इति पालि" अर्थात् जिससे बुद्ध वचनों की रक्षा की गई वह पालि है।

मध्यकाल में संस्कृत के साथ-साथ साहित्य में प्राकृतों का भी व्यवहार होने लगा । इनमें काव्य ग्रन्थ और धर्म ग्रन्थ लिखे जाने लगे । प्राकृत के पाँच भेद हैं - शौर सेनी, मागधी, अर्ध मागधी, महाराष्ट्री और पैशाची । जब साहित्यिक प्राकृतें प्राय: मृत प्राय हुई तो अपभ्रंश का भाग्य जागा और इसे भी साहित्य के क्षेत्र में स्थान मिला । डा॰धीरेन्द्र वर्मा का मत है कि " लेखक तत्कालीन बोली के आधार पर आवश्यक परिवर्तन करके साहित्यिक प्राकृतों को ही अपभ्रंश बना लेते, शुद्ध अपभ्रंश अर्थात् लोगों की असली बोली में नहीं लिखते थे । "[1] अपभ्रंशों में देशज शब्दों एवं धातुओं को खूब अपनाया गया है । तद्भव शब्दों का व्यवहार भी हुआ है । अपभ्रंश तथा अन्य नवीन भारतीय आर्य भाषाओं के रूप में विकसित हुए । हिन्दी के विकास की पीठिका होने के कारण इसे पुरानी हिन्दी का नाम सार्थक है । सन् 1000 ई॰ के आस पास विभिन्न अपभ्रंशों से हिन्दी बंगला, पंजाबी, मराठी आदि आधुनिक आर्य भाषाओं के विकास में देखा जा सकता है ।[2] शौर सेनी से पश्चिमी हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती, अर्धमागधी से पूर्वी हिन्दी का विकास देखा जा सकता है ।

4·2· हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास :-

अपभ्रंश से हिन्दी का विकास माना जाता है । कुछ विद्वानों के अनुसार अपभ्रंश और हिन्दी के बीच एक भाषा थी जिसे अवहट्ट कहा गया है जिसे पुरानी हिन्दी भी कहा गया है । हिन्दी का आविर्भाव 1000 ई॰ के आस पास माना जा सकता है । इसी समय से हिन्दी के अंकुर प्रस्फुटित होने लगते हैं । हिन्दी

1· हिन्दी भाषा का इतिहास - पृ॰ 47·

2· हिन्दी भाषा और नागरी लिपि - केशवदत्त रुपावली - पृ॰ 139·

भाषा के एक हजार वर्षों को तीन कालों में विभक्त किया जाता है । [3]

1. आदिकाल सन् 1000 ई. से सन् 1500 ई. तक
2. मध्यकाल सन् 1500 ई. से 1800 ई. तक
3. आधुनिककाल सन् 1800 ई. से आज तक

4.3. हिन्दी भाषा की प्राचीनता :-

यद्यपि 1000 ई. से अपभ्रंश का अवसान और प्रारम्भिक हिन्दी का उदय माना जाता है तथापि निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि अपभ्रंश के समाप्त होते ही हिन्दी का विकास हो गया है । अपभ्रंश और हिन्दी के विकास की दृष्टि से एक सन्धिकाल या संक्रान्तिकाल माना जा सकता है । इस काल की जो अध्ययन सामग्री उपलब्ध हुई वह संदिग्ध है । राउल बेली काव्य 11 वीं शताब्दी के शिला लेखों पर लिखा गया है । इसके अलावा सिद्धों, नाथों और जैनों के धार्मिक साहित्य, चारणों की वीर गाथाएँ तथा नीति श्रृंगार के मुक्तक आदि प्राप्त होते हैं । इस समय की भाषा के दो रूप मिलते है । अवहट्ट और देशी भाषा [4] विद्यापति पदावली और उसके पद अवहट्ट भाषा में रचे गए हैं । सिद्ध नाथ जैनों के धार्मिक साहित्य में जन भाषा देखी जा सकती है । अमीर खुसरों और बंदा नवाज की रचनाओं में देशी भाषा के साथ फारसी भाषा के तत्व भी प्राप्त होते हैं ।

---

3. भाषा विज्ञान और हिन्दी भाषा - सुधाकर कलवाडे - पृ. 287.
4. भाषा विज्ञान और हिन्दी भाषा - सुधाकर कलवाडे - पृ. 288.

राजस्थान के आस पास के प्रदेशों में चार भाषा रूपों का प्रयोग देखा जा सकता है । 1· अपभ्रंश मिश्रित पश्चिमी हिन्दी 2· डिंगल 3· मरुभाषा 4· पिंगल । आरम्भिक काल का अधिकांश साहित्य राजस्थानी डिंगल और अपभ्रंश मिश्रित पश्चिमी हिन्दी में ही लिखा गया था । पिंगल भाषा में भी साहित्य लिखा गया था । इसी काल से हिन्दी की बोलियाँ अंकुरित होती हैं । हिन्दी के विकास की पीठिका होने के कारण पं· चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने सन् 1000 से 1500 ई तक की हिन्दी को पुरानी हिन्दी की संज्ञा दी है । डा· केशवदास स्वाली भी सन् 1500 ई तक की भाषाओं को पुरानी हिन्दी मानते हैं और इनके अनुसार हिन्दी का उदय 12 वीं शती से है और प्रेमचन्द सूरी के " सिद्ध हेमराज " के उदाहरण भी प्रस्तुत करते हैं

" भल्ला हुआ जु मारिया बहिणी महारा कंतु ।
लज्जेजं तु बयंसि अड जरं भग्गा घर एंतु ।।
प्रिय संगमि कउ निद्दडी पियहो पर रखबहो केव ।
मई बिन्निवि विन्निसिया, निददन एवं न तेंत ।। " 5

इसमें भल्ला हुआ जु बहिणी, महारा, भग्गा, घर क्रमशः आधुनिक हिन्दी के भला, हुआ जो बहन हमारा भागना और घर शब्द के सदृश्य ही है ।

प· हेमचन्द्र के पूर्व से हिन्दी भाषा का विकास होने लगा था और सन् 1050 तक स्थिर होने लगा अतः हिन्दी भाषा का आरम्भिक काल सन् 1050 ई से माना जा सकता है ।

5· हिन्दी भाषा का विकासात्म इतिहास - द्वारिका प्रसाद सक्सेना - पृ· 66·

हिन्दी भाषा का विकास काल राजनीतिक दृष्टि से संघर्ष का समय था । मुसलमानों का आगमन और इस्लाम धर्म का प्रचार होने लगा था मुसलमानों के आक्रमणों के कारण भारतीयों में अपनी रक्षा की चिंता लगी हुई थी ऐसी स्थिति में कवि ने कलम और तलवार दोनों चलाने में अपनी निपुणता दिखाई । चन्दबरदाई और जगनिक कवि ऐसे ही निपुण थे । इस समय विशेष कर वीरोचित काव्य रचे गए जिनकी भाषा डिंगल कही जाती थी । इस भाषा के अतिरिक्त दूसरी भाषा जिसे साहित्यिक पिंगल कहा जाता था, अधिक प्रयोग में थी । डिंगल साहित्य में प्राचीनता की झलक उतनी नहीं जितनी की पिंगल में है । पिंगल में प्राचीन ब्रज का प्रयोग होता था ।

4.4. मध्यकालीन भाषागत रूप :-

मध्यकाल हिन्दी साहित्य का स्वर्ण काल है । [6] इस युग में हिन्दी भाषा ने और अधिक विकास को प्राप्त किया । इस युग में हिन्दी प्रदेश में विदेशी शासकों का अधिकार हो चुका था । मुसलमानों के शासन में हिन्दी भाषा पर फारसी का प्रभाव अधिक रहा । मध्यकाल में पूर्वी हिन्दी से अवधि और मैथिली, राज - स्थानी से मरु, पिंगल से ब्रज भाषा, गोरख, नामदेव, कबीर आदि से सधुक्कड़ी भाषा और अमीर खुसरो आदि से खडी बोली का विकास हुआ । सन्तों की भाषा में पश्चिमी हिन्दी की प्रचुरता थी । विद्यापति की परंपरा क्षेत्रीय मिथिला की भाषा मैथिली बन गई । इस युग में पंडितो की भाषा संस्कृत रही । जन भाषा को भी इस युग में बढ़ावा मिला । धर्म प्रचारक कवियों ने जन भाषा को ही अपनाया क्योंकि धर्म प्रचार में जनता के हृदय के समीप ले जाने की क्षमता जन भाषा में ही थी ।

---

6. हिन्दी भाषा का इतिहास - धीरेन्द्र वर्मा - पृ. 80.

4·4·1· सधुक्कड़ी :-

कबीर ने सरल और आडम्बर हीन भाषा का प्रयोग किया । विभिन्न प्रान्तों की बोलियों को अपना कर एक अलग भाषा बनाई जिसे " सधुक्कड़ी " कहते हैं । इन्होंने अवध, ब्रज, पूर्वी हिन्दी, फारसी, अरबी, संस्कृत, राजस्थानी तथा पंजाबी आदि भाषाओं से शब्दों का ग्रहण किया । कबीर ने अपने " साखी " और " सबद " में व्याकरण के नियमों का पालन नहीं किया । इस प्रकार कबीर द्वारा प्रयोग की गई भाषा को सधुक्कड़ी भाषा कहते हैं ।

इस युग की प्रधान बोलियाँ तीन है ।· अवधी 2· ब्रज 3· खड़ी बोली

4·4·2· अवधी :-

अयोध्या की भाषा अवधी के नाम से जाना जाती है । अवधी भाषा और साहित्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण है । अवधी की स्वभाविक कोमलता को सगुण शाखा की राम भक्त कवि तुलसीदास ने प्रौढ़ता प्रदान की । डा· धीरेन्द्र वर्मा का विचार है कि " दोनों भाषाओं में ब्रज तो हिन्दी प्रदेश की साहित्यिक भाषा हो गई किन्तु अवधी में लिखे गए " राम चरित मानस " का हिन्दी जनता में प्रचार होने पर भी साहित्य के क्षेत्र में अवधी का प्रचार न हो सका । "[7] जायसी कृत " पद्मावत " अवधी का एक और उत्कृष्ट ग्रन्थ है ।

7· हिन्दी भाषा का इतिहास - पृ· 80·

4·4·3· ब्रज भाषा :-

मूलत: ब्रज भाषा चिर प्रतिष्ठित काव्य भाषा का विकसित रूप है। मध्यकाल में ब्रज भाषा को विशिष्ठ स्थान प्राप्त हुआ। कहा जाता है कि बल्लभाचार्य के प्रोत्साहन से ब्रज भाषा में साहित्य रचना प्रारम्भ हुई।[8] ब्रज भाषा को साहित्य के साथ-साथ विदेशी तथा देशी राज्यों की संरक्षा भी प्राप्त हुई। तुलसी ने भी " गीतावली " और " विनय पत्रिका " में ब्रज भाषा का ही प्रयोग किया।[9] अष्टछाप के कवि नन्ददास, रीतिकाल के भक्त कवि रसखान, बिहारी, घनानन्द आदि ने भी ब्रज भाषा को साहित्य भाषा के रूप में स्वीकारा।

4·4·4· खड़ी बोली :-

चौदहवीं शती के मुसलमान शासकों के साथ दक्षिण में खड़ी बोली को प्रोत्साहन मिला। प्राचीन और मध्यकाल के ग्रन्थों में जहाँ तहाँ खड़ी बोली के रूप बिखरे हुए दिखाई देते हैं। कबीर, खुसरो, भूषण आदि ने खड़ी बोली का बराबर प्रयोग किया। वास्तव में यह मुसलमानी बोली समझी जाती है। उत्तर भारत में 18 वीं के बाद खड़ी बोली को उन्नत स्थान प्राप्त हो गया।

8· हिन्दी भाषा का इतिहास - धीरेन्द्र वर्मा - पृ· 80·

9· - वही - पृ· 81·

4·5· साहित्यिक रूप :-

इस प्रकार मध्यकाल में प्रधानतः पुरानी हिन्दी अवधी, ब्रज, सधुक्कड़ी और खड़ी बोली में पद, छन्द काव्य, मुक्तक काव्य, दोहे गीत आदि रूप प्राप्त होते हैं जो इस युग की विकासात्मक भाषा के प्रमाण है ।

4·6· तेलुगु भाषा का इतिहास :-

आन्ध्र प्रान्त में व्यवहृत भाषा के लिए आन्ध्रमु, तेलुगु और तेलुगु तीन नाम प्रयुक्त हैं। भारत में हिन्दी के बाद सर्वाधिक समूह से बोली जाने वाली भाषा तेलुगु ही है । तेलुगु द्राविड परिवार की भाषा है । इस भाषा में अनेक महान कवियों द्वारा प्रणीत गौरव ग्रन्थ उपलब्ध हैं । ईसा की प्रथम शताब्दी से लेकर आज तक अर्थात् लगभग दो हजार वर्षों के तेलुगु भाषा के इतिहास को भाषा के विकास को उपलब्ध सामग्री के आधार पर देखा जा सकता है ।

4·7· तेलुगु भाषा की प्राचीनता :-

यह निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता कि तेलुगु भाषा का अस्तित्व कब से है । प्रामाणिक सामग्री के अभाव में भाषा की उत्पत्ति का निरूपण नहीं किया जा सकता । अग्निपुराण के आधार पर तेलुगु भाषा की प्राचीनता का अनुमान लगाया जा सकता है जिसमें कहा गया कि श्री महा विष्णु को यह भाषा अत्यन्त प्रिय थी ।

" त्रिमूर्तिनां संस्कृतान्ध्रे
प्राकृतां प्रियंकरा । " [10]

10· तेलुगु भाषा का इतिहास – बालशौरि रेड्डी – पृ· 23·

तेलुगु भाषा के प्राचीन रूप का दर्शन आन्ध्र प्रदेश के पुरातन शिलालेखों में मिलता है। ये संस्कृत या प्राकृत में हैं पर इनमें प्रत्यय, कुछ शब्दों के साथ कारक प्रत्यय मिलते है।

तेलुगु भाषा में सर्व प्रथम आविर्भूत महा ग्रन्थ नन्नय कृत "महा भारत" है। इसका समय ग्यारहवीं शती है। नन्नय समय से लेकर अब तक के काल को एक खण्ड में और उससे पूर्व काल को दूसरे खण्ड में रखकर भाषा के विकास को देखा जा सकता है। इन्ही काल खण्डों के आधार पर काल विभाजन किया जा सकता है। तेलुगु भाषा विकास को पांच युगों में विभक्त किया जा सकता है। [11]

1. ईसा से पूर्व
2. प्रथम शती से सातवी शती तक
3. 7 वी शती से 11 वीं शती तक
4. 11 वीं शती से 19 वीं शती
5. 19 वीं शती से आज तक

तेलुगु भाषा के विकास को अध्ययन की सुविधा को लेकर तीन भागों में भी देखा जा सकता है

1. प्राचीन युग - ई.पू. 210 से 1040 ई. तक
2. मध्य युग - ई 1040 से सन् 1940 ई. तक
3. आधुनिक युग - सन् 1940 ई. से आज तक

---

11. तेलुगु वाणी - गंटि जोगी सोम याजुलु - 1975 - पृ. 31.

सोमयाजुलु जी के अनुसार देखा जाए तो उपर्युक्त पाँच भागों में प्रथम तीन साहित्य उद्गम की पूर्व दशा तथा बाद के दो भाग साहित्य की परवर्ति दशा को सूचित करते हैं ।

4·8· तेलुगु भाषा का विकास :-

सन् ई· की प्रथम शताब्दीं में अमरावती स्तूप में "नागबु"[12] शब्द मिलता है यह प्रथम तेलुगु माना जाता है । इक्ष्वाकु आनन्दगोत्रिज और विष्णु - कुण्डियों के समय संस्कृत या प्राकृत का प्रभाव अधिक था ।

शातवाहनों के समय में प्राकृत के साथ तेलुगु में देशी भाषा का उल्लेख मिलता है । इस समय में प्राकृत के साथ देश पालक जन भाषा का बाहुल्य भी रहा होगा जिसने बाद में तेलुगु का रूप धारण किया होगा "[13] संभवत: देशी भाषा तेलुगु भाषा ही होगी । प्राचीन बौद्ध वाङ्मय में भी आन्ध्र का उल्लेख हुआ है । अष्ट कथाओं से विदित होता होता है कि महत्मा बुद्ध ने अपने शिष्यों को आदेश दिया कि आन्ध्र देश में आन्ध्र भाषामेंही बौद्ध धर्म का प्रचार करे। इससे पता चलता है कि ई· पू· 500 में ही आन्ध्र भाषा विद्यमान थी ।[14]

छठी शताब्दी से प्राप्त शिला लेखों से पता चलता है कि तेलुगु भाषा ने द्रविड परिवार की भाषाएँ तमिल, कन्नड, मलयालम भाषाओं से अलग होकर आन्ध्र देश में स्वतंत्र रूप धारण किया । यद्यपि इसने संस्कृत और प्राकृत के शब्दों को ग्रहण किया फिर भी अपने अस्तित्व को नहीं खोया ।[15] 7 वीं शती में मणि प्रवाल शैली सी शैली दिखाई देती है ।

12· तेलुगु साहित्य समीक्षा - पी·नागय्या - पृ· 15·

13· तेलुगु साहित्य का इतिहास - बाल शौरि रेड्डी - पृ· 20·

14· तेलुगु भाषा चरित्र - भद्रिराजु कृष्णमूर्ति - पृ· 101·

ई॰ 300 – 600 ई॰ में राजाओं को दी जाने वाली उपाधियाँ, सीमाओं के नाम, आग्रहार आदि तेलुगु में लिखे जाते थे । 6 वीं शताब्दी के शिला लेखों से पता चलता है कि उस समय कई गांव के नाम तेलुगु में होते थे – उदाहरण – वेबूर, कुडूरू, पाणूरू आदि।[15] 6 वी शताब्दी से शिलालेख पूरी तरह तेलुगु में ही लिखे जाते थे । " कल्लमल्ल शिला लेख में रेनाटि चोल राजाओं का 33 गद्य रूप मिलते है।[16] तेलुगु में देशी कविता का जो प्रयोग हो रहा था वह ई॰ 783 – 990 की " आरंबाक शिला लेख, सन् 1022 ई॰ को कोरू मिल्ली दान– शिला लेख से पता चलता है । इनमें तेलुगु के कंद, रगड, पद्य रूप मिलते हैं । इस प्रकार नन्नय के पूर्व ही तेलुगु का अस्तित्व ही नहीं उसका क्रमिक विकास देखने को मिलता है ।

नन्नय के पूर्व ही " पद गेय " रूप में देशी कविता रूप प्राप्त होते है । गेय रूप ही भाषा और कविता विकास की प्रथम दशा है । प्रथम दशा मे ही तेलुगु में गेय कविता सामान्य जन वाणी में रही होगी ।[18]

4·8·1· नन्नय युग :-

सन् 1050 में नन्नय ने सर्व प्रथम तेलुगु में उत्कृष्ट महाकाव्य की रचना की । इसमें इन्होने मार्गी भाषा का प्रयोग किया । नन्नय ने अपने समय में व्याप्त कुछ गीतों का उल्लेख किया है । जैसे – " नागी गीत " । इससे ज्ञात होता है कि नन्नय के पूर्व ही पद्य गीत आदि लिखे गए थे । सन 1130 ई॰ में नन्ने चोड ने

15· तेलुगु साहित्य समीक्षा – जी नागय्या – पृ॰ 17·

16· – वही – पृ॰ 20·

17· प्राङ्नन्नय युग – दिवाकर्ल वेंकटावधान – पृ॰ 351·

18· तेलुगु साहित्य समीक्षा – जी॰ नागय्या – पृ॰ 35·

" कुमार संभव " में " ढुले गीत ", " गोंड गीत ", " अंबमालिक ". नामक गीतों का उल्लेख किया जो राग बद्ध है । इनकी भाषा में मार्गी और देशी दोनों रूप दिखाई देते है । सन् 1160 ई॰ - 1240 ई॰ में पालकूर्ति सोमनाथ ने " पंडितराध्य चरित्र " में " भ्रमर गीत ", " निवाली गीत " गोम्भि पद, वालेहुपद आदि का उल्लेख किया । इनके अतिरिक्त देशी भाषा में कुछ नाटक और गीतों का उल्लेख भी किया ।[19] नन्नय ने " महाभारत " की रचना मार्गी रीति में की।

4·8·2· मार्गी कविता :-

" मार्गी " संस्कृत के लक्षणों को ग्रहित करनेवाली ग्रान्थिक तेलुगु भाषा है । नन्नय ने मार्गी पद्धति को अपनाकर अन्य कवियों के लिए भी मार्ग प्रशस्त किया ।

4·8·3· देशी :-

सन् 1130 ई में तेलुगु में नन्नेचोड ने सर्व प्रथम देशी और मागी संप्रदायों को कन्नड से ग्रहण किया । इन्होंने " कुमार संभव " की पीठिका में देशी मार्गी के भेद को स्पष्ट किया ।

> " मुनु मार्ग कवित लोकंबुन वेलयग देशि कविता बुट्टिंटचि लोकं
> बुन निलिपि रांध्र विषयंबु जन जालुक्य राजु मोद लुग पलबुर ।।

19· तेलुगु साहित्य समीक्षा - नागय्या - पृ॰ 35·

अर्थात् देशी कविता को जन्म देकर तेलुगु देश में रखकर संस्कृत की कविता " मार्ग जन भाषा की कविता देशी भाषा के नाम से जाना जाता है । इस प्रकार संस्कृत युक्त लाक्षणिक भाषा मार्गी भाषा है । जन भाषा को देशी भाषा कहा जाता है ।

वाग्गेयकार ताल्लापाक अन्नमाचार्य आदि कवियों ने वैष्णव धर्म प्रचार के लिए " देशी " पद्धति का ही अनुसरण किया । उन्होंने अपने कीर्तन, पद द्विपद, काव्य, शतक उदाहरण दण्डक, वचन, रगड, मंजरी आदि प्रक्रियाओं को देशी पद्धति में ही रचा ।

जहाँ दरबारी कवि मार्गी पद्धति का अनुसरण कर रहे थे वहाँ तल्लपाक कवि देशी का प्रचार कर रहे थे ।

कंदुकूरि रुद्र कवि ने सन् 1508 ई॰ में " सुग्रीव विजय " नामक " यक्षगान " लिखा । यह प्रथम तेलुगु देशी यक्षगान है ।

तेलुगु साहित्य में देशी भाषा में लिखीगई देशी कविता को पंडितों का आदर और राजाश्रय भी प्राप्त हुआ । क्षेत्रय्या गिरिराज कवि, आदि राजाश्रय में ही " देशी " गीत लिखे । प्रजा कवि वेमनाने भी " देशी " कविता में " आटवे - लदि " में अनेक नीति पद्यों की रचना की ।

इस प्रकार 11 वीं शती की मार्गी कविता देशी कविता के प्रवाह में बह गयी। लेकिन प्रबन्ध युग में फिर से प्रचलन में आ गयी और यह 17 वीं शती तक राज्य किया ।

4·8·4· जानु तेलुगु :-

तेलुगु में सर्व प्रथम जानु तेलुगु का प्रयोग नन्ने चोड ने किया । जानु अर्थात् सार्वजनिक सुबोध योग्य भाषा ही जानु तेलुगु है । इसी को पाल्कुरिकि सोम नाथ ने " लेट तेलुगु " अर्थात् " स्वच्छ तेलुगु " कहा जाता है । श्रीपाद लक्ष्मीपति ने " जानु तेलुगु " को " अच्च तेलुगु " [असली तेलुगु] कहते हुए - " देशी पद्धति में व्याप्त तेलुगु को ही जानु तेलुगु कहा है । [20] इस प्रकार नन्ने चोड ने तेलुगु में नवीन शब्द का प्रयोग करते हुए देशी पद्धति का प्रयोग किया । इसी देशी भाषा में पालकुरिकि सोमनाथ ने " बसव पुराण " लिखा ।

शिव कवियों के समय तक आन्ध्र में जन भाषा का आन्दोलन शुरू हो गया था । नन्ने चोड से लेकर सभी शिव कवियों ने देशी भाषा का प्रयोग किया । नन्नेचोड ने अपने " कुमार संभवम " में लिखा कि " देशी मार्गमुलनु देशी यमुलुग चोयवल " अर्थात् देशी मार्गों को देशी बनाना चाहिए । [21] शैवकविनेअपने धर्म प्रचार के लिए देशी पद्धति का ही अनुसरण किया । इस युग में द्विपद, उदाहरण, रगड, शतक, गद्य आदि देशी प्रक्रिया में रचे गए । जनता से समीप संपर्क रखने के लिए यही एक मार्ग है । तिक्कना और एर्रना ने ग्रान्थिक भाषा प्रयोग किया । श्रीनाथ ने अपने ग्रन्थों में संस्कृत, ग्रान्थिक और देशी भाषा का प्रयोग किया । श्रीनाथ ने लिखा है कि " मेरी कविता शुद्ध संस्कृत भी नहीं, शुद्ध देशी भी नहीं दोनों की प्रधानता है । [22]

20· कुमार संभव विमर्श - पृ· 167·

21· तेलुगु साहित्य समीक्षा - पृ· 135·

22· तेलुगु साहित्य समीक्षा - पृ· 432·

रायल युग में ग्रांथिक तेलुगु, संस्कृत और अच्च तेलुगु के रूप दिखाई देते हैं। यद्यपि रायल तेलुगु के हैं लेकिन संस्कृत का बहुत आदर किया । अच्च तेलुगु में कई काव्य रचे गए ।

इस प्रकार मध्यकालीन तेलुगु भाषा में देशी, मार्गी, जानु, अच्च तेलुगु में रचे गए प्रबंध, गेय, गीत, पद, द्विपद, शतक, वचन, उदाहरण, यक्षगान, दण्डकम, रगड, मंजरी कंद, आट्वेलदि रचे गए ।

4.9. तुलनात्मक अशीलन :-

हिन्दी और तेलुगु क्रमश: आर्य और द्राविड भाषा परिवारों से संबंध रखती हैं। भाषाओं की गति विधियाँ और उनके विकास पर ही भाषाओं के साहित्यिक रूप आधारित होते हैं। हिन्दी और तेलुगु भाषाओं में विकास में संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंशों का योगदान है। भाषा की प्रकृति, विकास, साहित्यिक भाषा में अवतरण, मानवीय रूपों का विकास आदि भाषाओं के इतिहास में भिन्न-भिन्न दशाओं से होकर उभरते और मिलते हैं। इनके सम्यक् विवेचन के आधार पर हिन्दी और तेलुगु भाषाओं में मिलनेवाली समानताएँ और असमानताएँ कुछ इस प्रकार है ।

हिन्दी	तेलुगु
1. हिन्दी विकास की दृष्टि से संस्कृत मूला है ।	1. तेलुगु को आरम्भिक स्थिति से हो संस्कृत से घना संबंध रहा है । प्रभाव की दृष्टि से तेलुगु पर संस्कृत का गुणात्मक प्रभाव है ।

2. आधुनिक काल में हिन्दी भाषा के क्षेत्र में खड़ी बोली आन्दोलन हुआ। परिणाम स्वरूप खड़ी बोली का विकास हुआ। इसके रूप मध्यकाल में भी दर्शनीय है।	2. तेलुगु भाषा क्षेत्र में भी इसी समय व्यवहारिक तेलुगु आन्दोलन हुआ परिणाम स्वरूप व्यावहारिक भाषा प्रयोग में आया।
3. जन भाषा का प्रयोग हिन्दी क्षेत्र में किया गया सिद्धनाथ और अन्य धर्म ग्रन्थ जन भाषा में लिखे गए।	3. मध्यकालीन तेलुगु साहित्य में अधिकांश साहित्य जन भाषा में ही रचा गया।
4. हिन्दी क्षेत्र में भाषा के कई रूप विकसित हैं जैसे अवधी, ब्रज सधुक्कड़ी आदि	4. तेलुगु प्रान्त में भी भाषागत विकास देखने को मिलता है देशी, मार्गी, जानु आदि।
5. पूर्व मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में लगभग सभी साहित्यिक रूप नही मिलते	5. पूर्व तेलुगु क्षेत्र में मध्य युग मे ही प्रबंध काव्य रचे गए है।

हिन्दी भाषा की दृष्टि से विकासात्मक युग ही है। लेकिन तेलुगु ने ग्यारहवी शती तक स्थिरता की प्राप्ति की जो बाद में कई शताब्दियों तक जीवित रही। हिन्दी में रीतिकाल से ही भाषा में स्थिरता दिखाई देती है जो खड़ी बोली तक आकर रुक गयी।

-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-

पंचम अध्याय

भक्ति चिंतन की दार्शनिक भूमिका : भक्ति साहित्य

-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-

भक्ति चिंतन की दार्शनिक भूमिका और भक्ति साहित्य

5.0. प्रस्तावना :-

भक्ति आन्दोलन भारतीय जीवन की एक महत्वपूर्ण घटना है। साधना के मार्ग से भक्ति का स्थान ऊँचा है। ईश्वर के अन्वेषण में निरंतर भक्ति सागर में प्रवाहित हो जाना आवश्यक है। भक्ति वह पथ है जिसमें विरक्त मानव को एक नई दिशा मिलती है। शुक्र से नम्भालवार तक, वाल्मिकी से तुलसी तक और शंकराचार्य से चैतन्य तक सभी महान आत्माओं ने स्वयं भक्ति पथ का अनुसरण किया और मानव को अनुसरण का मार्ग बतलाया तथा जीवन का लक्ष्य सूचित किया। प्रस्तुत अध्याय में भक्ति चिंतन की विवेचना और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि में भक्ति साहित्य के विकास को प्रकाशित करना लक्ष्य रहा है जो समस्त भारतीय भक्ति साहित्य के लिए उपजीव्य भी रहा है।

5·1· भक्ति शब्द की व्युत्पत्ति :-

भक्ति शब्द " भज् " धातु से संबद्ध है जिसका अर्थ है सेवा करना । इसमें " क्तिन " प्रत्यय लगाकर देखने से यह अपने अर्थ को ध्वनित करता है ।[1] भाष्यकारों ने उपासना के अर्थ में धातु की व्याख्या की । भगवान से प्रेम-भाव जन्य आचरण का नाम ही भक्ति है ।[2] डा· भारद्वाज ने रामानुज के दर्शन पर विचार करते हुए भक्ति को ईश्वर में हमारे समस्त शारीरिक और मानसिक क्रिया व्यापरों का केन्द्रीकरण कहा है ।[3]

5·2· परिभाषा :-

भक्ति की परिभाषा अनेक प्रकार से की गयी है । भक्ति के विषय में अधिक व्याख्या गीता, भागवत, शाण्डिल्य तथा नारद सूत्रों में मिलती है । उपनिषदों में ज्ञान आदि मार्गों में भक्ति को श्रेष्ट बताया गया है । समस्त मार्गों को त्याग कर भक्ति को अपनाना ही असली भक्ति है । रामायण और महाभारत में भी भक्ति को सर्वोच्च बताया गया है ।

वैदिक युग की ऋग्वेद की ऋचा 1/156/3 में " महस्तु ते विष्णो सुमितिम् भजामहे " में भजामहे शब्द उपसना के अर्थ में लिया गया है । इसी प्रकार यजुर्वेद की ऋचा 25/93 में " यस्य विश्व उपासते " में उपासना के शब्द को समानार्थी माना गया है ।[4] वैदिक साहित्य के अनुसार भक्ति के

1· पाणिनी धातु पाठ ध्यादि प्रकरण - संख्या 6221·
2· हिन्दी और तेलुगु वैष्णव भक्ति साहित्य - डा· के रामनाथन् - पृ· 77·
3· दि फिलासफि आफ रामानुज - पृ· 138·
4· विजेन्द्र स्नातक - राधा वल्लभ संप्रदाय - पृ· 7·

तीन पथ है - कर्म, ज्ञान और उपासना । वैष्णव मार्गी भक्ति साधना के विकास में तीनों का समापन हो गया है । [5] भक्ति मार्ग के प्रवर्तन की परंपरा का उल्लेख महाभारत के शान्तिपर्व के अन्तर्गत नारायणोपाख्यान में मिलता है । जिसमें वासुदेव की उपासना और भागवत धर्म लोक में कैसे चला है यह बतालया गया है । [6]

शाण्डिल्य भक्ति सूत्र के अनुसार भक्ति ईश्वर में परम अनुरक्ति है । इस अनुरक्ति में निस्वार्थता का भाव निहित है । इस सिद्वान्त में ईश्वर को परम प्रेम का लक्ष्य माना गया है । नारद भक्ति सूत्र के अनुसार भक्ति ईश्वर के प्रति परम प्रेम रूपा है - " सा त्वस्मिन परम प्रेम रूपा " नारद सूत्र 88· । ईश्वर के परम प्रेम का लक्ष्य है । नारद सूत्रों में भक्ति की चरम बिन्दु देखी जा सकती है ।

गीता में पूर्ण समार्पण और उत्कृष्ट प्रेम भक्ति के आधार तत्व माने गए है । भगवद्गीता की व्याख्या करते हुए तिलक ने बताया कि " कर्म योग में भक्ति का प्रेम पूरित मूल हो जाने से योगी भगवान को अत्यन्त प्रिय हो जाता है । निष्काम कर्म और भक्ति का समुच्चय गीता का प्रतिपाद्य प्रतीत होता है । [7] गीता में ज्ञान भक्ति को सर्वश्रेष्ट माना गया है । ज्ञानी भक्त की भक्ति का एक मात्र लक्ष्य ईश्वर होता है । अनन्य भक्ति द्वारा ईश्वर दृश्य हो जाता है । शंकर के अनुसार अनन्य भक्ति वह गहन

5· वैष्णव धर्म - परशुराम चतुर्वेदी - पृ· 10·

6· हिन्दी साहित्य का इतिहास - रामचन्द्र शुक्ल - पृ· 13·

7· गीता रहस्य - तिलक - पृ· 753·

प्रेम है जो ईश्वर के अतिरिक्त किसी अन्य लक्ष्य की ओर उन्मुख नहीं होता । शंकराचार्य कहते है कि गीता के ग्यारहवें अध्याय का अन्तिम श्लोक भक्ति की पूर्ण और समीचीन व्याख्या करता है । जो अर्जुन को कृष्ण का अन्तिम संदेश था । सब धर्मों को परित्याग कर मेरी शरण में आ ।[8] भक्ति की इसी लोकोत्तर स्थापना के लिए श्रीमद् भागवद् की रचना हुई ।[9] भागवद्-कार के अनुसार भक्ति मन के सत्व से अनुप्राणित एवं स्वभाविक वृत्ति है । यही परम धर्म है ।

श्रीरामानुजाचार्य ने वेदान्त की व्याख्या उपासना के रूप में की। उनके अनुसार भक्ति भगवान की एक भाव से अविच्छिन्न स्मृति है । भक्ति बुद्धि का प्रशिक्षण और आत्म शक्ति का अनुशासन है । यह जीवन का एक शाश्वत भाव है । वे भक्ति को ज्ञान का सर्व श्रेष्ठ अंग मानते है । शंकरा - चार्य " विवेक चूड़ा मणि " में भक्ति को मोक्ष प्राप्ति में सहायक तत्व मानते है । आत्मा का अनुसंधान ही परम तत्व की खोज है ।

भक्ति के अन्य रूप ईश्वर की शक्ति का मनन, ईश्वर की अनवरत स्मृति, ईश्वर के विषय में हर क्षण चर्चा करना, उनके यश के कीर्तन तथा प्रत्येक कर्म में भागवद् सेवा भाव पर निर्भर रहता है । भक्ति के कुछ रूप

---

8. श्लोक : अध्येष्यते च इम धर्म्यं संवादमावयो :
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्ट : स्यामिति मे मति ।। 70 ।। गीता
श्रद्धावानन सूयश्च श्रृणुयादपि यो नरः : ।
सोऽपि मुक्त: शुभांल्लो कान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्म णामोना ।71।। गीता

9. सूर और उनका साहित्य - हर वंशलाल शर्मा - पृ. 334.

शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा मधुर है। इन सभी रूपों का वर्णन हिन्दी साहित्य में हुआ है। तेलुगु भक्ति साहित्य में भी इन रूपों को देखा जा सकता है।

5·3· भक्ति के प्रकार :-

श्रीमद् भागवत में नवधा भक्ति का निरूपण मिलता है।-

" श्रवणं, कीर्तनं, विष्णो, स्मरणं पाद सेवनं
अर्चनं वंदनं, दास्यं सख्यमात्म निवेदनं ।।

भागवत् 7-5-23·

जीव गोस्वामी ने " भक्ति के संदर्भ " में भक्ति के अनेक प्रकारों का उल्लेख किया है। शुद्धान्तरंग, ज्ञान, मिश्र, वैधी, साधनात्मिकता आदि। अन्त में कहा गया है कि इन सभी वर्गों को दो ही रूपों में देखा जा सकता है - अंतरंग भक्त प्रत्येक वस्तु में ईश्वर के अस्तित्व का अनुभव करता है। ज्ञान और मिश्र भक्ति को प्राप्त करना चाहता है। वैधी भक्ति शास्त्र मर्यादापूर्ण आचरण में विश्वास करती है।

दक्षिण के भक्त संत भक्ति के और रूपों की चर्चा करते है। उनमें प्रमुख है " प्रपत्ति "। प्रपत्ति की व्याख्या कुछ विद्वानों ने भक्ति से बिल्कुल पृथक माना है। ईश्वर की भक्ति के दो मार्ग हैं --

1· भक्त अपनी समस्त आत्म शक्ति से ईश्वर से प्रेम करना ।

2· प्रपत्ति स्वयं ईश्वर से प्राप्त भक्ति से ईश्वर को प्रेम करना ।

प्रपत्ति में भक्त अपनी इच्छा को ईश्वरेच्छा पर समर्पित कर देता है । संपूर्ण आत्मा का समर्पण इसका आधार है । वस्तुत: भक्ति और भक्त में कोई अन्तर नहीं है ।

5·4· भक्ति तत्व विश्लेषण :-

भक्ति और प्रेम का भक्ति क्षेत्र में एक ही अर्थ है । नारद पांच रात्र में भक्ति के लिए प्रेम शब्द का प्रयोग मिलता है ।[10] विष्णु पुराण में " प्रीति " शब्द का प्रयोग मिलता है । बिन पूजा सेवा उपासना के कोई भक्ति नहीं हो सकती और बिन प्रेम के आध्यात्मिक आनन्द की उपलब्धि नहीं हो सकती । नारद सूत्रों की व्याख्या इस प्रकार है - " समस्त कर्मों को ईश्वर को समर्पण और ईश्वर के विस्मरण में परम दु:ख का आकुलतापूर्ण अनुभव ही प्रेम है ।[11]

निष्ठा की अविच्छिन्नता रुचि में परिवर्तित होती है । रुचि के बाद आसक्ति ईश्वरीय प्रेम या माधुर्य से प्रेरित होती है । इनमे प्रथम गुण माहात्म्य शक्ति कह लाती है । शंकराचार्य ने अपनी " शिवानन्द लहरी " में लिखा है कि जो संबंध अंकोल वृत्ति का बीज से, चुम्बक का सूई से, पति का पत्नी से, वृक्ष का बेली से और समुद्र की नदी से है वही संबंध भगवान और भक्त का है । ईश्वरीय प्रेम की तीन स्थितियाँ इससे स्पष्ट हुई है ।

10· अनन्य ममता विष्णौ ममता प्रेम संगता - नारद पांच रात्र

11· नारदस्तुदर्पिता खिलाचरिता तद् विस्मरणे परम व्याकुलेति - नारद भक्ति सूत्र - 16·

सभी सन्तों ने उच्च प्रेम की याचना की है। चैतन्य ईश्वर और प्रेम में अभेद बताते हुए कहते है कि मुझे अहेतुक प्रेम चाहिए " इसी प्रकार का स्वर तुलसी दास में मिलता है" --

" चहों न सुगति सुमति, संपति
कुछ रिधि सिधि विपुल बडाई।
हेतु रहित अनुराग समपद बढ़ो अनुदिन अधि काई।।[12]

भक्ति धर्म की उच्चतम अभिव्यक्ति है। इसका मूल मानव मन में है। यह ईश्वरीय संबंध की घनिष्ठता के साथ बढ़ती है। तन्मयता इसकी अन्तिम परिणति है।

5·5· भक्ति का दार्शनिक पक्ष :-

भक्ति और दर्शन के संबंध के बारे में आचार्य राममूर्ति शर्मा के शब्दों में, भाव साधना के द्वारा भगवान के साथ पूर्ण रूप से अनुरक्त हो जाना भक्ति है और जिस ज्ञानमय साधना के द्वारा परमेश्वर के स्वरूप को समझा जाता है वह दर्शन है। भक्ति अर्थात् " परानुरक्तिश्वरे " रूप में किया जाता है। जबकि दर्शन को " दृश्यतेनेन " इतिदर्शनम् " (जिसे देखा जाए वह दर्शन है) कह कर परिभाषित किया जाता है। कहा जा सकता है कि उपनिषदों के ज्ञान मार्ग के सारल्य से ही भक्ति का जन्म हुआ है।[13]

12· विनय पत्रिका - छन्द
13· संस्कृत कृष्ण काव्य और सूर सागर - 52·

5·5·1· अद्वैतवाद :-

शंकराचार्य का मुख्य उद्देश्य वैदिक धर्म का पुनरुद्धार था । उन्होंने अद्वैतवाद का निरूपण किया है । भक्ति के संबंध में कोई विशेष योगदान नही है । यद्यपि उसमें ब्रह्म भी व्यावहारिक सगुण सत्ता को भी स्वीकारा परन्तु भक्ति के दृढ़ आधार नही था ।[14] जिस प्रस्तानत्रई के आधार पर अद्वैत की स्थापना की गई थी उसी के आधार पर एक नवीन दृष्टि से भक्ति दर्शन की पृष्ठ भूमि प्रस्तुत की है ।

श्री शंकराचार्य के अनुसार ब्रह्म ही एक मात्र सत्ता है । वह निर्गुण विशेष और सजातीय, विजतीय भेदों से अतीत है । जीव की अलग सत्ता नहीं है । शंकर के अद्वैत के अनुसार निरूपाधिजीव ब्रह्म ही है । जगत को भी ब्रह्म से अद्वैत माना गया है । जगत की प्रतीति अविद्यमान जन्य है जो मिथ्या है ।[15]

5·5·2· शुद्धाद्वैत दर्शन :-

वल्लभाचार्य जी का " संप्रदाय शुद्धाद्वैतवाद " है । शुद्धाद्वैत के अनुसार ब्रह्म अद्वैत है । माया रहित होने के कारण शुद्ध तथा व्यतिरेकी धर्म गुणों का आश्रय है । ब्रह्म से जगत का आविर्भाव होता है किन्तु ब्रह्म

14· हिन्दी साहित्य का इतिहास – रामचन्द्र शुक्ल – पृ· 4·

15· हिन्दी और तेलुगु वैष्णव भक्ति साहित्य तुलनात्मक अध्ययन – डा· के रामनाथम् – पृ· 87·

अविकृत ही रहता है । इसी कारण इस संप्रदाय का नाम " शुद्धाद्वैत " कहलाया है । वल्लभ के इस दर्शन के अनुसार ब्रह्म सगुण भी है निर्गुण भी । वल्लभ दर्शन के अनुसार ब्रह्म एवं जगत में भेद है । ब्रह्म के चिदंश से जीव की उत्पत्ति होती है । केवल भगवान की इच्छा से जीव की उत्पत्ति होती है । ब्रह्म की शक्ति ही माया है । ब्रह्म के तीन रूप हैं -- पुरुषोत्तम, अंतर्यामी और अक्षर ब्रह्म । अक्षर ब्रह्म से अनेक जीव और जगत निकलते हैं । जीव के भी तीन रूप हैं - शुद्ध, संसारी और मुक्त । मुक्ति में जीव और ब्रह्म ऐक्य हो जाते हैं । इसकी साधना " पुष्टि " है । मर्यादा और पुष्टि उसकी मुक्ति साधना के प्रतीक हैं । " पुष्टि " भगवान की कृपा ही है । " पुष्टि " चार प्रकार हैं - प्रवाह पुष्टि, मर्यादा पुष्टि, पुष्टि-पुष्टि और शुद्ध पुष्टि । [16] ज्ञान व कर्म मार्गों की कठिनता के कारण भक्ति मार्ग सुलभ है । वल्लभ दर्शन में ब्रह्म, जीव, जगत तथा माया के ज्ञानवादी दृष्टिकोण का निरूपण हुआ इस दृष्टि से ही मुक्ति संभव है ।

5·5·3· विशिष्टाद्वैत दर्शन :-

रामानुजाचार्य का दार्शनिक सिद्धान्त " विशिष्टाद्वैतवाद " है । रामानुज के अनुसार जीव एवं जगत ब्रह्म के शरीर, प्रकार एवं विशेषण कहे गए हैं । जीव, चित्त एवं जड़ अचित है । चित्त एवं अचित से विशिष्ट ब्रह्म ही रामानुज दर्शन का " विशिष्टाद्वैत दर्शन " है । इस दर्शन के अनुसार जीव तथा जगत की स्वतंत्र सत्ता स्वीकार की गई है । तथापि परमेश्वर

16· अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों का तुलनात्मक अध्ययन - पृ· 167·

अंतर्यामी रूप से जीव और जगत में स्थित रहता है । रामानुज के अनुसार भक्ति सर्वश्रेष्ट साधन है । भक्ति की भावात्मक साधना से भगवान को अपने सम्मुख भक्त साक्षात् देख सकता है । इस साक्षातकार के पश्चात् संतप्त भवसागर में जीव नही आना पडता । [17] मोक्ष के संबंध में श्री रामानुजाचार्य ने विष्णुलोक, ब्रह्म लोक तथा वैकुण्ठ शब्दों का प्रयोग किया है । जीव यदि इस लोक में पहुँच जाता है तो उसे " सालोक्य भक्ति " । इस दर्शन में लक्ष्मी नारायण को ही इष्ट देव माना गया है । वैष्णव दर्शन के सिद्धान्तों में रामानुज का दार्शनिक सिद्धान्त सर्वाधिक महत्वपूर्ण है ।

5·5·4· द्वैत दर्शन :-

मध्वाचार्य जी द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त " द्वैतवाद " कहलाता है । रामानन्द श्री संप्रदाय में प्रतिष्ठित राम को लक्ष्मीनारायण से अलग कर के स्वतंत्र रूप इस दर्शन में ही दिया गया है । इस दर्शन में जीव और जगत की स्वतंत्रता स्वीकार की गई है । परमात्मा अंतर्यामी रूप से जीव और जगत में स्थित रहता है । रामानन्द के अनुसार भक्ति स्वं सर्व श्रेष्ठ साधन है । साधना के द्वारा ही भगवान तक पहुँच सकते है । रामानन्द ने शैव और शाक्त पंथो में प्रचलित तंत्र मंत्रादि को रामोपासना में स्थान दिया है । रामानन्द संप्रदाय में ही तुलसीदास का आविर्भाव हुआ है । [18] आगे इस सप्रदाय में मधुर भक्ति काभीसमावेश हो गया है । द्वैत संप्रदाय श्री संप्रदाय से मिलता जुलता है । केवल ब्रह्म संघटन पूजा के उपकरणों और उपास्य देव की रूप रेखा में अंतर स्पष्ट किया है ।

17· हिन्दी और तेलुगु वैष्णव भक्ति साहित्य – के· रामनाथन् – पृ· 91·

18· – वही – पृ· 95·

5·5·5· द्वैताद्वैत दर्शन :-

निम्बार्काचार्य जी द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त " द्वैताद्वैत वाद " है । इस दर्शन में जीव और ब्रह्म के बीच अवस्था भेद से भिन्नता और अभिन्नता दोनो बनी रहती है । यह बहुत प्राचीन है ।[19] मुक्त दशा मे अभिन्नता ही स्थापित हो जाती है । संसार दशा में भिन्नता बनी रहती है ।

इस दर्शन में जीव का संबंध चिंदश से है । जीव माया से आवृत होने के कारण जीव का धर्म भूत ज्ञान व संकुचित हो जाता है । अपने सच्चे स्वरूप का ज्ञान भगवान की कृपा से ही प्राप्त हो जाता है । जीव दो प्रकार का होता है । मुमुक्षु और भुमुक्ष । मुमुक्ष मुक्ति की इच्छा से क्रियाशील रहता है । भुमुक्ष विषयासक्ति से प्रवृत रहता है । अप्राकृत जगत वह है जहाँ प्राकृतिक नियम पंगु हो जाते है । काल जगत के परिणामों का विधायक है । जगत का नियम काल के द्वारा होता है । इस दर्शन में ब्रह्म के सगुण रूप की कल्पना प्राप्त होती है । नारायण समस्त गोचर जगत में व्याप्त है । प्रपत्ति भगवान का गुण है । प्रपत्ति से भगवत् साक्षात्कार होता है । साधना में भगवान कृष्ण की चरण सेवा ही जीव के उद्वार का मार्ग है । इस दर्शन का प्रसार उत्तर भारत में ही रहा है ।

19· भागवत् संप्रदाय - बलदेव उपादाय - पृ· 334 - 339·

5·5·6· राधावल्लभ संप्रदाय :-

हितहरिवंश जी ने भक्ति के मूल तत्व तथा उसके आलंबन, आश्रयादि उपकरणों का सूक्ष्म विवेचन इस संप्रदाय में किया है। भक्तितत्वों का संक्षिप्त विवेचन ही राधावल्लभ दर्शन कहा जा सकता है।

भक्ति का परम लक्ष्य नित्य विहार दर्शन ही है। राधा कृष्ण के विहार से जो आनन्द उत्पन्न होता है वही रस है जो प्रेम की अस्वाद्य अवस्था है। राधा की महत्ता होने के कारण राधा-प्रेम ही इस संप्रदाय का मूल आधार है। प्रेम भक्ति में मर्यादा की आवश्यकता नहीं रहती। श्री हित हरिवंश जी को प्रेम मर्यादा का आरोप करना उचित नही लगा।[20] इस संप्रदाय में ब्रह्म, जीव, जगत और माया के विवेचन के द्वारा राधाकृष्ण की भक्ति की स्थापना नहीं की गई किन्तु स्वतंत्र रूप से राधा कृष्ण की प्रतिष्ठा की गई। इस संप्रदाय में राधा आराध्या है। इसे कृष्ण भी साध्य मानते है। राधा को परम तत्व के रूप में ग्रहण किया है। श्री कृष्ण नित्य विहारी पुरूष है। राधा उनकी परम आह्लादिनी शक्ति है। जीव रूपी सखियाँ उनकी सहचरियाँ है। इस संप्रदाय में श्रीकृष्ण को दार्शनिक महत्व नहीं दिया गया। वे एक आदर्श प्रेम के रूप है। वे उपास्य है। राधा के माध्यम से उनकी उपासना होती है।

20· हिन्दी और तेलुगु वैष्णव भक्ति साहित्य - डा· के·रामनाथन्
पृ· - 106·

5.5.7. चैतन्य संप्रदाय :-

चैतन्य दर्शन वास्तव में मध्वाचार्य के द्वैत सिद्धान्त की ही गौडीय शाखा है फिर भी चैतन्यमत द्वैत दर्शन नहीं है । इसका संबंध राधा वल्लभ संप्रदाय से भी मिलता जुलता है । इसका संबंध वृन्दावन से है । चैतन्य प्रभु ने भक्ति की दार्शनिक व्याख्या की और भक्ति का प्रचार भी किया । रूप, सनातन और जीव गोस्वामियों ने भक्ति रस के अद्वितीय शास्त्र की रचना की । चैतन्य संप्रदाय में श्रीकृष्ण को परमतत्व माना गया है । इसकी अनन्त शक्तियां है । श्री कृष्ण परमाराध्य है। ब्रज की गोपियों के द्वारा की गई उपासना भक्तों के लिए अनुकरणीय है । श्री कृष्ण अपने तीनों रूपोंमेंप्रकाशित करते हैं स्वयंरूप, तदेकात्म रूप और आवेश रूप । स्वयं रूप अपने आप में आविर्भूत होता है । शक्ति के भी तीन रूप है - अंत रंग, तटस्थ और बहिरंग । अंतरंग शक्ति भगवद्‌रूपिणी ही होती हैं । ये तीनों ही ब्रह्म की पराशक्ति के विविध रूप हैं। इस दर्शन में जगत सत्य है । यह सत्य संकल्प भगवान की बहिरंग शक्ति का विलास है । इस संप्रदाय में भक्ति ही परम साधन है और साध्य भी । चित्त की शुद्धि ज्ञान है । इसमें रागात्मकता तथा मर्यादा दोनो प्रकार की हो सकती है । इस दर्शन में भक्ति का चरम आदर्श ब्रज की गोपिकाएँ ही है ।

5.5.8. शैव दर्शन :-

शैव दर्शन की प्रमुख बात शिव का पद है । शैव दर्शन में शिव को परम पुरूष या परब्रह्म माना जाता है । इस दर्शन के अनुसार शिव ही स्रष्टा है वही विश्व के आदि कारण हैं । उन्हीं की महिमा का चारों वेदों में गान किया जाता है । वही दार्शनिकों के ब्रह्मा हैं । शिव ही आत्मा है ।

शिव ही शाश्वत और असीम है । [21] शिव जीवात्मा के रूप में व्याप्त है । वह एक आदि पुरूष है और परम सत्य है । वह सर्वत्र और सर्व स्थित है । शिव ही चराचर के स्वामि है । वह सभी प्राणियों में आत्मा के रूप में निवास करता है । वह एक स्वयं भू है जो विश्व का सृजन, पालन और संहार करने के कारण तीनों रूप धारण करते है ।

" श्वेताश्वतर " उपनिषद में शिव का जो दार्शनिक स्वरूप है वही समस्त शैव दर्शन का बीज है । [22] इस उपनिषद के अनुसार भी शिव को पुरूष रूप में देखकर उसे परम सत्य और परम स्रष्टा माना गया है । जो अपनी माया के द्वारा सृष्टि का कार्य संपन्न करता है । सृष्टि की अभि - व्यक्ति में माया सक्रिय कार्य करती है । पुरूष केवल प्रेरक रहता है । जीवात्मा को अमर माना जाता है । परमात्मा में विलीन हो जाने पर ही उसका मोक्ष हो जाता है ।

उपनिषद काल के बाद इन सिद्धान्तों का कुछ विकास हुआ । इसमें अद्वैत रूप का दर्शन होता है । परब्रह्म को ही एक मात्र सत्य माना जाता है और जीवात्मा सार रूप में उससे अभिन्न है । शक्ति, माया और जगत कुछ नहीं है । केवल पर ब्रह्म की ही रचना है इसके पश्चात पुराण युग में " आगम " ग्रन्थ की रचना हुई । वास्तव में यही शैव धर्म का प्रथम सैद्धान्तिक ग्रन्थ है । " आगम " में शिव को सर्व श्रेष्ट सत्य माना गया है । वह अनादि, अकारण और स्वत: संपूर्ण है । वह सर्वत्र और सर्वकर्ता है ।

21· शैव मत - डा· यदुवंशी - पृ· 97·

22· - वही - पृ· 167·

वह अपनी शक्ति के द्वारा जो उनकी साधना है, सृष्टि का कार्य संपन्न करते है । [23] शक्ति शिव की समवर्तिनी है । वास्तव में उनसे अभिन्न है । इस शक्ति का शिव पत्नी उमा अथवा पार्वती से तादात्म्य किया गया है । शिव विश्व से परे हैं । यह अद्वैत वाद से भिन्न है । अद्वैतवाद में शिव और विश्व अलग नहीं है । [24]

शैव दर्शन के अनुसार जीवात्मा का असंख्य रूप है । वह शाश्वत है । जीव शिव का ही अंश है । उससे सर्वथा अभिन्न नहीं है । शिव के द्वारा ही जीवात्मा चेतनायुक्त होता है । " अविद्या ", " काम ", और " माया " के बन्धन में फंसा रहता है । अन्त में परम शिव के अनुग्रह से ही फिर उनकी बन्धन मुक्ति होती । शंकाचार्य का अद्वैत भी यही बताता है ।

दक्षिण में अनेक संत और विद्वान शैव धर्म को प्रधानता देकर उसका प्रचार करने लगे । इनमें वीर शैव प्रमुख है ।

5·5·9· कश्मीरी शैव दर्शन व प्रत्यभिज्ञ दर्शन :-

अति प्राचीन काल से ही कश्मीर उत्तर भारत का सांस्कृतिक केन्द्र रहा है । आठवीं शती तक ही कश्मीर में शैव आगमों की बड़ी प्रतिष्ठा थी । कश्मीर शैव दर्शन की एक नई विचार धारा का प्रादुर्भाव हुआ जिसके प्रवर्तक वसुगुप्त आगमिक सिद्धान्तों की अधिक शुद्धाद्वैत वादी ढंग पर व्याख्या

23· शैव मत - डा· यदुवंशी - पृ· 168·

24· - वही -

किया है। इस प्रकार वसुगुप्तने अद्वैतवादी शैव दर्शन की नींव डाली जो कश्मीरी शैव दर्शन कहलाया। कश्मीरी शैव दर्शन के लिए " प्रत्याभिज्ञ " शब्द का प्रयोग कर इस दर्शन को " प्रत्याभिज्ञ दर्शन " कहा गया।[25]

कश्मीरी शैव दर्शन मूलतः शक्ति अथवा प्रकृति संबंधी है। शैव दर्शन में शक्ति को लगभग उसी प्रकार शिव की समवर्तिनी माना था जिस प्रकार सांख्य में प्रकृति को। परन्तु कश्मीरी शैव दर्शन में शक्ति को परम शिव अथवा परम पुरुष की अभिव्यक्ति मात्र माना गया है। उनका निवास भी परम शिव में ही है, जिसे परम शिव की सृजन शक्ति कह सकते है। इसी कारण वह परम शिव से अलग है। इस प्रकार शैव दर्शन का द्वैत सिद्धान्त कश्मीरी शैव दर्शन में अद्वैत में परिणत हो गया। कश्मीरी शैव दर्शन में शक्ति के पाँच मूल रूप हैं - 1. चित्त शक्ति 2. आनन्द शक्ति 3. इच्छा शक्ति 4. ज्ञान शक्ति 5. क्रिया शक्ति। शक्ति जब अपना अन्तिम रूप धारण करती है तब सृष्टि का कार्य प्रारंभ हो जाता है। जिसे " आभास " कहते हैं।[26] कश्मीरी शैव दर्शन में विश्व की अनेक रूपता अर्थात् माया को सत् माना गया है क्योंकि जिस किसी वस्तु को परम शिव से संबंध है वह असत् नहीं हो सकती। जीवात्मा सारभाव से परम शिव के तिरोभूत हो जाने की शक्ति, भौतिक विश्व की सृष्टि से ठीक पहले परम शिव इस अवस्था को प्राप्त होते हैं। इस स्थिति में शिव अपने आपको काल, नियति, राग, विद्या और कला के पंच विध बंधन में सीमित कर लेते है। इसके साथ परम शिव एक से अनेक हो

---

25. शैव मत - यदुवंशी - पृ. 171.
26. - वही - पृ. 173.

जाते हैं । इस प्रकार असंख्य जीवात्माओं का प्रादुर्भाव होता है । जीवात्मा जन्म मरण की अनेक स्थितियों में से होकर अन्त में सद्ज्ञान प्राप्त कर अपने सच्चे स्वरूप में बंधन मुक्त होकर परम शिव में लीन हो जाता है । यह वेदान्त के ब्रह्म-जीव तादात्म्य के निकट है ।

5·5·10· वीर शैव धर्म का दार्शनिक रूप :-

वीर शैव शैव धर्म का ही भयावह रूप है । वीर शैव भी परम शिव को ही परम सत्य मानते हैं । शिव नित्य है । सर्व स्वतंत्र है । सृष्टि, स्थिरता और लय से परे है । वे अवर्णनीय और अनिर्वचनीय है । वीर शैव दर्शन में जीव को " अंग " कहते हैं । यह " अंग " सदा शिव द्वारा उत्पन्न होता है । यह " अंग " सदा शिव का ही एक स्वरूप है । इसका दूसरा रूप " लिंग " है । शंकर के माया जाल में फस कर " अंग " भक्ति के सहारे मुक्ति पाते हैं । वीर शैव भी शक्ति की सत्ता में विश्वास रखते हैं । शक्ति के द्वारा ही जगत की सृष्टि होती है । शक्ति दो रूपों में देखी जा सकती है - 1· भक्ति शक्ति 2· कला शक्ति । लिंगायत धर्म में शक्ति-विशिष्टा द्वैत भी कहते है ।[27] वीर शैव धर्म में जीव मूलतः शिव रूप ही है । लेकिन अज्ञान रूपी आवरण में बंध रहता है । शिव की कठोर साधना के द्वारा लिंग तत्व अर्थात् मुक्ति प्राप्त करता है ।

27· हिन्दी और कन्नड भक्ति आन्दोलन - तुलनात्मक अध्ययन - पृ· 104·

5.5.11. दक्षिण के वैष्णव भक्त आलवार :-

मध्यकाल के भक्ति आन्दोलन में दक्षिण में प्रमुखत: वैष्णव धर्म के प्रचार में आलवार संतों का नाम उल्लेखनीय है । यद्यपि दक्षिण भारत में भक्ति परंपरा ईसवी शती के कुछ आगे पीछे हुई । इनमें आलवार भक्तों की परंपरा किसी पूर्ववर्ति लोक चिंतन धारा की विकसित अवस्था मानी जा सकती है ।

" आलवार " अर्थात् भागवत् भक्ति में लीन रहने वाले भक्त । " आलवार " का अर्थ " मग्न " माना जाता है ।[28] अपनी स्वाभाविक सरलता, मृदुलता और विनम्रता के लिए आलवार विख्यात है । आलवारों के पदों का सर्व प्रथम संग्रह " प्रबन्धम् " है जिसका संपादन नवीं शती में नाथ मनि ने किया था । इन आलवारों ने वैष्णव भक्ति का प्रचार व प्रसार किया । प्रमुख आलवार --

1. पोयगै आलवार
2. भूततालवार
3. पेआलवार
4. तिरुमलिसई आलवार
5. नम्मालवार (सठकोप)
6. मधुर आलवार

---

28. भक्ति आन्दोलन का अध्ययन - रति भानुसिंह नाहर - पृ. 164

7· कुल शेखर आलवार
8· पेरि आलवार
9· आंडाल आलवार
10· तोड डिप्पोडी आलवार
11· तिरुप्पन आलवार
12· तिरुमंगई आलवार

देश की भीषण परिस्थितियों में भक्ति की एक नयी धारा का उदय इन आलवारो के द्वारा हुआ । आलवार भक्ति में भजन की प्रमुखता है । भगवान विष्णु के लीला गान द्वारा ही जीव मुक्ति को प्राप्त कर सकता है । इनका सिद्धान्त परंपरागत वैष्णव धर्म के अनुकूल ही था ।[29] क्रमेण आलवार वैष्णव धर्म भागवत धर्म में विलीन हो गया । आलवारों के " प्रबन्धम् " के प्रभाव को उत्तर में वैष्णवाचार्यों में पहुँचाया ।

5·5·12· वैष्णव दर्शन :-

वैष्णव संप्रदाय का संबंध भगवान विष्णु से है । वैष्णव भक्ति की वैष्णवानुमोदित भावना का आविर्भाव आर्यों के आध्यात्मिक एवं दार्शनिक विचारों मे अधिक हुआ । श्रद्धा व उपासना से ही प्रारम्भिक भक्ति विकसित होती हुई क्रमशः उपास्य भगवान विष्णु के ऐश्वर्य के मूल तत्व में भाग लेने या व्यक्त करने वाले अधिक भाव में परिणत हुई ।[30]

29· भारतीय संस्कृति और कला - पृ· 524 वाचस्पति गैरोला
30· वैष्णव धर्म - परशुराम चतुर्वेदी - पृ· 12·

संहिता काल में विष्णु सर्व प्रथम एक साधारण देवता ही थे। ऋग्वेद में वे एक " आदित्य " मात्र समझे जाते थे। विष्णु पहले वामन रूप में दिखलाई पडते है। वैष्णव संप्रदाय में उपास्य देव विष्णु के लिए कई नाम है - हरि, केशव, वासुदेव, वृष्णीपति, कृष्णा आदि [31] इसके अतिरिक्त एक दूसरा नाम " नारायण " है। " नारायण ", " सृष्टि " की रचना करने वाले है। वैष्णव संप्रदाय में दशावतारों की प्रमुखता है। इनमें राम और कृष्णावतारों को अधिक प्रमुखता मिली। वैष्णव संप्रदाय क्रमशः भागवत में परिणत हो गया।

वैष्णव संप्रदाय का समन्वयात्मक रूप निश्चित हो जाने पर जब उसके अनेक दार्शनिक संप्रदायों का निर्माण होने लगा तब उक्त भावनाएँ एक एक कर नए अर्थ में दार्शनिक महत्व रखने लगी। इस प्रकार वैष्णव धर्म का दार्शनिक स्वरूप रामानुजाचार्य द्वारा प्रतिपादित श्री संप्रदाय द्वारा प्रकट होकर क्रमशः द्वैतवाद, शुद्धा द्वैत, द्वैताद्वैत आदि संप्रदायों से विकसित होता हुआ चैतन्य संप्रदाय में प्रेम भक्ति का रूप धारण कर लिया। प्रेम लक्षण भक्ति की विविध वृत्तियों का विकास सनक, पुष्टि, गौडीय संप्रदाय द्वारा हुआ। वैदिक देवता विष्णु थे दूसरे दार्शनिक देवता नारायण है। वैष्णव भक्ति में नवधा भक्ति की प्रधानता है। वैष्णव दर्शन में ब्रह्म नारायण है। जीव की स्वतंत्र सत्ता है। नारायण अंतर्यामी है। वह अदृश्य रूप से जीव और जगत में व्याप्त रहता है। जीव को इसे भव सागर (माया) से मुक्ति पाने के लिए भावात्मक साधना से नारायण की अनुकम्पा प्राप्त कर सकता है। भक्ति के द्वारा जीव भव सागर पार कर सकता है। नारायण जपन या भजन ही उत्तम साधन है। वैष्णव दर्शन में मोक्ष के द्वार है -

---

31. वैष्णव धर्म - परशुराम चतुर्वेदी - पृ. 13.

वैकुण्ठ और विष्णुलोक है । शक्ति के रूप में लक्ष्मी की प्रामुख्यता है । वैष्णवों के इष्ट देव लक्ष्मी नारायण हैं । नारायण के सगुण रूप को ही साधना में स्वीकार किया गया है । वीर वैष्णव दर्शन में भी नारायण को उपास्य के रूप में स्वीकार किया गया है ।

5.5.13. हरिहर दर्शन :-

वास्तव में स्मार्त संप्रदाय में ही हरिहर की आराधना होती थी । दार्शनिक दृष्टि से हरिहर भगवान सर्वथा एक है । उनकी चिन्मय लीला से ही कहीं हर के रूप में कहीं हरि के रूप में उपासक को दर्शन देते हैं । हरिहर भगवान भावात्मक व काल्पनिक देवता ही नहीं हैं बल्कि एक धार्मिक - आध्यात्मिक समन्वयात्मक मूर्ति हैं । हरिहर की आराधना आज भी होती है ।

हरिहर दर्शन सांप्रदायिकता से मुक्त है . प्रत्येक पुराण ने अपने इष्ट देव की महत्ता की व्याख्या करते हुए भी शिव के शव की अभेदता का निरूपण किया है ।

" हरिहरयोः प्रकृतिरेका प्रत्यय भेदेन रूप भेदोरम् ।
एकस्येव नटस्यानेक विधा भूमिका भेदात् " 32

शिव पुराण - 662

---

32. सूर और पोतना के काव्य में भक्ति - डा.सी.एच.रामुलु - पृ.19.

हरि और हर में कोई भेद नहीं है । प्रत्यय में ही रूप का भेद होता है । नाटक अभिनेता विभिन्न रूप धारण करता है । पर वस्तुत: वह जो है वही रहता है । पद्मपुराण में भगवान रामचन्द्र भगवान शिव से कहते है - " आप शिव मेरे हृदय में रहते हैं और मैं आपके हृदय में हूँ । हम दोनों में कुछ अन्तर नहीं है । मूढ़ तथा दुर्बुद्धि लोग ही हममें भेद मानते है । वस्तुत: हम दोनों एक रूप है । हममें भेद भावना करनेवाले मनुष्य हजार कल्पों तक कुम्भी पाकादि नरकों में यंत्रणा भोगते है । जो धार्मिक पुरूष व भक्त है वे सदा ही मेरे भक्त है । 33

श्रीमद् भागवत् पुराण में दक्ष से पर विष्णु भी हरिहर तत्व को निरूपित करते है, विष्णु पुराण में महर्षि पराशर भगवान विष्णु की स्तुति करते हुए शिव केशव के अनेक रूप के दर्शन करते हैं ।

इस प्रकार सर्व वेदों के समन्वय स्वरूप तत्व में हरिहर तत्व का सुदृष्ट दर्शन के निर्माण के साथ भक्ति तत्व की परंपरा चलती है ।

33· ममास्ति हृदये शर्वो भवतो हृदयेत्वयम् ।
आवयोरन्तरं नास्ति मूढ़ा पश्यन्ति दुर्धिय: ।।
ये भेद विदधत्यद्धा आवयोरेक रूपयो: ।
कुंभी पाकेषु पश्यन्ते नरा: कल्प सहस्रश: ।
ये त्वद्भक्ता: सदा अआसंस्ते मद् भक्ता धर्म सयुता:
मद् भक्ता अपि यूयस्य भक्त्या नतिकरा :

पद्मपुराण - पाताका 28/21/23

5·5·14· सूफी दर्शन और भारतीय साहित्य :-

सूफी को इस्लाम का प्रधान अंग स्वीकार किया जाता है । लेकिन यह स्मरण रखना चाहिए कि सूफी तत्व इस्लाम धर्म की शरीयत (कर्म-कांड) की वैसी ही प्रतिक्रिया का फल है जो वैदिक कर्मकांड की प्रतिक्रिया वैष्णव धर्म में । वस्तुत: सूफी दर्शन पर इस्लाम की गुह्य विद्या, आर्यों का अद्वैतवाद एवं विशिष्टाद्वैत का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है । ईश्वर द्वारा पुरुष में व्यक्तित्व की समाप्ति और ईश्वर की उदबुद्धि का नाम तसव्वुफ है । सूफियों के पूर्व पुरुष नबी ही हैं जो सहजानन्द के उपासक थे और आत्मशुद्धि के लिए अनेक प्रकार के उपायों का आश्रय लेकर प्रेम का राग आलाप करते है । भारत में सूफीमत के चार संप्रदाय प्रसिद्ध है -- कादरी, सुहरावर्दी, नक्शबंधी और चिश्ती ।[34] इनमें चिश्तियाँ संप्रदाय प्रसिद्ध है । इस संप्रदाय की सातवी पीढ़ी में ख्वाजा मुईनद्दीन हुए जिन्होंने भारत में सूफी मत का प्रचार किया ।

5·5·15· सूफी मत के सिद्धान्त :-

सूफियों में अनेक संप्रदाय प्रचलित है और आध्यात्मिक सिद्धान्तों के विषय में थोडा बहुत अन्तर भी है । किन्तु सभी संप्रदाय यह स्वीकार करते हैं कि ईश्वर निर्विकार तथा निर्विकल्प है । ईश्वर के साथ एकीकरण के लिए प्रेम पीर का उदय आवश्यक है । अहंभाव की समाप्ति ही साधना की कुंजी है ।

34· हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ - शिव कुमार शर्मा - पृ· 165·

आत्म समर्पण से ईश्वर का साक्षात्कार संभव है । मनुष्य की जब इच्छाएँ लुप्त हो जाती है तो वह ब्रह्म में मिल जाता है। यही अन, अलहक [अहं ब्रह्मास्मि] है । यही तसब्बुक का चरमोत्कर्ष तथा सूफी दर्शन की पराकाष्टा है । [35] सूफी एकेश्वरवाद के समर्थक है । सूफी ईश्वर को जगत से परे मानते हुए भी उसे जगत में लीन स्वीकार करते है । कुछ ईश्वर और जगत को भिन्न न मानते हुए ईश्वर ही जगत का रूप मानते है । अधिकांश सूफी ईश्वर को जगत के बाहर और भीतर सर्वत्र पाते है । सूफियों के अनुसार ईश्वर ने अपने गूढ़ रहस्य को अभिव्यक्त करने के लिए सृष्टि रची है। मानव शरीर में जड़ अंश है और आध्यात्मिक अंश है । जड़ आत्मा पाप प्रवृत्ति में लद जाता है और रुह आत्मा ईश्वरीय शक्ति का दर्शन कर स्वच्छ और पवित्र हो जाता है । सूफी दर्शन में साधना के कई सोपान है । वे है - अनुताप, आत्म संयम, वैराग्य, दारिद्र्य, धैर्य, विश्वास, संतोष और प्रेम । इनमें सूफी प्रेम को ही बहुत महत्व देते है । सूफी दर्शन में प्रेम ईश्वरीय प्राप्ति का एक मात्र साधन है । यह प्रेम लौकिक और अलौकिक की ओर उन्मुख होता है । यह प्रेम निष्काम और निस्वार्थ है । सूफी संप्रदाय हिन्दू धर्म से अधिक प्रभावित हुआ । सूफी दर्शन में ईश्वर को प्रेम पात्र के रूप में देखा है । इनके अनुसार आत्मा और परमात्मा के मिलन में शैतान [माया] बाधक है । गुरु के द्वारा मनुष्य की आत्मा का उस परमात्मा के मिलन का मार्ग प्रशस्त होता है । आत्मा परमात्मा के सामने अपने को बन्दे के रूप में प्रस्तुत करती है । बंदा प्रेम के द्वारा उस ईश्वर [हम] तक पहुँचने का प्रयत्न करता है । खुदा तक पहुँचने के लिए बन्दे को चार दशाएँ - शरीयत, तरीकत, हकीकत और मारिफत पार करनी पडती है । [36]

---

35. हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ - शिव कुमार शर्मा - पृ. 167.

36. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ - जयकिशन प्रकाश खण्डेलवाल - पृ. 189.

मारिफत में रूह " बका " जीवन प्राप्त करने के लिए फना हो जाती है। इस " फना " होने में उसका प्रेम ही सहायक है। इस प्रकार आत्मा में ही परमात्मा का अनुभव होने लगता है। प्रेम चूर होकर आत्मा इस आध्यात्मिक यात्रा को पार करके ईश्वर में ऐक्य हो जाती है। सूफियो के प्रेम में ईश्वर प्राप्ति का एक मात्र साधन है। यह प्रेम निस्वार्थ है। सूफी फकीर प्रेम के नशे में मस्त होकर परमात्मा में लौ लगा देते उन्हें शरीर आदि बाह्य संसार की बातों का ज्ञान नहीं रहता। सूफी दर्शन की यह विशेषता है कि उन लोगों ने ईश्वर प्रेमिका स्त्री के रूप में माना है अत: भक्त उस प्रेमिका की प्रसन्नता के लिए बहुत प्रयत्न करता है उसके हाथ की शराब पीने के लिए तरसता है। वह उससे प्रेम की भीख माँगत है। ईश्वर उसके सम्मुख एक प्रियतमा के रूप में उपस्थित होता है। पीर का सूफी दर्शन महत्वपूर्ण स्थान है। पीर ही एसा शक्ति शाली साधन है जो साधक को शैतान से बचाता है। सूफियों ने वेदांतियों की तरह जीव को ब्रह्म माना है। सूफियों की दृष्टि में सृष्टि का उपादान कारण " रूह " है अर्थाद अलौकिक शक्ति है। अल्लाह के आत्म दर्शन की कामना सृष्टि (रूह) में पूरी होती है। सूफी तत्व को बतलानेवाला विस्तृत प्रेमाख्यान काव्य मध्ययुग में प्राप्त होता है। तेलुगु में इसका सीधा प्रसार नही रहा लेकिन सूफी दर्शन के प्रभाव से दक्षिण में भी सूफी प्रेमाख्यान काव्य (दक्खनी) लिखे गए है।

5.6. मध्यकाल : हिन्दी भक्ति साहित्य परिचय :-

" भक्ति द्राविड उपजी लाए रामानन्द " इस उक्ति के अनुसार भक्ति का आविर्भाव दक्षिण भारत में हुआ और धीरे-धीरे भक्ति आन्दोलन के प्रभाव से उत्तर भारत में भी भक्ति का प्रसार होने लगा। तद्युगीन

इसलाम प्रभाव को कम करने तथा हिन्दू धर्म के पुनरुद्धार के लिए यहाँ के लोगों को भक्ति का मार्ग अनिवार्य हो गया । इसका प्रभाव इस समय के साहित्य पर स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है ।

भक्ति आन्दोलन में उभरने वाले अनेक धार्मिक संप्रदायों के प्रभाव से हिन्दी प्रान्त में विपुल भक्ति साहित्य की रचना हुई । इस युग मे प्रवाहित होनेवाली भक्ति साहित्य की प्रमुख दो धाराएँ --

1. निर्गुण भक्ति धारा
2. सगुण भक्ति धारा

निर्गुण भक्ति धारा के प्रमुख ज्ञान मार्गी शाखा के प्रमुख कवि कबीर है ।

निर्गुण भक्ति की और एक प्रमुख शाखा है " प्रेम मार्गी " । इसके प्रमुख कवि जायसी है । इन्होंने " पद्मावत " नामक काव्य की रचना की जो प्रेम मार्गी शाखा का उल्लेखनीय काव्य है । आगे अनेक कवियों में इस मार्ग पर काव्य रचना की । मंझन, कुतुबन आदि इस शाखा के अन्य मुख कवि है ।

सगुण भक्ति धारा की भी दो उप शाखाएँ है । पहली राम भक्ति शाखा तथा दूसरी कृष्ण भक्ति शाखा । राम भक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि तुलसी दास है । उनका " राम चरित मानस " राम भक्ति का उत्कृष्ट काव्य है । इनका रामलला नहछू, विनय पत्रिका आदि भक्ति कीउत्कृष्ट रचनाए है । वल्लभाचार्य और रामानन्द का इन पर प्रभाव है । वल्लभाचार्य,

चैतन्यप्रभु और राधावल्लभ संप्रदायों के प्रभाव से हिन्दी साहित्य में कृष्ण भक्ति की अनेक रचनाए लिखी गई । सूरदास कृष्ण भक्ति के प्रतिनिधि कवि है । इनका " सूर सागर " कृष्ण भक्ति का अनुपम उपलब्धी है । अष्टछाप के कवि, मीरा, बिहारी, घनानन्द आदि कृष्ण भक्ति को प्रचार करने वाले कवि श्रेष्ट है ।

इस प्रकार मध्यकाल में भक्ति का उदय, विकास उसका दार्शनिक पक्ष आदि अपनी चरम शिखर पर पहुँचता देख सकते है । इसलिए साहित्य के क्षेत्र में इस काल में स्वर्ण युग कहा गया है ।

5·7· मध्यकालीन तेलुगु साहित्य में भक्ति :-

यद्यपि तेलुगु साहित्य के आरंभिक काल में ही साहित्य में भक्ति, तत्व ज्ञान तथा कर्म आदि के रूप प्राप्त होते है । वही आगे चलकर विविध संप्रदायों के रूप में उभर कर बाहर निकले है । इनमें वैदिक भक्ति, शैव भक्ति, वीर शैव भक्ति और वैष्णव भक्ति के अनेक संप्रदाय तेलुगु साहित्य में प्राप्त होता है । वैदिक भक्ति का स्वरूप में नन्नय कृत " महा भारत " में दिखाई देता है । इसमें कृष्ण भक्ति का स्वरूप भी प्राप्त होता है । वैदिक भक्ति ही अपने विकास क्रम में शैव, वैष्णव तथा निर्गुण सगुण धाराओं में विभक्त हुई । श्रीनाथ युग के " दगुपल्लि दुग्गय्या " कृत " नाचिके - तोपाख्यान " वैदिक भक्ति से पूर्ण है । नन्दि मल्लय्या और घंट सिंगना ये युगल कवि थे । इन्होंने " प्रबोध चन्द्रोदय " और " मत्स्य मास्त " नामक काव्यों की रचना की । ये कवि शैव थे फिर भी वैष्णव भक्ति के प्रति आदर भाव से उन्होंने " वराह पुराण " की रचना की ।

शिव भक्ति काव्य परंपरा में शिव कवियों के नाम उल्लेखनीय है । इनमें नन्नेचोड कृत " कुमार संभवम् " 12 आश्वासों का काव्य है । शैव संप्रदाय को प्रतिबिंबित करने वाला काव्य है । इस काव्य में वीर शैव के रूप भी मिलते है । मल्लिकार्जुन पंडिताराध्य कृत " शिव तत्व सारमु " लिंगोदभवगद्य, रुद्र महिमा, गण सहस्र माला, अमरेश्वर राष्टकम्, पर्वत वर्णनम् आदि की रचना की । इनका शिव तत्व सार सम्बोधात्मक शतक है । पालकुर्कि सोम नाथ वीर शैव दर्शन को मानने वाले है । इनके " बसवपुराण ", पंडितारा चरित्र, बसवोदा हरणम् आदि प्रमुख है । वीरशैव दर्शन को प्रति पादित करने वाला काव्य इनका " बसव पुराणे " इनके बाद चक्रपाणि रंगन, राविपाटि त्रिपुरांतकुड, महाकवि श्रीनाथ के भक्ति दीपिक, अंबिका शतक, शिव रात्रि महत्यम, पलनाटि वीर चरित्र काशी खण्डम् आदि शैव भक्ति के उल्लेखनीय काव्य है । इनमें शंकर के अद्वैत का ही दर्शन होता है । धूर्जटी कृत " श्रीकालहस्ति महत्यम " में शिव श्रीकालहस्ति का वर्णन है । वैष्णव संप्रदाय को प्रतिपादित करने वाले कवियों को राम भक्ति कवि और कृष्ण भक्ति कवियों के रूप में देख सकते है । राम भक्त कवियों में " गोन बुद्दारेड्डी कृत " रंगनाथ रामायन " वाल्मिकी रामायण के अनुसार लिखी हुई द्विपद काव्य है । इसके बाद तेलुगु साहित्य में 25 रामायण ग्रन्थ प्राप्त होते है ।[37] भास्कर रामायण, गोपीनाथ रामायण, मोल्ल रामायण उल्लेखनीय है ।

कृष्ण भक्त कवियों में एर्रना कृत " हरिवंश " में कृष्ण भगवान का ही वर्णन है । पोतना के आन्ध्र महाभागवत " में अनेक पौराणिक आख्यानों का वर्णन है । हिन्दी सूरदास के समान पोतनामें भी श्रीकृष्ण के लीलाओं का अद्भुत वर्णन हुआ है । मडिकिसिंगन कृत " पद्मपुराण ", वेन्नेलकंटि सूरना

---

37. सूर और पोतना के काव्य में भक्ति तत्व-2 डा.भी.एच.रामुलु - पृ. 72.

कृत " विष्णुपुराण " श्रीकृष्ण देवराय कृत " आमुक्त माल्यदा " कृष्ण भक्ति के उत्कृष्ठ काव्य है । इस प्रकार तेलुगु साहित्य में रामकृष्ण कवि, अन्नमा - चार्य तालपाक कवि आदि वैष्णव भक्ति को प्रचार करने वाले कवि है ।

तेलुगु में निर्गुण भक्ति के प्रतिनिधि के रूप में " योगी वेमना का नाम लिया जाता है ।

5·8· तुलनात्मक अनुशीलन :-

भारतीय भक्ति-साहित्य की भूमिका में भक्ति चिंतन की परंपरा तात्विक चिंतन की आधार शिला पर परिपुष्ठ है । समग्र एवं कालजयी सिद्धान्तों की भूमिका में भारतीय भक्ति दर्शन की विशिष्टता विशेष महत्व की है । जहाँ प्राचीन दर्शन मानव के अन्वेषण और ब्रह्म जिज्ञासा की आधार भूमि पर है वहाँ अर्वाचीन दर्शन अनेक अनुचिंतनों को स्वीकार करके एक समन्वय एवं सार्वदेशिक आधार भूमि को लेकर है ।

चिंतन की परंपरा ने भक्ति के नए उत्थान में जहाँ बहुजातीय और विविध स्रोतीय वैचारिक धाराओं से युक्त है, एक विशिष्ट दिशा को ग्रहण करती दिखाई देती है । वैदिक दर्शन एवं उसके प्रभाव से व्याप्त सामाजिक व्यवस्था के प्रति जब एक प्रकार से प्रतिक्रिया विशेष कर रूढ़ियों और मूढ़ विश्वासों की भूमिका में हुई तो जैन और बौद्ध धर्मों का वैचारिक एवं दार्शनिक पक्ष उभर कर आया । शैव और बौद्ध सिद्धान्तों के फल स्वरूप विकास में नाथ और सिद्धों की स्थिति का प्रभाव भक्ति क्षेत्र में परिलक्षित होने लगता तो,

उसी के समानान्तर में राजनैतिक परिवर्तनों के फल स्वरूप एवं बाहरी तत्वों के आगमन से, प्रमुखतः इस्लाम के पदार्पण से एक नया प्रभाव भारत व्यापी मिलता है। इन दर्शनों ने एक नई क्रान्ति या चेतना को भक्ति के क्षेत्र में विस्तार किया है।

दक्षिण में भी जैन, बौद्ध और इस्लाम का विकास हुआ इतना ही नहीं शैव और वैष्णव धर्मों ने एक नया रूप धारण कर लिये जिन्हें वीर शैव और वीर वैष्णव कहा गया। आलवार भक्तों ने भक्ति के क्षेत्र में प्रपत्ति के साथ एक नया मार्ग भी आविष्कृत किया। इस परिवर्तन ने अनेक दार्शनिक-वादों को जन्म दिया है। उनमें प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है - अद्वैतवाद विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत आदि है। इन्हीं के प्रभाव से शुद्धाद्वैत का जो विकास दार्शनिक क्षेत्र में उत्तर प्रान्त में हुआ है उसने भी भक्ति के दार्शनिक चिन्तन को एक नया आयाम प्रदान किया है। इस्लाम की कट्टरता पर सूफियों के समन्वयवाद का सूफी संप्रदाय के रूप में आविर्भाव मिलता है। इसने भक्ति को भारतीय दर्शन की ओर आकर्षित होकर एक नया रूप ही प्रस्तुत किया है। भक्ति के दर्शनों का लोकोन्मुख होना और अनेक प्रकार के संघर्षों को झेलकर समस्त भारत में विस्तृत होना मध्यकाल में देखा जा सकता है। इन दर्शनों की सामाजिक परिणति भक्ति साहित्य की विशेषता है। इसने एक समाजिक विचार धारा को भी जन्म दिया है जिसके प्रभाव से भारतीय परंपरा में पहली बार सामाजिक व्यवस्थाओं को तोड़कर भक्ति को वैयक्तिक और सामूहिक विकास के लिए सार्थक रूप में स्वीकार किया गया है। इसी प्रकार के दर्शन से तेलुगु, हिन्दी और दक्खनी साहित्य प्रभावित है यह भारत की एकात्मकता का परिचय देता है। यह सामाजिक दर्शन के विकास का ही प्रभाव कहा जा सकता है जो मध्यकाल तक के विकास में घटित हुआ है।

षष्ट अध्याय

मध्य कालीन कवि और कृतित्व

मध्यकालीन कवि और कृतित्व

6.0 प्रस्तावना :-

कवि और कृतित्व के अध्ययन के बिना कोई भी साहित्येतिहास रचना और प्रवृत्ति निरूपण की योजना असंपूर्ण मानी जाएगी । अतः प्रस्तुत अध्याय में मध्यकालीन कवि और उनके द्वारा रचित काव्य ग्रन्थों का सामान्य परिचय प्रस्तुत किया गया है । हिन्दी साहित्य के मध्यकाल में भक्ति साहित्य का अपना महत्वपूर्ण स्थान रहा है । भक्ति की प्रधानता के कारण इस युग में भक्ति साहित्य की अनेक धाराएँ प्रवाहित हुई हैं । इनको दृष्टि में रखकर प्रस्तुत अध्याय में निर्गुण और सगुण भक्ति काव्यों में क्रमशः संतकाव्य, सूफी काव्य, राम काव्य और कृष्ण काव्य तथा शैव भक्ति साहित्य पर प्रकाश डाला गया है । इस प्रकार हिन्दी और तेलुगु में प्राप्त भक्ति साहित्य को भक्ति की

प्रवृत्ति के क्रम से तुलनात्मक अनुशीलन करना ही इस अध्याय का लक्ष्य रहा है ।

6.1 अपभ्रंश और हिन्दी में जैन साहित्य :

6.1.1 हेमचन्द्र :-

बारहवीं शताब्दी की अपभ्रंश काव्य परंपरा में हेमचन्द्र का उल्लेख मिलता है । इनका काव्य क्षेत्र व्याकरण है । इनका लिखा हुआ " सिद्ध-हेमचन्द्र शब्दानुशासन " नामक ग्रन्थ अद्वितीय रचना मानी जाती है । इसके अतिरिक्त एक " द्वयाश्रय " नामक पुस्तक की रचना की । इसमें अनेक व्याकरणिक उदाहरणों को प्रस्तुत किया है । " काव्यानुशासन ", " छन्दोशासन ", " देशीनाममाला " आदि हेमचन्द्र के लक्षण ग्रन्थ हैं ।

6.1.2 कवि सोमप्रभु :-

सं 1252 की अपभ्रंश काव्य परंपरा में कवि सोम प्रभु का नाम मिलता है । इनका प्रमुखत: क्षेत्र व्याकरण शास्त्र है । इनका लिखा हुआ " कुमार पाल प्रतिबोध " ग्रंथ है । इसमें अपभ्रंश छन्दों की तुलना में संस्कृत तथा प्राकृत छन्दों की प्रधानता स्वीकार की गई है । यह एक उपदेशात्मक काव्य है । अनेक नैतिक कथाओं के माध्यम से नैतिक उपदेश दिए हैं । पाँच प्रस्तावों में विभाजित रचना है ।

6.1.3 जिनदत्त सूरि :-

हेमचन्द्र के समकालीन कवि जिन दत्त सूरि ने तीन ग्रन्थों की रचना की है - " उपदेश रसायन रास ", " कालस्वरूप कुलकम " और " चर्चरी " । इनमें कवि जैन सांप्रदायिक धार्मिक नियमों और विधानों से संबंधित उपदेश दिए हैं ।

6.1.4 अब्दुर्रहमान :-

इनका समय 11 वी शताब्दी से 13 वी शताब्दी तक माना जाता है । इन्होंने अपभ्रंश में " संदेश रासक " नामक काव्य की रचना की । यह मुख्यत: विप्रलंभ श्रृंगार काव्य है ।

6.1.5 महेश्वर सूरि :-

महेश्वर सूरि ने आध्यात्मिक विषय से संबंधित " संजम मंजारी " नामक ग्रन्थ की रचना की । इसमें संयम के महत्त्व का वर्णन है ।

6.1.6 छीहल :-

इनका समय विक्रम की 16 वी शताब्दी का उत्तरार्ध है । इनकी प्रसिद्ध रचना " पंच सहेली गीत " है । इसमें पाँच सहेलियों के विरह वर्णन के माध्यम से कवि ने आध्यात्मिक विरह वर्णन प्रस्तुत किया है । इनकी अन्य रचनाएँ - पन्थी गीत, उदार गीत, पंचेन्द्रिय वेली और बाम बावनी हैं ।

6.1.7 **भट्टारक रत्न कीर्ति :-**

17 वीं शताब्दी इनका समय माना जाता है । इन्होंने " नेमिनाथ फागु " और " नेमि बारह मासा " नामक रचनाएँ प्रस्तुत की । इनमें 22 वें तीर्थंकर नेमिनाथ के विरह में राजुलमति के मार्मिक प्रणय निवेदन की ।

6.1.8 **ब्रह्मारायमल्ल :-**

जैनागम के वेत्ता पं. ब्रह्मरायमल्ल 17 वीं शताब्दी के माने जाते हैं । इन्होंने " नेमीश्वर रास " हनुवन्त कथा, प्रद्युम्न चरित, सुदर्शन रास, श्रीपाल रास और भविष्यदत्त कथा की रचना की । इन रचनाओं में जैन धर्म के दार्शनिक सिद्धान्तों का विवेचन हुआ है ।

6.1.9 **पाण्डे जिनदास :-**

सं 1642 इनका समय माना जाता है । ये टोडरमल में कृपापात्र थे । इन्होंने जम्बुस्वामी चरित्र, योगी रासा, जखडी चेतन गीत, मुनिश्वरों की जयमाल, माली रासा और पद । इनकी रचनाएँ शान्त रस प्रधान है ।

6.1.10 **त्रिभुवन चन्द्र :-**

17 वी शताब्दी के त्रिभुवनचन्द्र जैन धर्म एवं दर्शन से संबंधित उत्तम काव्यों का निर्माण किया । " चन्द्रशतक " नामक प्रौढ़ रचना की । यह आध्यात्म परक रचना है ।

6.1.11 कुमुद चन्द्र :-

सं 1678 के कुमुद चन्द अनेक गीत प्रधान रचनाएँ की । इनमें नेमिनाथ, बारह मासा, प्रणय गीत, हिन्डोल गीत प्रधान है । इन्होंने " भरत - बाहुबलि छन्द " नामक खण्ड काव्य है ।

6.1.12 अन्य जैन कवि और कृतियाँ :-

श्री चन्द्र मुनि कृत कथा कोश, पद्मकीति कृत पाश्र्व पुराण, पाहलड कृत आबूरास, मोहबलाल कृत " पत्तति ", नल्लसिंह कृत विजयपाल सासे, भृतनाथ कृत भृतृहरि शतक, श्रीधर कवि कृत रणमल छन्द कवि परिल्ल कृत श्रीपाल चरित्र, वारिचन्द्र कृत श्रीपाल आख्यान, मुनि बह्मगुलान कृत कृपाण जगावन कथा, हेम विजय कृत नेमीश्वर राजुल प्रसंग आदि प्रसिद्ध हैं।

6.1.13 तेलुगु में जैन साहित्य :-

तेलुगु साहित्य में जैन धर्म से संबंधित रचनाएँ नाम मात्र की ही मिलती है । इनमें श्रीगिरि कवि कृत नवनाथ चरित्र, पोशेट्टिलिंग कृत नव नाथ चरित्र, पिल्ललमर्रिपिन वीरना कृत जैमिनी भारत उल्लेखनीय है ।

6.1.14 तुलनात्मक अनुशीलन :-

हिन्दी में जैन धर्म से संबंधित अपभ्रंश साहित्य प्रचुर मात्रा में है । जैन साहित्य आरम्भिक काल से ही प्राप्त है । उत्तर भारत में जैन धर्म के प्रचार के कारण विस्तृत साहित्य की रचना हुई । दक्षिण में भी जैन धर्म का प्रसार तो रहा लेकिन मध्यकाल में जैन धर्म से संबंधित साहित्य केवल नाम मात्र प्राप्त होता है । इस साहित्य का प्रधान लक्ष्य साधना

और भक्ति की पद्धतियों का प्रसार और प्रचार ही था । साहित्य की दृष्टि से दोनों क्षेत्रों में गण्य रूप से इस साहित्य को मान्यता नहीं प्राप्त हुई । साहित्य के इतिहास में प्रवृत्तिनिरूपक या पदप्रदर्शक रूप में इस साहित्य का महत्व स्थापित नहीं हुआ ।

6.2 मध्यकालीन शैव साहित्य :-

6.2.1 हिन्दी में शैव साहित्य :-

मध्यकाल तक शैव धर्म का पर्याप्त विकास हो चुका था । शैव धर्म अनेक संप्रदायों में विकसित भी हो चुका था । शैव साहित्य में शैव दर्शन के आध्यात्मिक विषय ब्रह्म, माया, जीव जगत आदि पर विश्लेषण हो चुका था । " मध्यकालीन हिन्दी साहित्य पर शैव धर्म का प्रभाव वस्तुत: शैव साहित्य में वर्णित उक्त सिद्धान्तों के रूप में ही आया । "[1]

मध्यकालीन काव्यों में शिव परब्रह्म, असीम और शाश्वत है । वे अपनी इच्छा से नाना प्रकार के रूप धारण करते हैं । इस युग के कवियों ने " अलख ", निरंजन, शब्द और शून्य आदि नाम से निराकार शिव को अभिहित किया है । इन शब्दों का प्रयोग शैव संप्रदाय में शिव के लिए हुए हैं । इन कवियों ने शिव की सर्व व्यापकता को स्वीकार किया है । उनकी एकता को भी माना है --

> " जीव जीव मंहपीव जीव मंह, बानी बोलत सोई ।
> सोई समन मुंह, हम सबहन महं, बूझत बिरला कोई । "[2]

1· मध्यकालीन हिन्दी कविता पर शैवमत का प्रभाव-कमला भण्डारी-पृ·141·

2· संत बानी संग्रह - भाग -2, पृ· 203·

संत कबीर ने जगत, आत्म और परमात्मा के भेद की व्याख्या करते हुए कहा है कि समस्त जगत परमेश्वर का प्रतिबिंब है । [3] इस जगत की अनेकता संशयिता के कारण है । संशय मिटाने पर जगत का अस्तित्व मिट जाता है । संत कवि आनन्द ने सृष्टि के तत्वों का विश्लेषण कर अपनी बानी में कहा है --

" पांच तत्व का बना पींजरा तामे तूल पटायो " [4]

जीव मुक्ति की अवस्था में द्वन्द्व रहित हो जाता है और पाप-पुण्य से परे हो जाता है । जीव शरीर इस जगत में ब्रह्मानन्द का अनुभव करता है । कबीर की बानी के अनुसार --

" साधो भाई, जीवत ही करो बासा
जीवन समझे जीवन बूझे जीवत मुक्ति निवासा
तन छूटे जिव मिलन कहत है सो सब झूठी आशा । " [5]

इस प्रकार शैव संप्रदाय के दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रभाव मध्ययुगीन संत कवियों पर प्रचुर मात्रा में रहा । इस युग के साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका पर शैव भक्ति का प्रभाव देखा जा सकता है । शैव पुराणों और शैव महाकाव्यों में वर्णित शैव कथाएं हिन्दी साहित्य की प्रिय वस्तु बनी । इन कथाओं का रूपान्तरण कर कवियों में अपने काव्यों का प्रणयन किया । तुलसी कृत

---

3. कबीर ग्रन्थावली - पृ. 93.
4. आनन्द भूषण आनन्द - पृ. 241.
5. कबीर बाणी - हजारी प्रसाद द्विवेदी - पृ. 232.

पार्वती मंगल और गोर धन दास कृत शिव व्यावॅलो और किसनउ कृत " मघदेव पारवती रीवेती " शैव काव्य ही है । " पार्वती मंगलम " और " शिव व्यावलो " की कथा पार्वती अवतार, उसकी तपस्या और विवाह तक सीमित है । " महादेव पारवती री वेलो " में सती प्रकरण और सागर कथा का भी समावेश हुआ है । इसमें वर्णित कथा शैव पुराणों में वर्णित कथा से कुछ भिन्न है । " शिव पुराण " के अनुकरण के आधार पर ही इन काव्यों का वर्णन हुआ ।

6.2.2 पार्वती मंगल :-

इसे पार्वती के उत्पन्न होने पर उनके अद्भुत प्रभाव का वर्णन हुआ है । पर्वतों में हिमवान का प्रमुख स्थान है । वे गुणाकार हैं । उनकी पत्नी मेनका भी तीनों लोकों की स्त्रियों में सर्व श्रेष्ट है । जब से पार्वती उत्पन्न हुई तब से वहाँ ऋषि-सिद्धियाँ और अभिनव संपत्तियों का निवास हुआ है । पार्वती की अलौकिक महिमा का वर्णन तुलसी दास ने इस प्रकार किया है ।

" मंगल खानि भवानि प्रकट जब ते भइ
तब ते रिधि सिधि संपत्ति गिरि गृह नित नई ।। " 6

पार्वती मंगल में नारद का हिमवान के घर विवाह प्रसंग ले जाना, पार्वती का ऋषि के चरणों में अभिवादन करवाना, भावी पति के लिए पूछना, ऋषि द्वारा भविष्यवाणी सुनकर दुःखी होना, ऋषि का पार्वती को तपस्या का

---

6. पार्वती मंगल - 118 - पृ. 6.

आदेश, माता का पुत्री को तपस्या के लिए विदा करना, शिव तपस्या भंग करने देवताओं ने कामदेव को भेजना, काम दहन, रति विलाप, पार्वती का कठिन तपस्या, पार्वती की दशा देखकर शिव का पिघल जाना, हिमवान के यहाँ बारात भेजना, वर का वर्णन, शिव का दिव्य रूप शिव पार्वती विवाह आदि शिव पुराण के आधार पर ही लिखा गया है। कुमार-संभव का वर्णन भी " पार्वती मंगल " में हुआ है। पार्वती मंगल की कथा भक्ति भावना से प्रेरित है। श्रद्धा और भक्ति का प्रसार काव्य में सर्वत्र देखा जा सकता है। तुलसी की पार्वती को माता देखकर देवता भी पूज्य भाव से प्रणाम करते हैं।

" आवत उमहि बिलोकि सीस सुर नावहि।
भए कृतारथ जनम जानि सुख पावहि ।। " 7

6.2.3 शिव ब्यावलो :-

गोर धनदास कृत " शिव ब्यावलो " में " शिव पार्वती " विवाह के प्रसिद्ध आख्यान को लिया गया है। इस काव्य की कथा पर यद्यपि लोक व्यवहार का प्रभाव कम नहीं है तथापि उसका आधार शिव पुराण ही है। इसमें पार्वती जन्म का लोक व्यवहार के अनुरूप किया है।

" हेमाजल घर कन्या जाई, दान मान सा दीजे दाई।
लावो बांटा लाख बधाई, मोत्यां आखा मोर मिठाई। "8

---

7. पार्वती मंगल - 3 / 25 पृ. 11.

8. शिव ब्यावलो - पद - 6.

पार्वती के जन्म और उसके अलौकिक प्रभाव का वर्णन " कुमार संभव " के आधार पर प्रतीत होता है । इसमें कवि ने नारद का आगमन, पार्वती की तपस्या, काम दहन, ऋषियों द्वारा पार्वती के प्रेम परीक्षा आदि प्रसंगों को नहीं अपनाया । पार्वती के जन्म के बाद ब्राह्मण को बुलवाना, बडी होने पर शिक्षा का प्रबन्ध आदि के वर्णन में कवि की मौलिकता देखी जा सकती है । राजा के स्वप्न का उल्लेख, पश्चात् पार्वती को शिक्षा - साधना के लिए भेजना । रानी मैना का स्वप्न और राजा पंडित को शिव के पास भेजना, विवाह के लिए शिव का अकेले ही वृषभ पर आरूढ़ हो कर चल देना आदि है । इसमें शिव बारात का वर्णन नहीं है । शिव के आगमन की वार्ता सुनकर मैना पार्वती का विवाह शिव से करने के लिए तैयार नहीं होती । किन्तु पार्वती की मैना को समझाती है । शिव पार्वती वार्तालाप, शिव का देवताओं के लिए विवाह निमंत्रण और शिव पार्वती विवाह का वर्णन हुआ है । इसमें कवि की मौलिकता स्पष्ट गोचर है जो शैव कथाओं से इसे अलग करती है ।

6.2.4 महादेव-पार्वती रोवेली :-

कवि ने शिव पुराण के आधार पर ही पार्वती जन्म से पूर्व सती कथा दक्ष यज्ञ, विध्वंस, शिव के रुद्र रूप का वर्णन, पार्वती जन्म, नख शिख वर्णन, पार्वती-तपस्या का चित्रण शैव साहित्य के अनुरूप ही किया है । पार्वती सखियों से शिव का वार्तालाप भी अनुकरण ही है । शिव का रूप वर्णन भी हुआ । संक्षेप में इसमें सगर कथा, सती कथा और पार्वती विवाह का वर्णन हुआ है । यद्यपि मध्य कालीन हिन्दी साहित्य में कृष्ण कथा, राम कथा का ही अधिक प्रमुखता है । फिर भी प्रसंग वश शिव पुराण

की कथाओं का भी उल्लेख हुआ है । [9] तुलसी दास के अनुसार राम कथा वर्णन शिव जी के मुख से पार्वती के प्रति हुआ, जिसका मूल कारण सती मोह है । [10] तुलसी ने राम चरित मानस में अनेक प्रासंगिक कथाओं को जोडा उनका बाल कांड में पार्वती विवाह का उसी प्रकार वर्णन हुआ है । जिस प्रकार शिवपुराण में । पार्वती जन्म से विवाह तक मूल कथा के कुछ प्रसंगों को जोडा तथा कुछ मौलिक प्रसंगों का सुन्दर वर्णन किया ।

मध्यकाल के हिन्दी काव्य में प्रासंगिक शिव कथाओं के अतिरिक्त शिव प्रसंगों का यत्र तत्र वर्णन हुआ है । प्राय: सभी कवियों ने ग्रन्थारम्भ गणेश वन्दना से की है । शिवस्तुति भी इन काव्यों में की गई है । शिव प्रासंगिक वर्णन करने वाले कवियों में गोरख नाथ, विद्यापति, सूरदास नंददास भूषण, भिखारिदास आदि है ।

6.2.5 गोरखनाथ :-

नाथ संप्रदाय के प्रमुख कवि गोरख नाथ के रचनाओं में शिव का उल्लेख मिलता है । वे तत्व रूप में ब्रह्मा की चर्चा के प्रसंग में शिव का उल्लेख किया है । यही नहीं शिव के प्रति नमस्कार उक्तियाँ भी उपलब्ध है जो परोक्ष रूप से शिव भक्ति भावना के लिए प्रयोग हुए है --

---

9· मानस मूल मिली सुर सरिहि, सुनत सुजन मन पावन करिहि
बिच-बिच कथा विचित्र विभाग, जन सरि-तीर तीर बन बागा
उमा महेस विवाह बराती, ते जलचर अगनित बड भांति

-- मानस बालकांड - 39·

10· संभु कीन्हा यह चरित सुहावा, बहुरि कृपा करि उमहि सुनावा
-- मानस बालकांड 29/2·

" ॐ नमो सिवाय - ओम नमो सिवाय
उँकार आहे मूल मंत्र धार ।
उँकार व्या पीछे सकल संसारा
नादे लीन ब्रह्मा, नादे लीन नर हरि
नादे लीन उमा पति जोग त्यौ धरि धरि " ।।

--- गोरखवाणी

नाथो के साहित्य में शिव का ही नहीं शिव की शक्ति और उनके निवास स्थान शिव पुरी तक उल्लेख है । " महादेव " की भी चर्चा है ।[12]

6.2.6 विद्यापति :-

§ 1438 - 1507 § " कीर्तिलता " विद्यापति की प्रमुख रचना है । जिसके आरम्भ में शिव पार्वती की वंदना मिलती है । विद्यापति के काव्य में शिव भक्ति का रूप सबसे अधिक उपलब्ध होता है । उनकी पदावली में " पार्थना " और " नांचारी " के नाम से उपलब्ध है कहीं वे शिव के अर्धनारीश्वर रूप का वर्णन करते हैं तो कही शिव की वेषभूषा की । कही " हर " तथा कही " हरि " के एकत्व का उन्होंने सुन्दर वर्णन किया है । जैसे

" जय जय शंकर जय त्रिपुरारि
जय अर्ध पुरुष जयति अर्धनारि

11· गोरखवाणी - डा· पीताम्बर बड़थ्वाल - पृ· 99·
12· हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास - पृ· 358·

आर्ध धवल तनु आधा गोरा । आर्ध सह कुच आर्ध कटोरा ।
आर्ध हड़मात आर्ध गज मोती । आर्ध चानन सोहे आर्ध
विभूति
आर्ध चेतन मति आधा मोरा । आर्ध पटोर आर्ध फुजडोरा ।।[13]

विधापति ने मदन दहन प्रसंग की ओर संकेत किया है। उनकी नायिका कहती है -- हे मदन तू मुझे क्यों वेदना दे रहा है ? मैं शिव नहीं हूँ। मेरा एक ही दोष है जिससे तुम भ्रम में पड़ गए हो और मुझे शंकर समझकर दु:ख देने लगे हो। [14]

6.2.7 जायसी और शिव :-

सूफी कवियों का शिव भक्ति के साथ कोई संबंध नहीं है। परन्तु हिन्दू कहानियों को आधार बनाकर लिखे जाने के कारण हिन्दू धार्मिक और लोक जीवन का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। इसी कारण अनेक स्थलों पर शिव भक्ति का उल्लेख मिल जाता है। जायसी कृत " पद्मावत " में शिव का अनेक बार उल्लेख है। [15] " पार्वती महेश खण्ड " के एक प्रसंग पूरा शिव और पार्वती रत्नसेन के प्रेम की परीक्षा लेते हुए उसके प्रेम सिद्धि का उपाय भी बताते है। रत्नसेन की शिव स्तुति, पद्मावती भी अपनी अभीष्ट सिद्धि के बाद शिव मन्दिर में सोने का कलश चढ़ाती है। अन्य सूफी काव्यों में भी शिव स्तुति का उल्लेख है। [16]

---

13. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास - पृ. 354.
14. विधापति पदावली - वसंत कुमार - पृ. 73.
15. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास - पृ. 361.
16. हिन्दी कवियों के प्रेमाख्यान - डा. हरिकांत श्रीवास्तव - पृ. 120.

इस प्रकार मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में भक्ति के परिवेश में शिव स्तुति, शिव कथाएं, शिव प्रसंग का संकेत है। दर्शन भक्ति, साहित्य सभी क्षेत्रों में इस युग में हिन्दी साहित्य पर शैव धर्म का आभास दृष्टि गोचर होता है।

6.2.2 **शैव कवि और उनका कृतित्व :-**

6.2.2.1 **भूमिका :-**

तेलुगु साहित्य के इतिहास में शैव साहित्य का महत्वपूर्ण स्थान है। शैव साहित्य का उद्भव शैव धर्म के प्रचार के लिए हुआ है। शिव पुराण को आधार बनाकर ही लगभग समस्त शैव साहित्य की रचना हुई। शैव साहित्य में सर्व प्रथम नन्नेचोड का नाम उल्लेखनीय है। यद्यपि नन्नेचोड ग्यारहवीं शताब्दी के कवि है। इनका " कुमार संभव " को शैव साहित्य विशेष आदर प्राप्त है। इनके बाद अनेक शैव कवि शैव साहित्य का प्रणयन किया।

6.2.2.2 **पालकुर्कि सोमनाथ (1160 - 1240) :-**

पालकुर्कि सोमनाथ कवि ने संस्कृत, आन्ध्र और कर्णाटक भाषा में विशेष पांडित्य प्राप्त किया। इन भाषाओं के सहारे इन्होंने शैव धर्म का विशेष प्रचार किया। कन्नड और तेलुगु में रचित इनकी कृतियों की संख्या लगभग तीस है। इनमें तेलुगु रचनाओं की संख्या अधिक है। इनकी रचनाओं को लघुकृतियां, द्विपद कृतियां और पद्य कृतियों में विभक्त कर सकते हैं।

अ) **लघु कृतियाँ :-**

लघु कृतियों में बसवेश्वर भक्ति चिंतन और स्तुति का उल्लेख है । इनमें गद्य, रगड, उदाहरण, पंचम, अष्टम और स्तवम् उल्लेखनीय है । [17]

आ) **द्विपद कृतियाँ :-**

तेलुगु में द्विपद रचनाओं का आरम्भ सोमनाथ कवि के द्वारा संपन्न हुई है । द्विपद रचनाओं में प्रमुख है -- 1. बसव पुराण 2. पंडिताराध्य चरित्र । ये अनुवाद काव्य नहीं कहे जा सकते क्यों कि ये पूर्ण रूप से स्वतंत्र रचनाएँ है । सोमनाथ के द्वारा रचित मल्लमदेवी पुराण भी द्विपद ही है लेकिन अनुपलब्ध है ।

इ) **बसव पुराण :-**

तेलुगु साहित्य में शुद्ध देशीय पद्धति में रचित प्रथम स्वतंत्र वीर शैव पुराण है । पर सात आश्वासों में रचित द्विपद है । सी.पी. ब्राउन के अनुसार इसमें 6288 द्विपद है । इसमें वीर शैव धर्म के प्रवर्तक बसवेश्वर के जीवन महात्म्य का विशेषकर वर्णन है । इसको पुराण अवतार पुरूष की कोटी में रखकर [18] बसवना का पूर्वावतार, जन्म, व्यवहार क्षमता, महात्म्य, वीर, शैव धर्म प्रचार क्षेत्र, जंगम सेवा और लिंगैक्यम् आदि अनेक प्रसंगों के साथ लगभग 75 शैव भक्तों की कथाओं का उल्लेख है ।

---

17. तेलुगु साहित्य समीक्षा - नागय्य - पृ. 117.
18. आन्ध्र साहित्य चरित - पिंगलि लक्ष्मी कांतम् - पृ. 127.

महापुरूषों के आख्यानों की अलौकिक रूप से वर्णन करने के कारण, नागय्या जी ने इसे " पुराण " कहकर सम्बोधित किया है । [19] आचार्य सुब्रह्मण्य जी के अनुसार इस पर जैन पुराण का अधिक प्रभाव रहा है । [20] सोमनाथ के बसव पुराण अनेक कवियों के लिए अनुकरणीय बना ।

2) पंडिताराध्य चरित्र :-

" बसवपुराण " के लगभग दस साल बाद पालकुरिकि सोमनाथ ने " पंडिताराध्य चरित्रा " की रचना की । यह द्विपदा छंद में रचित प्रौढ़ पुराण काव्य है । सोमनाथ की यह अंतिम कृति है । शैव भक्त पंडिताराध्य के जीवन चरित के अतिरिक्त बसवपुराण में वर्णित कई पौराणिक कथाओं का विस्तार से वर्णन किया है । बसव पुराण में जिन कथाओं का दस बारह पंक्तियों में वर्णन है उनका इस काव्य में बढ़ाकर वर्णन किया गया है । उदाहरण के लिए " कलियबेनारु " कथा, किन्नेर ब्रह्मय्या कथा, पंडिताराध्य चरित, वृषाधिपशतक आदि प्रमुख हैं ।

3) पद्य कृतियाँ :-

पालकुरिकि सोमनाथ द्वारा रचित पद्य कृतियाँ - अनुभवसार, वृषाधिप-शतक, चतुर्वेद सार और चेन्नमल्लु सीस आदि प्रमुख हैं ।

---

19. तेलुगु साहित्य समीक्षा - पृ. 124.
20. बसवपुराण निर्माण - जैन पुराण का प्रभाव (निबंध) साहित्य सौरभ (1970).

उ) अनुभव सार :-

यह लघु पद्य काव्य है । इसमें 243 पद्य हैं । वृत्ति वैविध्य इसकी विशेषता है । इसमें 163 कंद पद्य हैं । इसमें महा स्रग्धरा, त्रिभंगी, क्रौंच पद, मालिनी वन मयूर, मानिनी आदि विशेष वृत्तों का प्रयोग किया गया है । इसमें कथा की विशेषता नहीं है । गुरु भक्ति, भक्ति स्वरूप, भक्ति लक्षण, शिव पूजा पद्धति, इष्ट लिंगार्चन पद्धति, जंगम सेवा आदि वीर शैव धर्म के लक्षणों को प्रतिपादित किया गया है ।

ऋ) वृषाधिप शतक :-

108 चंपक और उत्पकमालाओं में रचित शतक है । सोमनाथ के लिए बसव ही शिव है इसलिए इन्होंने पद्य के अन्त में " बसव " मुकुट का प्रयोग किया ---

" बसव बसव बसव वृषाधिपा " 21

यह शैव भक्ति, स्तोत्र, बसवेश्वर चरित भक्तों की कथाओं का संग्रह है । नवधा भक्ति के लक्षण इसमें दिखाई देते हैं । नायिका नायक भक्ति भी इसमें लक्षित है । भाषा और भावों में भी भक्ति रस छलकती दिखाई देती है ।

21· तेलुगु साहित्य चरित्र - जी·नागय्य - पृ· 114·

ट) **चतुर्वेद सार :-**

" बसवलिंग " के मुकुट से 357 सीस पद्यों से रचित शतक काव्य कहसकते है । वीर शैव धर्म के प्रचार के लिए चतुर्वेदसार की रचना की । इसमें बसव नाम महिमा, शिवाधिकता, विभूति, रुद्राक्ष, लिंगधारण इत्यादि वीर शैव संबंधी प्रसंगों का वर्णन है ।

ठ) **चेन्नमल्लु सीस :-**

" चेन्नमल्लु सीस " मुकुट से लिखित वीर शैव भक्ति काव्य है । 32 सीस पद्यों में लिखा गया है । चेन्नमल्लु कोई नहीं बल्कि श्रीशैल में स्थित मल्लिकार्जुन ही है ।

6.2.2.3 **श्रीपति पंडित :-**

आपने शैव धर्म के प्रचार में विशेष कार्य किया । ब्रह्मसूत्रों को शैव के अनुसार भाष्य लिखने वाले कवि है । इसी को " श्रीकर भाष्य " कहा जाता है । यही " शिव दीपिका " के नाम से भी प्रसिद्ध है । इनके ग्रन्थ अनुपलब्ध है ।

6.2.2.4 **शिवलेंक मंचना पंडित :-**

सोमनाथ कवि के बसव पुराण के छटवें आश्वास में शिवलेंक मंचना कवि का उल्लेख मिलता है । वे परम शैव भक्त थे । इनकी कृतियाँ अनु - पलब्ध है ।

6.2.2.5 **मल्लिकार्जुन पंडित :-**

मल्लिकार्जुन पंडित ही पंडितारध्य के नाम से प्रसिद्ध हैं । ये महा पंडित हैं । बसवना के समकालिक माने जाते हैं । सोमनाथ कवि ने इनका चरित्र भी लिखा । इनको " शिव कवि " और " कविमल्ल " आदि नामों से पुकारा गया है । इन्होंने संस्कृत में " रुद्र महिमा, पंच गद्य, अमरेश्वराष्टक, गुण सहस्रमाला, लिंगोद्भव गद्य आदि लिखे हैं । कन्नड में बसव गीत और तेलुगु में " शिव तत्वसार " प्रमुख हैं ।

अ) **शिव तत्वसार :-**

" शिव तत्वसार " वीर शैव धर्म का प्रामाणिक ग्रन्थ है । इसमें 489 कंद पद्यों का प्रयोग किया गया है । शितत्वसार में शिव की लीलाएँ, शैव भक्तों की महात्म्य , शिव दीक्षा, पाशुपत शैव सिद्धान्त, शैवों के आचार व्यवहार आदि का वर्णन है । पिंगलि लक्ष्मीकांतम जी ने इसे शैव स्मृति कहा है । [22] तेलुगु में रचित शतक काव्यों के लिए शिवतत्व सार उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है । इसमें शिव के लिए शिव, अजा, रुद्र, महेश आदि नामों से संबोधन किया गया है ।

6.2.2.6 **यादावकुल अन्नमय्या :- [सन् 1242]**

अन्नमय्याजी का तेलुगु में " सर्वेश्वर शतक " शैव भक्ति संबंधी काव्य है । " सर्वेश्वर " मुकुट का प्रयोग किया गया । कहा जाता है कि एक-एक पद्य लिखकर उसे कृष्ण नदी को अर्पण कर देते थे । प्रवाह से वापस

2· आन्ध्र साहित्य चरित्र - पृ· 113·

लौटने वाले ताल पात्रों को स्वीकार करते थे। एक पत्र पानी के बहावसे वापस नहीं आया तो अपना सर काट लेने को तत्पर हो गए तो एक गोपबाल ने आकर एक तालपत्र उसे दिया। उसमें जो पद्य है उसमें पद्यांत मुकुट महेश्वर के नाम से है तो उसे महेश्वर लीला मान कर उसे अपने पद्यों का मुकुट स्वीकार किया। सर्वेश्वर शतक में 142 मत्तेभ और शार्दूल वृत्तों का प्रयोग किया गया। इस ग्रन्थ में अज्ञात शक्ति, भक्त तीर्थ प्रभाव, भक्त महिमा, पूजा महात्म्य, शिवोगानन्द, पंचाक्षरी महिमा, भक्ति संस्कार फल आदि प्रसंगों का उल्लेख है। ये शिव के आराधक संप्रदाय के थे।

6.2.2.7 चित्र पाणि रंगन :-

रंगन कवि पहले वैष्णव थे लेकिन कहा जाता है कि पालकुरिकि सोमनाथ की दया से शैव धर्म स्वीकार किया। शिव दीक्षा लेने उपरान्त इन्होंने तेलुगु में अनेक ग्रन्थों की रचना की। "नयन रगड", "नमः-शिवाय रगड" नामक लघु कृतियाँ इनमें प्रमुख हैं। "नयन रगड" में 342 पादों को कृति है। इसी को "शिव भक्ति दीपिका" नाम भी दिया गया है।[23] हर एक पाद के अन्त में "कंटि" शब्द का प्रयोग है। "नमः शिवाय रगड" में शिव मंत्र का वर्णन है। इसमें 108 पाद है। हर पाद के अन्त में "नमशिवाय" का प्रयोग है। रंगन कवि ने "वीर भद्र विजयमु", शबरी लीला श्रीगिरिनाथ विक्रममु, आदि की भी रचना की।

---

23. तेलुगु साहित्य चरित्र - जी. नागय्य - पृ. 166.

2.2.8 राविपाटि त्रिपुरांतकुड : ‌‌ 1380 सन् : ‌ :-

रावियाटि तिप्पन कवि को श्रीनाथ ने पूर्वमहाकवियों में गणना की है । तिप्पना कवि ने संस्कृत में " प्रेमाभिरामम् " की रचना की इसी को श्रीनाथ ने क्रीडाभिरामम् के नाम से तेलुगु में अनुवाद किया । [24] तिप्पना कवि तेलुगु में " त्रिपुरांत को दाहरण ", " मदन विजय ", " अंबिका शतक् ", " चंद्रतारावली ", " नामक ग्रन्थों की रचना की ।

अ) त्रिपुरांत कोदाहरण :-

इसमें श्रीशैल के पूरब दिशा में स्थित त्रिपुरांतक कुमार गिरि पर स्थित शिव की स्तुति है । नुदारणा देवता स्तुति रूपक खंड काव्य है । इस काव्य में कवि नामांकन पद्य नहीं है । शैव स्तुति ही काव्य वस्तु है । हर एक " रगड " छन्द में एक-एक शिव कथा का उल्लेख है । [25] शिव पारायण के लिए उपयुक्त ग्रन्थ है ।

आ) अंबिका शतक :-

तिप्पन कवि शिव भक्त भी है । रसिक श्रृंगार प्रिय थी । इसलिए उन्होंने अंबिका शतक में पार्वती-परमेश्वर के लीलाओं का श्रृंगार रस को आलंबन बनाकर हृदयंगम चित्रण किया है । इस शतक की कुछ ही पद प्राप्त है । " अंबिका " नामक मुकुट से पद्य का अंत किया गया । इन्हें वीथि रूपक कहा जाता है ।

---

24. आन्ध्र साहित्य चरित्र - पिंगलि लक्ष्मी कान्तम् - पृ. 341.
25. तेलुगु साहित्य चरित्र - नागय्या - पृ. 355.

6.2.2.9 **श्रीगिरि कवि : ⁅ 1388 - 1445 ⁆ :-**

श्री गिरि कवि द्वारा रचित " नव नाथ चरित्र " पद्य काव्य है। इन्होंने श्रीरंग महात्म्य, और श्रीगिरिशतक की रचना की। नव नाथ चरित्र में योग विद्या प्राप्त नवनाथों का वर्णन है। इनकी सभी रचनाएँ अनुपलब्ध है।

6.2.2.10 **श्रीनाथ कवि : ⁅ 1385 - 1475 ⁆ :-**

" कवि सार्व भौम " उपाधि प्राप्त श्रीनाथ कवि द्वारा तेलुगु में अनेक सर्वोच्च रचनाएँ रची गई। शैव भक्त श्रीनाथ द्वारा अनेक शैव धर्म में संबंधित रचनाए भी लिखी गई।

अ) **पंडिताराध्य चरित्र :-**

पालकुरिकि सोमनाथ द्वारा रचित द्विपद काव्य पंडिताराध्य चरित्र को श्रीनाथ कवि ने पद्य रूप में लिखा। [26]

आ) **गौरी कल्याण :-**

तारासुर वध, अनंग दहन, रति विलाप, गौरी कल्याण, कुमार संभव इन्ही घटनाओं का श्रीनाथ ने " गौरी कल्याण " में वर्णन किया। " कालिदास कृत " कुमार संभव ' इसका आधार रहा होगा। [27]

---

26. तेलुगु साहित्य चरित्र - नागय्य - पृ. 363.
27. - वही - पृ. 381.

5) दारुकावन विहार :-

गौरी कल्याण की परिशिष्ट भाग ही दारुकावन बिहार की घटना है। विवाह के बाद प्रमथ परिवार के साथ औषधि प्रस्तपुर में हिमवंत के यहाँ रहने लगे। प्रमथगण औषधि प्रस्तपुर में अनेक कुकार्य करने लगे। तंग आकर हिमवंत ने अपनी बेटी को असम्मति व्यक्त की। सास-ससुर के मन की बात जानकर शिव पार्वती को भी बिना बताए प्रमथगण के साथ दारुका वन चले जाते हैं। वही भिक्षाटन करने लगे। और स्वतंत्र होकर विहार से ऋषि मुनि और देवता भी तंग आने लगे। क्योंकि दारुका - वन महा पवित्र मुनिपत्नियों का निवास स्थान है। भिक्षाटन की अनेक पद्धतियाँ श्रृंगार के ही अनेक रूप है। इन मुनि पत्नियों के श्रृंगार रस कल्पना के द्वारा आत्मार्पण और अज्ञानांधकार को मिटाकर दिव्य मार्ग का दर्शन कराना था। लेकिन दारुका वन के श्रृंगार वर्णन में लौकिकता अधिक है।

6) समुद्र मंथन वृतांत :-

इसकी घटना भीमेश्वर पुराण के चतुर्थ आश्वास में वर्णन किया गया है। इसमें समुद्र मंथन और नीलकंठ का जगत् कल्याण का ही रीति का पालन। हर विलास में यह घटना शिव के द्वारा पार्वती को सुनाया गया। समुद्र मंथन में समुद्र से निकली कालकूट को हर निगल कर जगत कल्याण कारी रूप धारण करते हैं यह हर विलास है।

उ) भीमेश्वर पुराण :-

श्रीनाथ कवि द्वारा विरचित भीमेश्वर पुराण में काशी में एक सप्ताह आहार अप्राप्ति के कारण व्यास ऋषि का शाप, अन्नपूर्णेश्वरी का व्यास ऋषि को सत्कार, शिव पर क्रोधित होकर काशी से प्रस्थान, अन्नपूर्णा का दक्षिण काशी दाक्षारामम् का उपदेश, व्यास और अगस्त्य का मिलन, दाक्षारामम् के महात्म्य और भीमेश्वर की स्तुति आदि इसके मुख्य प्रसंग हैं। यह काव्य मुख्य रूप से दाक्षारामम् के भीमेश्वर की प्रतिष्टा से संबंधित है। इसमें भी " हालाहल भक्षण " और " त्रिपुर संहार " की शिव लीलाओं का वर्णन है।

ऊ) हर विलास :-

" हर विलास " श्रीनाथ की स्वतंत्र रचना है। श्रीनाथ की शिव भक्ति प्रधान काव्य है। इसमें चिरुत्तोंड नंबिकथा, गौरी कल्याण, परम-शिव का दारूकावन विहार, समुद्र मंथन कथा, किरातार्जुनीय आदि शिव लीलाओं का वर्णन है।

ऋ) चिरुत्तोड नंबी कथा :-

बसवपुराण की " सिरियाल " की कथा को ही श्रीनाथ ने चिरुत्तोड-नंबी " कथा के रूप मे ग्रहण किया। 170 गद्य पद्यों के साथ इसका प्रणयन किया। हर विलास में चिरुत्तोंड नंबी पूर्व जन्म कथा का मूल कथा में उल्लेख नही है। चिरुत्तोड नंबी पूर्व जन्म में तुंबुर नामक प्रमथुम था।

दुर्वास मुनि एक दिन बदरी आश्रम में हरीण शाब कों को (हिरणों) का श्रीराक्षा खिला रहे थे। सपत्नीक शिवसेवा के लिए जाते हुए तुंबुर ने इस दृश्य को देख कर चुटकी बजाई। इस ध्वनि से हिरणे तितर-भितर हो गई। क्रोधित होकर दुर्वास मुनि ने उन्हें मानव जन्म धारण करने को शाप दिया। इस प्रकार तुंबुर ने परम-महेश्वरों के घर चिरुतोंड नंबि का जन्म लिया। अपार शैव भक्ति के कारण उसका पवित्र शैवाचार संपन्न परिवार में जन्म लेने का अवसर प्राप्त हुआ।

चिरुतोंड नंबी वीर शैव का मूर्तिमान उदाहरण है। अपने परिवार मोक्ष दिलाने के साथ-साथ उनके गोत्रजो को भी मोक्ष प्राप्ति दिलायी।

2) काशी खण्डम् :-

श्रीनाथ की प्रोढ काव्य है। स्कंधपुराण को आधारबनाया गया है।[28] इसमें श्रीनाथ ने 1777 गद्य-पद्यों का समावेश किया।[29] इसमें विंध्यापर्वत का विरोध, अगस्त्य का काशी त्याग, अगस्त्य का दक्षिण तीर्थ, कुमार स्वामी महात्म्य, व्यास का काशी त्याग, गुणनिधि कथा, शिव शर्मा कथा आदि काशी खण्ड के प्रमुख प्रसंग है। इसमें कुबेर का वर्णन भी है।

---

28. आन्ध्र साहित्य चरित्र - लक्ष्मीकान्तम् - पृ. 394.
29. तेलुगु साहित्य चरित्र - नागय्य - पृ. 403.

ट शिवरात्रि महात्म्य :-

ई॰ 1440 सन् में श्रीनाथ ने " शिवरात्रि महात्म्य " की रचना की । इसी को " सुकुमार चरित्र " भी कहा गया है । अनेक दोषों के कारण कई विद्वान इसे श्रीनाथ कवि को कृति नहीं मानते । इसमें जिस कथा को आधार बनाया गया है वह भाषा भट्ट की " कादम्बरी " ही है । मगर सुकुमार की कथा को अति जगुप्साकर वर्णन के कारण इस काव्य की प्रौढ़ता नष्ट हो गई । [30] सुकुनोपादेश को भी शिवरात्रि महत्म्य " में स्थान दिया गया है । एक ब्राह्मण, कामुक होकर अपनी ही बेटियों से कामतृष्णा पूर्ति करना और उसे शिवरात्रि के दिन शिवदर्शन और जागरण के कारण मुक्ति मिली । यह मुख्य प्रसंग है ।

6.2.2.11 अन्य शैव कवि और काव्य :-

शैव भक्ति प्रतिपादक अन्य कवियों में निरशंक कोम्मन कृत " शिव - लीला महात्म्यम्, वीर महेश्वरम्, पिड्डतपति सोमन कृत " बसव पुराण " (वीर शैव प्रधान) " प्रभुलिंगलीललु ", " दुगुपल्लि दुग्गय्या कृत " कांचि-पुरमहात्म्यद, पोतना कृत " वीर भद्रविजयम् " पेदपाटि सोमना कृत - " शिवाङ्ग दीपिका " कोलनि गणपति देव कृत शिवयोगसार पोशेट्ट लिंग कृत " नव चोल चरित्र (वीर शैव) तेनालि रामकृष्ण कृत उद्भटाराध्य चरित्र शैव काव्य है । इस प्रकार शैव युग में प्रचुर मात्रा में शैव और वीर शैव धर्म के प्रचार के लिए काव्यों की रचना हुई । इनका तेलुगु साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रहा है और प्रवृत्ति निरूपक भी रहे हैं ।

30॰ आन्ध्र साहित्य चरित्र - पृ॰ 404॰

6.2.3 तुलनात्मक समीक्षा :-

मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में शैव काव्य की उतनी दीर्घ परंपरा नहीं है जितनी की तेलुगु साहित्य में प्राप्त होती है। तेलुगु प्रान्त में प्रारम्भिक काल से ही शैव धर्म की प्रचुरता रही थी। इसी कारण शैव धर्म के प्रतिपादन के लिए अनेक काव्य ग्रन्थों की रचना हुई। शैव धर्म के समानान्तर में वीर शैव का भी अपना अलग महत्व रहा है। वीर शैव सिद्धान्तों के प्रतिपादन और उसका प्रचार इन कवियों का उद्देश्य रहा है। किन्तु हिन्दी प्रान्त में शैव धर्म प्रचार के हेतु शैव साहित्य की रचना नहीं हुई। शैव धर्म की विकसित परंपरा का प्रभाव हिन्दी साहित्य की शिव संबंधी रचनाओं में दिखाई देता है। संख्या की दृष्टि से भी हिन्दी में शिव काव्य बहुत कम है। फिर भी शैव धर्म और दर्शन का स्पष्ट प्रभाव हिन्दी में प्राप्त शैव रचनाओं में दिखाई देता है। मूलतः स्तुति, वंदना और अनेक शैव प्रसंग इन रचनाओं में दिखाई देते हैं। शिव पुराण का स्पष्ट प्रभाव हिन्दी रचनाओं में दिखाई देता है। तेलुगु साहित्य में शैव साहित्य का विशेष महत्व है। तेलुगु में शैव साहित्य का आधार भी शिव पुराण ही है। सिद्धान्त प्रतिपादन में कवियों ने अपनी मौलिकता दिखाई। तेलुगु शिव कवियों ने देशी भाषा " जान तेलुगु " में अपनी रचनाएं लिखीं। क्योंकि शैव धर्म को जनता तक ले जाने के लिए इनका यही एकमात्र उपाय था। इसी प्रकार उनके काव्य में प्रयुक्त छन्दों में देशीपन अधिक गोचर होता है। इन्होंने " द्विपदा " छन्द को आधार बना कर अनेक काव्यों की रचना की। हिन्दी कवियों ने भी देशी भाषा में ही काव्य रचना की जैसे विद्यापति इन्होंने दोहा चौपाई पद्धति को अपनाया भी है। इस प्रकार हिन्दी

और तेलुगु साहित्य में शैव धर्म को प्रतिपादित करने वाले काव्य रचे गए हैं। यों तो इनकी काव्य रचना का उद्देश्य अलग है। फिर भी दोनों साहित्यों में शैव काव्य प्राप्त होते हैं।

6.3 मध्यकालीन संत कवि और कृतियाँ :-

6.3.1 हिन्दी साहित्य :-

हिन्दी साहित्य के इतिहास में भक्ति युग के आरंभ में निर्गुणोपासक संत कवियों का महत्वपूर्ण स्थान है। इन संतों की रचनाओं का विषय प्रधानता भक्ति और वैराग्य है। इन संतों में संत कबीर हैं। किन्तु कबीर से पूर्व ही अनेक संतों जैसे नामदेव, वेणी, त्रिलोचन, रामनन्द, सेने आदि रहे है।

6.3.2 नामदेव : (1327)

हिन्दी साहित्य के मध्यकाल के आरंभ में संत नाम देव का नाम अधिक प्रसिद्ध है। ये महाराष्ट्र के थे। इनके मराठी में रचे " अभंग " है। इन्होंने हिन्दी में भी पदों की रचना की। संत के रूप में इनकी ख्याति उत्तर भारत में दूर तक व्याप्त है। इनका जन्म छीपी जाति में हुआ था। समाज में निम्न जाति में जन्म लेकर भी हरि भक्ति के प्रभाव से ख्याति प्राप्त की। इनके गुरू विसोबा खेचर महाराष्ट्र के संत थे।

उनकी कुछ रचनाए मराठी संग्रहों में प्रकाशित हुई थी । गुरु ग्रन्थ साहब में भी इनके 61 पद संग्रहीत है । कुल उनके 120 पद प्राप्त हैं । इनकी भाषा बोलचाल की और खड़ी बोली मिश्रित ब्रज भाषा । नामदेव पहले सगुणोपासक थे । किन्तु मित्र ज्ञानदेव के संपर्क ने उन्हें निर्गुणो - पासक बना दिया ।

6.3.3 त्रिलोचन :-

संत ज्ञानदेव के शिष्य संत त्रिलोचन भी महाराष्ट्र के थे । ज्ञान देव के सत्संग ने उन्हें निर्गुण संत बना दिया । इनका जन्म सं 1324 में हुआ माना जाता है । ये जाति के वैश्य थे । संतों की सेवा और सत्संग का लाभ उठाया करते थे । कहा जाता है कि इनकी भक्ति की परीक्षा लेने के लिए स्वयं भगवान नौकर बनकर इनके यहाँ आए थे । त्रिलोचन के चार पद " ग्रन्थ साहब " में संकलित है । इनके पदों के विचार से मनुष्य माया मोह में पड़कर जरामरण का भय भूल जाता है और दुःख पाता है । उनके विचार से निर्गुण राम की कृपा के बिना मुक्ति नहीं मिल सकती ।

6.3.4 रामानन्द :-

उत्तर भारत के संतों में बहुत प्रसिद्ध हैं । संतमत के प्रचार में इनका बहुत बडा योगदान है । इनके अनेक शिष्य और प्रशिष्य हुए इनमें कबीर, रैदास, धन्ना आदि हैं । इनका जन्म 1356 से माना जाता है । वे प्रयाग के एक कन्यकुब्ज ब्राह्मण परिवार में पैदा हुए थे । वे राघवनंद के शिष्य बताये जाते हैं । गुरु दीक्षा लेने के बाद वे काशी में प्रसिद्ध " पंच गंगा घाटी " पर रहे । रामानन्द की भक्ति प्रेमा भक्ति, भाव -

भक्ति या नारदी भक्ति कही जाती है । इनका एक पद ग्रन्थ साहब में संकलित है । इसमें स्वामी रामानन्द ने तीर्थ, मूर्ति पूजा, वेद, पुराण तथा बाह्म कर्मों, उपासना विधियों को त्याग कर घर में रहते हुए, अंतर्यामी एवं विश्व व्यापक ब्रह्म व परमात्मा की प्रेमा भक्ति करने गुरु की महानता का उद्घाटन किया है ।

6.3.5 सेन :-

सेन रामानन्द के शिष्यों में एक है । जाति के वे नाई होकर भी इनमें अपार भगवद् भक्ति थी । ये बांधोगढ़ राजा की सेवा किया करते थे । कहा जाता है कि एक बार स्वयं भगवान ने इनका रूप धारण कर राजा की सेवा की थी । इनके मराठी के कई " अभंग " प्रचलित है जिनमें पंढ़रपुर के विठ्ठल नाथ की स्तुति की है। ग्रन्थ साहब में इनका एक पद है, जिसमें भक्ति की सरलता का प्रतिपादन है ।

6.3.6 कबीर :-

निर्गुणोपासक संतों में कबीर का महत्वपूर्ण स्थान है । कबीर पंथ में इनका आविर्भाव काल सं 1455 माना जाता है । कबीर ने अपने को काशी का जुलाहा कहा है । कबीर पंथी परंपरा के अनुसार उनकी जन्म भूमि काशी ही थी, परन्तु कबीर के एक पद के आधार पर उनकी जन्म भूमि मगहर थी । [31]

---

31. सगल जनमु सिवपुरी गवाइया । मरती बार मगहि उठि आइया ।
ग्रन्थ साहब - 15.

कबीर के माता पिता कौन थे पता नहीं चलता । कहा जाता है कि एक विधवा ब्राह्मणी को पुत्र प्राप्त हुआ वह समाज के भय से काशी के समीप लहरतारा नामक में डाल दिया वहाँ से निरु और निम्मा नामक जुलाहा दम्पतियों ने उनका पालन पोषण किया । भक्त परंपरा और कबीर पंथ के अनुसार स्वामी रामानन्द उनके गुरु हैं । बीजक में एक स्थल पर कबीर कहते हैं कि हम कहते गए कि रामानन्द राम रस से मत्र है । [32] कबीर के अनेक शिष्य हुए जिनमें हिन्दू और मुसलमान दोनों थे । कबीर की रचनाएं उनके शिष्यों द्वारा लिपिबद्ध हुई हैं । उन की रचनाओं के संग्रह में मुख्य है :

अ) बीजक :-

बीजक कबीर पंथियों का धर्म ग्रन्थ है । इसकी संख्या क्रम समान है । - रमैनी 84, शब्द 115 चौंतीसी 1, विप्र मतीसी 1, कहरा 12, वसंत 12, चांचर 2, बेली 2, बिरहुली 1, हिंडोला 3, साखी 353, चौंतीसी आदि भी शब्द ही हैं । इस प्रकार कबीर की रचनाओं में रमैनी, शब्द और सा[illegible] प्रमुख है । [33] कबीर ग्रन्थावली में 808 साखियाँ फिर 403 पद और 7 रमैनियाँ है । [34] कबीर की भाषा खडी बोली मिश्रित ब्रज भाषा है । यह मिश्रित भाषा है । उन्होंने लोक व्यवहार की भाषा का प्रयोग किया है ।

---

32. बीजक - शब्द - 77
33. हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास - न.प्र.स. - पृ. 135.
34. कबीर ग्रन्थावली - डा. पारसनाथ तिवारी - सं. 1.

कबीर ने अपने पदों ज्ञान और योग का महत्व बताया है । उनकी भक्ति की साधना में आत्म विचार नाम जप, संत संगति, गुरु के उपदेश का महत्व अधिक है । वे ज्ञानदाता गुरु को अत्यन्त पूज्य मानते हैं। उनकी भक्ति साधना में वेदशास्त्र ज्ञान, यज्ञ, तीर्थ, व्रत, मूर्ति पूजा आदि की आवश्यकता नहीं है । कबीर की भक्ति भाव भक्ति है । उनकी वाणी में समाज सुधार अर्थात् सामाजिक कुरीतियों का खण्डन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है । उनके रचनाओं में दोहा चौपाई का प्रयोग है । इनकी वाणी जनता के लिए सुलभत: समझने योग्य है ।

6.3.7 रैदास :-

संत रैदास का जन्म चमार परिवार में हुआ है । इन्होंने रामानन्द से दीक्षा ली । वे बचपन से ही नवधा भक्ति में लग गए । रैदास कबीर के प्रभाव से निर्गुण के ध्यान में लीन हो गए । रैदास के पदों से यह ज्ञात होता है कि वे एक आडंबर रहित, विनम्र, समन्वित विचार - वाले भक्त थे । गुरु ग्रन्थ साहब में उनके तीस पद संग्रहीत हैं । रैदास सगुण और निर्गुण को एक मानते है । इनमें बुद्धि तथा सच्चे मार्ग के लिए व्याकुलता प्रकट होती है। रैदास में सूर और तुलसी के समान भाव पूर्ण उक्तियाँ मिलती हैं ।

6.3.8 पीपा :-

संत पीपा का जन्म 1465 संवत माना जाता है । इन्होंने रामानन्द से दीक्षा ली । पीपा ने पश्चिम दिशा में भक्ति का प्रचार किया । पीपा के एक पद का " ग्रन्थ साहब " में है । जिसके अनुसार शरीर में ही देवत्म, देव, धूप, दीप, नैवेध सब कुछ है । इसी मे नवनिधि भी प्राप्त हो सकती है ।

6.3.9 **छन्ना :-**

रामानन्द के शिष्य छन्ना जाति के जाट थे। ये एक परिश्रमी कृषक थे। इनके मन में अपार भक्ति थी। संतो का सत्कार करने में अनेक कष्टों को वे सह लेते थे। छन्ना के चार पद " ग्रन्थ साहब " में संग्रहीत है। " पीपा की कथा " नामक इनका काव्य बताया जाता है। जिनकी भाषा साधारण है। इन्होंने भी भक्ति ज्ञान और गुरु की महिमा का गान किया है।

6.3.10 **कमाल :-**

कमाल कबीर के पुत्र के रूप में प्रसिद्ध हैं " संतगाथा " नामक पुस्तक में इनकी उक्तियाँ संकलित है। उनकी भाषा में खडी बोली का रूप मिलता है।

6.3.11 **धर्मदास :-**

संत धर्मदास कबीर के समकालीन बताए जाते हैं। ये बांधवगढ के निवासी और जाति के वैश्य थे। भक्ति मार्ग में वे कबीर से दीक्षा लेकर उनके शिष्य बन गए। कबीर के उपदेशों को सामान्य शैली में संवाद के रूप में लिखे थे।

6.3.12 गुरु नानक :-

गुरु नानक का सं 1526 में हुआ माना जाता है । इनके अनेक मत थे गुरु नानक, बाबा नानक, नानक देव, नानक साहब आदि । ये जाति के खत्री और कृषक थे । बाल्यावस्था में ही इनके हृदय में ज्ञान का प्रकाश हुआ, वे स्कूल की शिक्षा छोडकर सत्संग में ज्ञान संचय करने लगे । श्रीगुरु ग्रन्थ साहब " में इनकी रचनाएँ मिलती है । इनके उपदेशों में एकेश्वरवाद से संबंधित सिद्धान्त मिलते हैं । नानक के बाद इनका एक पंथ चला है ।

6.3.13 अन्य संत कवि :-

मध्यकाल के अन्य संत कवियों में अंगद, अमरदास कृत आनंद, रामदास, अर्जुन देव, हर गोविंद, हरराय, हर कृष्ण राय तेगबहादुर गोविन्द सिंह, बन्दा बहादुर, दादू दयाल, धरनी दास, सुन्दर दास आदि उल्लेखनीय है ।

6.4 प्रेमाख्यान काव्य और सूफी काव्य :-

हिन्दी में प्रेमाख्यान परंपरा अति प्राचीन है । किन्तु इस परंपरा का प्रवर्तन किस के द्वारा हुआ यह असंदिग्ध ही है । इस दिशा में रामचन्द्र शुक्ल कुतुबन कृत मृगावती ﴾ 1501 ﴿ को प्रेमाख्यान परंपरा का प्रथम कवि माना है । आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ईश्वरदास कृत सत्यवती कथा को और डा॰ नगेन्द्र असाइत कृत हंसावली को प्रथम रचना मानते है ।

जिसकी रचना काल 1370 ई॰ है । [35]

6.4.1 हंसावली :-

असाइत कृत " हंसावली " को हिन्दी का प्रथम प्रेमाख्यान काव्य माना जा सकता है । यह प्राचीन राजस्थानी भाषा में रचित काव्य है । कवि ने इसमें अनेक कथाओं का वर्णन किया है । इस काव्य का स्रोत विक्रम और बेताल की कथा को माना है । इसमें प्रेम के साथ वीरता भी दिखाई देती है । " हंसावली " की प्रमुख कथा का संबंध पाटण की राजकुमारी हंसावली से है । राजकुमारी अद्वितीय सुन्दरी थी किन्तु पूर्व जन्म के द्वेष से उसने पखवाडे में पाँच पुरुषों की हत्याओं का भी नियम ले रखा था । इस कथा के नायक स्वप्न में हंसावली को देखकर मुग्ध हो जाता है । उसके प्रेम विह्वल होकर योगी वेश में अपने मंत्री के साथ निकल पड़ता है । अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुए अन्त में राजकुमारी हंसावली को प्राप्त करता है । पूर्व जन्म के स्मरण हो जाने के बाद वह अपने कठिन आचरण को छोड देती है । भारतीय प्रेमाख्यान परंपरा के अनुसार इसमें सभी प्रवृतियों का वर्णन है - स्वप्न दर्शन, प्रेमोत्पत्ति, वेष - धारण, साहस पूर्ण यात्रा, पूर्व जन्म स्मृति, देवी शक्ति की सहायता से प्रेमिकों का मिलन आदि । इसका आरंभ शक्ति की वन्दना से हुई है ।

6.4.2 चंदायन :-

मुल्ला दाउद द्वारा रचित प्रेमाख्यान काव्य " चन्दायन " है । इस ग्रन्थ का मूलनाम " लोर कथा " या " लोह कथा " माना जाता है । किन्तु इसकी प्रसिद्धी चंदायन के नाम से हुई । डा॰नगेन्द्र के मत में यह एक

35॰ हिन्दी साहित्य का इतिहास - डा॰ नगेन्द्र - पृ॰ 179॰

कथा काव्य है । [36] इसमें नायक लोर नायिका चन्दा का प्रणय कथा है । प्रथम दर्शन में ही प्रेम उदय हो जाता है । इनके प्रेम में अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं । अनेक व्यक्तियों से उनके प्रेम में विघ्न कराया जाता है । नायक योगी वेष में घर निकल जाना है । नायिका को नागराज का डसना और गारुड़ द्वारा नायक और नायिका का मिलन इसकी कथा वस्तु है । अवधी भाषा में रचित प्रेमाख्यान है ।

6.4.3 लखमसेन पद्मावती कथा § 1456 ई॰ § :-

दामोदर कवि द्वारा रचित वीरता प्रधान प्रेम काव्य है । इसमें राजा लक्ष्मणसेन और राजकुमारी पद्मावती के प्रेम का वर्णन है । इसमें प्रथम दर्शन में प्रेम उत्पन्न होना, बहुत आकर्षक और रोमानी शैली में वर्णित है । देवस्तुति, आत्म परिचय, नायक योगी वेष धारण कर घर से निकलना, पद्मावती के पिता के साथ संघर्ष और नायिका की प्राप्ति आदि पूर्वप्रेमाख्यान परंपरा के समान है । इसमें चौपाई, दोहा, सोरठा, आदि छन्दों का प्रयोग हुआ है । इसमें संस्कृत उक्तियों का प्रयोग हुआ है ।

6.4.4 सत्यवती कथा § 1501 § :-

ईश्वरदास द्वारा रचित " सत्यवती कथा " प्रेमाख्यान में एक प्रसिद्ध रचना है । इसमें राजकुमारी सत्यवती एवं राज कुमार ऋतुपर्ण के प्रथम दर्शन जन्य प्रेम प्रसंग का वर्णन है । इसके प्रारम्भ में राज कुमार को

36· हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ· 181·

नायिका के शाप से शाप-ग्रस्त होना पड़ता है। बाद में नायिका के विवाह पश्चात् शाप से मुक्ति हो जाती है। आचार्य राम चन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास में इसे स्थान नहीं दिया है।

6.4.5 मृगावती : [1503] :-

कुतुबन कृत " मृगावती " में नायक राजकुमार तथा नायिका मृगवती के प्रथम दर्शन प्रेम उत्पन्न होना, नायिका की प्राप्ति के लिए राज कुमार का योगी वेश धारण कर घर से निकलना मार्ग में अन्य सुन्दरी को एक राक्षस के चंगुल से बचाकर उससे विवाह करना और अन्त में भगवान की कृपा से मृगवती को प्राप्ति का सुन्दर वर्णन है। इस काव्य में शान्त रस का प्राधान्य है। इसमे नायक की मृत्यु के उपरान्त नायिकाओं का सती होना दिखाया गया है। अवधी भाषा में रचित यह काव्य दोहा, चौपाई छन्द में रचित है।

6.4.6 माधवनल काम कन्दला [1527] :-

" माधवल काम कन्दला " प्रेमाख्यान काव्य तीन कवियों द्वारा लिखा गया है।[37] इसमें नामक माधव एवं नृत्य विशारदा काम कन्दला के प्रेम का वर्णन अत्यन्त रोमांचकारी ढंग से हुआ है। उसके नृत्य पर मुग्ध होकर नायिका से प्रेम करने लगता है। अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुए अन्त में उसे पाता है। इसके आरम्भ में कवि ने कामदेव की

---

37. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - रामकुमार - पृ. 323.
तीन कवि - जैसलमेर, आलम, गणपति

स्तुति की । इसमें केवल दोहे का प्रयोग हुआ है । इसमें अनेक धार्मिक तत्वों और नैतिक उपदेशों का समन्वय भी हुआ है ।

6.4.7 पद्मावत ‡ 1540 ‡ :-

मलिक मुहम्मद जायसी कृत पद्मावत प्रेमाख्यान परंपरा का प्रौढ़ काव्य है । इसमें चितौड के राजा रत्न सेन एवं सिंहल की राजकुमारी पद्मावती के प्रेम विवाह एवं विवाहोत्तर जीवन का चित्रण अत्यन्त मार्मिक रूप से हुआ है । इसकी कथा वस्तु को आलोचकों ने दो खंडो में रखने का प्रयत्न किया है । पूर्व खण्ड में रत्नसेन पद्मावती के विवाह तक की घटनाओं को उत्तरार्थ खण्ड में विवाहोपरान्त की घटनाओं को । पद्मावत रोमांचक शैली में रचित प्रबन्ध काव्य है । पद्मावत के विभिन्न पात्र विभिन्न दार्श - निक तत्वों के प्रतीक है । इसी कारण डा॰ नगेन्द्र ने इसे प्रतीक काव्य कहा है । [38] इसमें रत्न सेन मन का, पद्मावती हृदय का, नागमती माया का, अल्लाउद्दीन, असुरी शक्ति का, हीरामन तोता - गुरु का प्रतीक है । जायसी ने पद्मावत के अतिरिक्त चित्र रेखा नामक लघु प्रेमा- ख्यान की रचना की है ।

6.4.8 मधुमालती ‡ 1545 ‡ :-

मंझन कृत " मधुमालती " में नायक नायिका के प्रथम दर्शन जन्य प्रेम के साथ-साथ पूर्वजन्म के संस्कारों की महत्ता दिखाई गयी है । नायक अनेक कठिनाईयों का सामना करते हुए महा सुन्दरी प्रेमा के प्रेम प्रस्ताव को

38॰ हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ॰ 183॰

ठुकराकर मधुमालती के प्रति एक निष्ठ प्रेम का परिचय देता है । अन्य प्रेमाख्यानों में बहु विवाह दिखाया गया है । इसमें भी नायक योगी वेश धारण का घर से निकला, राजकुमारी को राक्षस से बचाना, माँ के शाप के कारण राजकुमारी का पक्षी हो जाना आदि का वर्णन है । अवध भाषा में रचित इस काव्य में दोहा, चौपाईयों का प्रयोग हुआ है । शैली में सरलता दिखाई देती है ।

6.4.9 प्रेम विलास प्रेमलता कथा ﴾ 1556 ﴿ :-

जैन श्रावक जटमल कृत इस काव्य का आरम्भ " जैनाय नमः " में हुआ है । [39] इसकी कथावस्तु मौलिक है । गुरु के यहाँ प्रत्यक्ष दर्शन से नायक नायिका में प्रेम उत्पन्न होता है । गुप्त रूप से विवाह करके घर से भाग जाते हैं । आगे नायक राज्य प्राप्त होता है सुख सुविधाओं को छोड कर नायक का वान प्रस्था दिखाकर कथा का अन्त शान्त रस में कर देते हैं । भाषा राजस्थानी मिश्रित अवधी का प्रयोग है । दोहा चौपाई छन्दों का प्रयोग किया गया है ।

6.4.10 छिताई वार्ता : ﴾ 1590 ﴿ :-

नारायण दास कृत छिटाई वार्ता इतिहास और कल्पना के बल पर कथा को आगे बढ़ाई । इसमें देवगिरि के राजा रामदेव यादव की कन्या छिताई और ढोल समुद्रगढ़ के राज कुमार सुरसी के विवाहोपरान्त प्रणय, अल्लउद्दीन खिल्जी द्वारा उनके प्रणय में व्यवधान और अन्त में उनका

---

39. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास - गणपति चन्द्र गुप्त - पृ. 352.

मिलन दिखाया गया है। इसकी भाषा राजस्थानी मिश्रित ब्रज भाषा है। दोहा-चौपाई का प्रयोग किया गया है।

6.4.11 चित्रावली [1631] :-

" उसमान " कृत चित्रावली में कवि ने कथा काव्य की उन सभी प्रवृत्तियों ईश्वर स्तुति, आत्म परिचय, समकालीन शासक का निर्वाह हुआ है। इसमें राज कुमार सुजान और राज कुमारी चित्रावली के चित्र-दर्शन द्वारा उत्पन्न प्रेम का चित्रण किया गया है। शिव के आशीर्वाद से प्रेमोत्पत्ति, देव द्वारा सोते हुए नायक को नायिका के रंग महल में पहुँचाकर लौटा लाना, शिव मन्दिर में नायक-नायिका का प्रथम दर्शन किसी अन्य राजकुमारी का उद्धार और उससे विवाह, नायिका के पिता का विरोध समुद्री तूफान आदि अनेक कष्टों के उपरान्त नायिका से मिलन इस प्रकार प्रेमाख्यान रूढ़ियों का सफलता पूर्वक समावेश हुआ है। इसमे चौपाई की सात-सात अर्द्धालियों के पश्चात् एक-एक दोहा का प्रयोग किया गया है।

6.4.12 रस रतन [1618] :-

पुहकर कवि ने " रस रतन " की रचना की। ये अकबर के दरबार के दुर्गादास के प्रपौत्र थे। इसमें राजकुमारी रंभा और सोम का प्रेम का निरूपण किया गया है। रंभा का जन्म चण्डी उपासना से होना, स्वप्न दर्शन द्वारा नायक नायिका में प्रेम का उद्भव, अप्सरा द्वारा सोते हुए राज कुमार को उठा ले जाना, नायक का योगी के वेश में घर से

निकलना, शिव मन्दिर में नायक-नायिका की भेंट, तोते का संदेशों का आदान-प्रदान, वैराग्य आदि का परंपरानुसार वर्णन हुआ है। कवि ने नारी सौन्दर्य, संभोग चेष्टाओं, विरह वेदना आदि के वर्णन में विशेष रुचि दिखाई है। अवधी भाषा में रचित इस काव्य में दोहे, चौपाईयों का प्रयोग किया गया है।

6.4.13 **ज्ञान दीप ॥ 1619 ॥ :-**

शेख नबी द्वारा " ज्ञान दीप " की रचना हुई। इसमें कविने वीर श्रृंगार, विरह और योग का उल्लेख करते हुए पूर्व प्रचलित कथाओं की सहायता भी ली है। नायिका को सखी का योगी का वेश धारण करना कथानक में मौलिकता लाने के लिए ही है। नलोपाख्यान की भाँति नायक को खोजने के लिए स्वंयवर का आयोजन होता है। कथा का सुखान्त होता है। यह अवधी भाषा में ज्ञान प्रदर्शन की प्रवृत्ति के कारण संगीत की राग रागनियों प्रयोग, वैवाहिक संस्कारों, शकुनों का विवरण प्रस्तुत किया गया है।

6.4.14 **जान कवि :-**

सत्रहवीं शती के जान कवि को सर्वाधिक प्रेमाख्यानों की रचना करने का श्रेय प्राप्त है। इन्होंने 78 काव्य ग्रन्थों की रचना की जिनमें 29 प्रेमाख्यान हैं। इनमें से प्रमुख - कथा रत्नावली, कथा कनकावती, कथा, कंवलावती, कथा मोहिनी, कथानल, दमयंती, कथा कलावंती, कथा रुप मंजरी, कथा खिरजां शाहिजादे व देव लदे, कथा कलंदर आदि हैं। इनमें कथा काव्यों के लक्षणों का निर्वाह है।

6.4.15 कनकवती कथा :-

भरथ नामक राजा के पुत्र परम रूप एक स्वप्न में एक सुन्दरी को देखकर पागल हो जाता है । चित्रकार द्वारा उसके कथानुसार चित्र बनवाया जाता है । वह चित्र सिंधपुरी के राजा की पुत्री कनकवती का है । परम रूप योगी का वेश धारण कर सेना के साथ चल पड़ने विप्र कनवती के मन में परम-रूप का रूप सौन्दर्य वर्णन कर प्रेम जागृत करता है । विप्र के माध्यम से दोनों के बीच पत्र व्यवहार भी होता है । राज कुमार " कच्छपातिधि " विद्या द्वारा अदृश्य वेश में राजकुमारी के मन्दिर में पहुंचता, विप्र दोनों के विवाह अनुष्ठित करता है । इसमें परम रूप को नदी बहाकर कनकवती का विरह वर्णन भी हुआ । इस प्रकार परंपरा तथा रूढ़ियों का निर्वाह करते हुए इस प्रेम काव्य का प्रणयन हुआ । इसमें ग्वालियरी भाषा का प्रयोग हुआ ।

6.4.16 कामलता कथा :-

हंसपुरी के राज कुमार स्वप्न में एक सुन्दरी को देखता है और विरहकुल हो जाता है । बंधुवंत उसका प्रधान उसकी दशा देखकर एक चित्र बनाता है । एक पथिक द्वारा उसे यह ज्ञात होता है वह चित्र सुन्दर पुर की राजकुमारी कामलता को है। किन्तु वह किसी से विवाह नहीं करना चाहती । बुधवंत राजकुमार का एक चित्र बनवाकर राजकुमारी को भेंट किया । जिसे देखकर वह मोहित हो जाती है । कालांतर में उन दोनों का विवाह हो जाता है ।

6.5 दक्षिण की सूफी प्रेम गाथाएँ :-

यद्यपि तेलुगु में सूफी मतानुकूल काव्य नहीं लिखे गए फिर भी दक्षिण प्रान्त में दक्खनी हिन्दी में सूफी प्रेम काव्यों की रचना हुई है। दक्षिण में मुस्लिम सुल्तानों के शासन में सूफीमत का प्रचार हुआ था। इसके प्रभाव से दक्षिण के मुसलमान कवियों ने दक्खनी में प्रेमाख्यानों की रचना की है। इनमें निज़ामी कृत " कदम राव व पदम राव " प्रमुख है। निज़ामी कवि बहमनी राज्य के सतिल बहमनी के दरबार में थे। मुल्ला वजही कृत " कुतुब-मुश्तरी " एवं " सबरस " नामक प्रेमाख्यान विशे उल्लेखनीय है। गवासी कृत " मैना सतवंती " और मुकीमी कृत " चंदर बदन व महियार " इस दिशा में उल्लेखनीय है।

इस प्रकार मध्यकालीन साहित्य में सूफी प्रेम काव्यों को विशिष्ट स्थान प्राप्त हुआ है। सूफी कवियों के प्रभाव से परवर्तिकाल में अनेक प्रेमाख्यान रचे गए हैं। हिन्दी साहित्य के समान अथवा उससे किसी भी प्रकार से तुलनीय स्तर का प्रेमाख्यान काव्य परंपरा तेलुगु में नहीं बनी है। खासकर भक्ति और भक्ति दर्शन के क्षेत्र में तो इस प्रकार की काव्य रचना हुई ही नहीं है। अतः कहा जा सकता है कि यह हिन्दी की एक विशिष्ट स्थिति है जैसे तेलुगु में शैव साहित्य की स्थिति है।

6.6 मध्यकालीन रामभक्त कवि और कृतित्व :

6.6.1 हिन्दी साहित्य तुलसीदास और उनका कृतित्व :

अ) जन्म :-

तुलसीदास जी के जन्म संवत के विषय में विभिन्न मत है। मूल गोसाईं चरित " के रचयिता के अनुसार तुलसी की जन्म तिथि इस प्रकार है --

" पंद्रह सौ चउवन विषै कालिंदी के तीर ।
सावन शुक्ला सप्तमी तुलसी धरैओ शरीर ।। " [40]

डा॰ रामदत्त भारद्वाज तुलसी के जन्म संवत 1568 मानते हैं । उन्होंने उसकी पुष्टि के लिए तुलसी का एक दोहा उद्दृत किया है ।

" जगते रहु छत्तीस ह्वै राम चरण छत्तीन ।
तुलसी देख विचार हिय है यह मती प्रवीण ।

सोरो साम्ग्री के नुसार गोस्वामी जी ने सं॰ 1604 में गृह त्याग किया । तब वे 36 वर्ष के थे । मानस का आरंभ उन्होंने 63 वर्ष में किया अत: 1568 वि॰सं॰ मानने से उपयुक्त दोहे का अर्थ शुद्ध निकल आता है । [41] अत: डा॰भारद्वाज का मत अधिक ठीकमाना जा सकता है ।

आ) जन्म भूमि :

तुलसी का जन्म भूमि के विषय में भी अनेक मत भेद हैं । राजपुर, सोरो, तारी, रागपुर आदि अनेक स्थानों को उनकी जन्म भूमि सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल [42], डा॰ श्यामसुन्दर दास [43] मिश्रबन्धु [44] आदि विद्वानों ने तुलसी का जन्म स्थान राजापुर माना है । जार्ज

40· मूलगोसाई चरित – वेणी माधव दास – पृ॰ 52·
41· तुलसी व्यक्तित्व साहित्य दर्शन – डा॰ भारद्वाज – पृ॰ 172·
42· हिन्दी साहित्य का इतिहास – रामचन्द्र शुक्ल – पृ॰ 1541
43· तुलसीदास – 139 – 502·
44· हिन्दी नवरत्न – पृ॰ 19·

ग्रियर्सन के बल जनश्रुतियों को आधारमान कर तारी को गोस्वामी का जन्म स्थान माना है । डा॰राजाराम रस्तोगी, सीताराम शरण भगवान प्रसाद आदि तारी को इनका जन्म स्थान माना है । रामनरेश त्रिपाठी लिखते है कि " सोरो जाकर मुझे निश्चय हो गया है कि तुलसीदास का जन्म स्थान यही है । वहीं उन्होंने गुरु मुख से कथा सुनी थी । सोरो में मैं कई विद्वानों से मिला । सबने तुलसी का जन्म स्थान " सोरो " ही बतलाया । "[45] तुलसी की रचनाओं में कहीं-कहीं आत्म परिचयात्मक उक्तियाँ भी है । जिनके अनुसार --

" राखे रीति अपनी जो होई सो कीने, बलि ।
तुलसी निहारो घर जायो है घर को । "[46]

" तुलसी राम नाम सम मित्र न आन ।
जो पहुँचाव रामपुर तन अवसान ।। "[47]

राम के घर से तात्पर्य है रामपुर से है । उपर्युक्त विश्लेषण से यही निष्कर्ष निकलता है कि तुलसी का जन्म स्थान सूकर क्षेत्र के अन्तर्गत रामपुर है । और बचपन सोरो में बीता वहीं उन्होंने गुरु नरहरि से शिक्षा प्राप्त की । रामपुर उनकी साधना भूमि रही । सूर सरि में स्थित काशी में जीवन का अन्तिम समय बीता । तुलसी के पिता का नाम आत्मराम और

45· तुलसी और उनकी कविता - पृ॰ 94·

46· कवितावली उत्तर काण्ड - 49/22·

47· बरवै रामायण - 67·

माता का नाम हुलसी था । उनकी पत्नी रत्नावली थी । वे गृहस्थ जीवन से त्याग और घर भी छोड कर भगवद भक्ति मे लीन हो गए । वे स्थान-स्थान भटकते हुए अवध में आकर अपना पर्याप्त समय बिताया ।

तुलसी दास जी द्वारा रचित कृतिया चालीस बताई जाती है । इनमें से केवल बारह ही प्रामाणिक समझी जाती हैं । शेष ग्रन्थ माता प्रसाद गुप्त के अनुसार, भाव, भाषा और शैली भिन्न होने के कारण अप्रामाणिक हैं । ये ग्रन्थ है -- अंकावली, बजरंग बाण, बजरंग साठिका, भारत मिलाप, विजय दोहावली, बृहस्पति काण्ड, छंदावली, रामायण, छप्पय रामायण, धर्मराय की गीता, ध्रुव प्रश्नावली, गीता भाषा, हनुमान बोल, हनुमान चालिस, हनुमान पंचम, ज्ञान दीपिका, पदबंद रामायण, राम मुक्तावली, रस भूषण, साखी तुलसी दास जी की, संकट मोचन सत भक्त उपदेश, सूर्य पुराण, तुलसी की वाणी और उपदेश दोहा । [48] तुलसी की प्रामाणिक रचनाओं का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है ।

रामाज्ञा प्रश्न :-

यह तुलसीदास के प्रारम्भिक ग्रन्थों में से इसमें सात सर्ग हैं। जिनमें प्रत्येक में सात सात सप्तक और प्रत्येक सप्तक में सात-सात दोहो की गणना से 343 दोहे हैं । पंजाब में हस्तलिखित पुस्तकों की खोज के परिणाम स्वरूप " रामाज्ञा प्रश्न " की एकप्रति प्राप्त हुई जो संवत 1655 ज्येष्ठ शुक्ला दशमी रविवार को लिखी गयी थी । [49]

---

48. तुलसी दास - पृ. 129.

49. तुलसीदास और उनके काव्य - रामदत्त भारद्वाज - पृ. 36.

रामाज्ञा प्रश्न में शकुन पर किया गया है । इसके प्रत्येक सर्ग मे 49 दोहे है जिनमें शकुन विचार है । रामाज्ञा प्रश्न एक प्रबन्ध काव्य होते हुए भी शकुन विचार की दृष्टि से निर्मित होने के कारण उनमें कथाएँ सविस्तार नहीं है ।

2) जानकी मंगल :-

अवधी का खण्ड काव्य 216 छन्दो में समाप्त हुआ जिनमें 24 हरि-गीतिका और शेष सोहर है । यद्यपि राम-जानकी विवाह प्रसंग राम-चरित मानस में आया है फिर भी अलग रूप से इस विवाह का वर्णन जानकी मंगल में किया गया है । यह अवधी भाषा में है ।

3) गीतावली :-

गीतावली राम भक्ति परक 330 स्फुट गीतों का संग्रह है । इन गीतों में कोई क्रम और सम्बद्धता नहीं है ।[50] यहाँ तक कि विभिन्न कांडो के विभाजन में भी किसी प्रकार का ध्यान नहीं रखा गया । बालकांड अपेक्षा कृत सबसे बडा है जिनमें 110 पद है । सभी पद संगीता-त्मकता से युक्त और रागबद्ध है । गीत काव्य की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण है । ब्रज भाषा की श्रेष्ठ कृति है । इसके कथानक मानस के कथानक से कुछ भिन्न है । इसमें तुलसी की मधुर अनुभूति का चित्रण है ।

---

50. तुलसीदास और उनका साहित्य - विमल कुमार जैन - पृ. 173.

ऊ) राम लला नहछू :-

चार चरण के बीस सोहर छन्दो में लिखा गया है । रामलला नहछू ठेठ अवधी का है । विमल कुमार जैन इसे घटना काव्य कहा है - " यह खण्ड काव्य जैसा प्रतीत होता है क्योंकि श्रीराम की जीवन की एक घटना का वर्णन है परन्तु इसमें राम का कोई कार्य नहीं, केवल उनके बाल्यकाल की एक घटना का वर्णन है अत: इसे खण्ड काव्य भी नहीं जँचता । इसे घटना काव्य कह सकते है । [51] महिलाओं के लिए शुभ अवसर पर गाने के उद्देश्य से लिखी गई ज्ञात होती है । [52] इसकी भाषा अवधी भोज - पूरी है ।

क दोहावली :-

यह तुलसीदास द्वारा यदा कदा रचित दोहों का संग्रह है । इन दोहों के अतिरिक्त 85 दोहे मानस से 35 रामाज्ञा प्रश्न से तथा 7 वैराग्य संदीपनी के उद्धृत है । इसमें ज्ञान की शिक्षा दी गई है । इसमें कुल 573 दोहे है ।

ए) कवितावली :-

इस ग्रन्थ में सात कांड है कवित्त, घनाक्षरी, सवैया और छप्पय में रचित कुल 369 छन्द है । इस रचना का सौन्दर्य अनुपम है । ब्रज भाषा में रचित महत्वपूर्ण ग्रन्थ है । इसमें राम कथा के प्रमुख एवं मार्मिक स्थलों के

---

51. तुलसीदास और उनका साहित्य - पृ. 43.
52. - वही - पृ. 42.

सरस और रोचक वर्णनात्मक वृत्तों के अतिरिक्त तत्कालीन परिस्थितियों का परिचयात्मक, आत्म वृत्त के सूचक छंदो का संकलन है ।

ए) राम चरित मानस :-

यह तुलसीदास का सर्वोत्तम ग्रन्थ है । इसमें सात काण्ड है । इस ग्रन्थ में राम जन्म से लेकर विजय के पश्चात् रामादि के अयोध्या लौटने तक राम कथा वर्णित है । तुलसी के राम चरित मानस जिसे रामायण भी कहते है । [53] दोहा, चौपाई, सोरठा वृत्त में रचित यह एक भक्ति ग्रन्थ है । रामचरित मानस एक महाकाव्य है । [54] नवधा-भक्ति का निरूपण इस ग्रन्थ में सुन्दर ढंग से हुआ है ।

ओ) विनय पत्रिका :-

इसमें 279 पद्य है । विनय के पदों का उत्कृष्ट संग्रह है । इसका रचना काल 1636-1638 के मध्य माना जाता है । यह तुलसी की अंतिम रचना ज्ञात होती है । विनय पत्रिका भक्ति की दृष्टि से अनुपम है । इसमें बिलाबल, धनाश्री, रामकली, वसन्त, मारू, भैरव, कान्हरा, सारंग गौरी, दण्डक जयतिश्री विभास, ललित, टोडी, बिलास सूहो, नर, मारेठ, आसबरी, भैरवी कल्याणी आदि रागों का प्रयोग हुआ है । इस ग्रन्थ का निर्माण मुक्तक रूप मे है परन्तु खण्ड काव्य का आभास मिलता है । [55]

---

53. तुलसी और उनका साहित्य - विमल कुमार जैन - पृ. 58.

54. तुलसीदास और उनके काव्य - रामदत्त भारद्वाज - पृ. 329.

55. तुलसी और उनका साहित्य - पृ. 206.

औ) **बरबै रामायण :-**

इस कृति में 69 बरबै छन्दों का प्रयोग किया गया है । इसमें सात काण्ड हैं । इसमें राम के जीवन की प्रमुख घटनाओं का वर्णन है । ये तुलसी द्वारा रचित स्फुट बरबै हैं ।

औ **वैराग्य संदीपनी :-**

इस कृति में 46 दोहे, 14 चौपाई और दो सोरठे हैं । तुलसी ने इस ग्रन्थ के बारे में इस प्रकार बताया है --

" तुलसी वेद पुराण मत पूरन शास्त्र विचार ।
यह बरबै संदीपनी अखिल ज्ञान को सार ।। " 56

संत स्वभाव, संतमहिमा तथा शान्ति का वर्णन किया । संभवतः तुलसी के विरक्त होने की पश्चात की है ।

6.6.2 **केशवदास :-**

राम काव्य परंपरा में केशवदास का नाम उल्लेखनीय है । इनका जन्म 1612 संवत माना जाता है । ये ओड़छा नरेश महाराजसिंह के भाई इन्द्रजीतसिंह की सभा में रहते थे । इन्होंने संवत 1658 संवत में " रामचन्द्रिका " नामक राम काव्य की रचना की जिसका भावात्मक और विचारात्मक आधार वाल्मिमी रामायण से ग्रहण की । यही नहीं अनेक

---

56. तुलसी ग्रन्थावली - बरबै रामायण - दोहा -7

संस्कृत नाटकों का प्रभाव भी रहा । केशवदास कृत " राम चन्द्रिका " 39 प्रकाशों में विभक्त है । इस ग्रन्थ में अनेक छन्दों का प्रयोग हुआ है । " राम चन्द्रिका " में संवाद बडे सुन्दर है । काव्य शास्त्रीय शिला पर निर्मित महाकाव्य है ।

6.6.3 सेनापति :-

राम काव्य परंपरा में सेनापति का नाम उल्लेखनीय है । इनका जन्म 1646 संवत के आस पास माना जाता है । इनके पिता गंगाधर और गुरु हीरामणि दीक्षित थे । इन्होंने " कवित्तरत्नाकर " नामक ग्रन्थ की रचना की । इसके चौथी और पाँचवी तरंगों में रामायण तथा राम रसायन है । ये तरंग इनके राम काव्य संबंधी कवित्तों के सुंन्दर उदाहरण है । कवित्तरत्नाकर में राम काव्य के जो छन्द है वे राम और सीता के चरित्र के साथ सेनापति की भक्ति भावना को भी प्रकाशित करते हैं ।

6.6.4 प्राणचन्द चौहान :-

जहाँगीर के समय के कवि प्राणचन्द्र चौहान सं 1667 में " रामायण-महान्नाटक " की रचना की । जो हनुमन्नाटक का भाषानुवाद जान पडता है । इसमें राम सीता संवाद पद्धति द्वारा लिखा गया । इसमें दोहा-चौपाई का प्रयोग हुआ है । कवित्व की दृष्टि से यह साधारण ग्रन्थ है ।

6.6.5 हृदयराम :-

हृदयराम भल्ला पंजाब के रहनेवाले थे। इनकी प्रसिद्ध रचना " हनुमन्नाटक " का पंजाब में रामचरित मानस के समान ही प्रचार है। इस कृति का मूल नाम " रामगीत " था। परन्तु उसका " राम चन्द्र - गीत " के रूप में भी कहीं-कहीं उल्लेख है। कहा जाता है कि हनुमान जी से प्रेरणा मिलने के कारण इसका नाम " हनुमन्नाटक " रखा गया। यह चौदह अंको में रची गई है। सीता स्वयंवर से लेकर राज्याभिषेक तक की कथा लगभग 1500 छन्दों में संवाद के रूप में कही गई है। इसे संवाद काव्य कहा जाता है इसमें कवित्त सवैये का प्रयोग हुआ। यह ब्रज भाषा का राम काव्य है।

6.6.6 अग्रदास :-

अग्रदास के जन्म, माता पिता, जाति आदि के विषय में कोई सामग्री उपलब्ध नहीं है। ये मधुरोपासक राम भक्त कवि है। [57] अग्रदास की हिन्दी में भी तीन कृतियाँ मिलती है — ध्यान मंजरी, कुंडलियाँ और पदावली। इनमें प्रथम की " रामध्यानमंजरी " और द्वितीय की हितोपदेश उपाख्य बावनी " नामान्तरण है। कहा जाता है कि इन्होंने श्रृंगार रस प्रधान रामोपासना का एक सैद्धान्तिक ग्रन्थ की रचना की। इनकी रचनाओं में दास्य और श्रृंगारी भावनाओं का समावेश हुआ है।

---

57. हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास - पृ. 327.

6.6.7 नाभादास :-

इनका समय 1657 सं माना जाता है । ये अग्रदास के शिष्य और भक्त हैं । इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ " भक्तमाल " 1642 में लिखा गया । प्रियदास ने इसको टीका भी लिखी । इसमें 200 भक्तों के चमत्कार पूर्ण चरित्र 316 छप्पयों में लिखे गए हैं । इसके अतिरिक्त ब्रजभाषा गद्य तथा पद्य में लिखे गए रामचन्द्र के दो अष्टयाम भी प्राप्त है । शुक्ल जी के अनुसार रामचरित से संबंधित इनके पदों का एक छोटा सा संग्रह भी प्राप्त है । [58]

6.6.8 कृष्ण भक्त कवियों का राम काव्य :-

कृष्ण भक्तों द्वारा हिन्दी साहित्य में राम कथा एवं राम भक्ति विषयक काव्य रचना वैष्णव संप्रदाय के समन्वयवादी प्रेरणा का फल है । यह हिन्दू समाज के पूर्ण एकत्व को स्थापना में उपयोगी सिद्ध हुई । कृष्ण भक्त राम काव्य परंपरा में मुख्य है ---

6.6.9 विद्यापति :-

कृष्ण भक्ति के विकास में राधाकृष्ण के लीला गान करने वाले कवि विद्यापति ने राम भक्ति एवं राम कथा पर कुछ रचनाएँ की थी । दुर्भाग्य से उनमे केवल चार ही पद उपलब्ध हैं जिनमें उनकी राम भक्ति व्यक्त होती है । इनमें सीता, राम सीता का वनगमन, विभीषण को पद देने, राम - चरण, विवाह उपरान्त सीता की सखियों का राम दर्शन के लिए आकुलता आदि दृष्टि गोचर होती है । [59]

---

58. हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ. 101.

59. विद्यापति - मजूमदार - पद 880, 882, 883, 884.

6.6.10 मीराबाई :-

कृष्ण की आराध्या मीरा ने कई पदों में आराध्य के रूप में राम स्मरण किया है । मीरा के राम दशरथनंदन राम या वाल्मिकी नायक राम नहीं बल्कि निर्गुण ब्रह्म है ।

6.6.11 हितहरिवंश :-

राधावल्लभ संप्रदाय के संस्थापक हितहरिवंश जी ने एक पद में अशोक वाटिका में बंदिनी सीता हनुमान द्वारा दी गई सात्वना का वर्णन है ।

" जानकी मैं रघुपति को चेरो ।
बीरा दै रघुनाथ पठायो सोध करन को तेरो ।।
तेरे कारन श्याम घन सुंदर निकसि कियो वनछेरो
पदम अठारह दल बानर ले चाहत है गढ घेरो ।
अब जनि सोच करै जिय जनकी मानि वचन यक मेरो
हितहरिवंश असुर कुल मृग ज्यूं प्रभुहि सिंह की चेरो ।। " 60

इससे यह पता चलता है कि इन्होंने अन्य रामपद भी लिखे होंगे जो नष्ट हो गई होंगी ।

6.6.12 सूरदास :-

सूरदास कृत " सूर सागर के नवम् स्कंध में 158 पदों में राम कथा कही गई है । राम चरित मानस की भाँति यह सात कांडों में विभाजित है । इनमें दशरथ विलाप, सीता हनुमान संवाद, संपाती द्वारा विरह

60· याज्ञिक संग्रह - न· प्रचारिणी सभा - काशी 59/90·

विदग्ध गीता की कुछ प्रसंग, ग्राम वानिताओं का गीता के विषयक प्रसंग अशोक वाटिका में सीता, हनुमान को रावण का गुप्त चर समझना, लक्ष्मण मूर्छा, लंका दहन आदि का वर्णन तुलसी की भांति स्वाभाविक और मार्मिक ढंग से किया है । राम चरित्र के वर्णन में सूर का प्रयोग महत्त्वपूर्ण है ।

6.6.13 नंद दास :-

अष्टछापी नन्ददास आरंभ में राम भक्त थे । इनके राम कथा संबंधी इनके केवल तीन पद मिलते हैं जिनमें धनुष-यज्ञ प्रसंग, हनुमान समुद्रलांघन, लंका में सीता की खोज का वर्णन है । 61

6.6.14 अन्य कवि :-

परशुराम देवाचार्य और माधवदास जगन्नाथ को भी कृष्ण भक्त राम पद गानेवाले अन्य कवि है । इतर राम भक्त कवियों में माधवदास चरण कृत गुणराम रासो, आध्यात्म रामायण, लालदास कृत अवधविलास, राम प्रसन्न मधुराचार्य कृत वाल्मिकी रामायण टीका है । सूर किशोर कृत मिथिला विलास आदि हिन्दी में राम भक्ति प्रधान काव्य हैं ।

---

61. नंददास पदावली 2800 284, 285.

6.6.1 तेलुगु में रामायण और राम भक्ति काव्य :-

तेलुगु में राम कथा विशेष आकर्षण की वस्तु रही है । आज तेलुगु में राम कथा से संबंधित रचनाओं की संख्या लगभग चार सौ है । इन ग्रन्थों के दो रूप मिलते हैं - प्रबन्ध रूप और मुक्तक गीत । प्रबन्ध काव्य वाल्मिकि रामायण के यथा मूल सरस अनुवाद कहे जा सकते है । मुक्त गीत में कवि की मौलिकता स्पष्ट दिखाई देती है ।

तेलुगु में राम साहित्य का उद्भव विचित्र ही हुआ है । तत्कालीन परिस्थितियों अपने-अपने धर्म प्रचार के लिए रचनाएँ होती थी यथा वैदिक धर्म की पुनरुद्धार के लिए महाभारत, शैव धर्म के प्रभाव से शैव साहित्य, वैष्णव धर्म की व्याप्ति के लिए वैष्णव धर्म से संबंधित आमुक्तमाल्यदा आदि । किन्तु इसके विपरीत किसी संप्रदाय या धर्म बद्ध न होते हुए राम काव्य की परंपरा सुदीर्घ चली आ रही है ।[62] तेलुगु में राम साहित्य परंपरा अनेक रूपों में दिखाई देती है । विपुल काव्य, संक्षिप्त काव्य प्रबन्ध काव्य, गुडतेलुगु काव्य, द्विपद काव्य, चंपू काव्य, दण्डक, श्लेष काव्य, यक्षगान, कीर्तन, लोक गीत इत्यादि में राम साहित्य देखा जा सकता है । इनका एक संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है ।

6.6.1.1 गोनबुद्दा रेड्डी : रंगनाथ रामायण :-

रंगनाथ रामायण के रचयिता गोनबुद्द रेड्डी माने जाते है । इनका जन्म काल सन् 1270 है । तथा रचना काल सन् 1310-20 ई. माना जाता है । गोनबुद्दारेड्डी वैष्णव धर्म के अनुयायी थे । इस कारण विष्णु के अवतार

---

62. राम भक्ति साधना - सी.ऐच, रामुलु - पृ. 2.

और राम की विजय कथा को ही अपने काव्य वस्तु बन गई । वाल्मीकि रामायण के अनुसार रचित यह स्वतंत्र अनुवाद है । रंगनाथ रामायण को तेलुगु का प्रथम रामायण माना जाता है ।[63] काव्य शैली, काव्य, गौरव के कारण तेलुगु साहित्य में इसका विशिष्ट स्थान है । रंगनाथ रामायण में अवाल्मिकीय प्रसंग सुन्दर रूप में सम्मिलित किए गए है । चित्तशुद्धि से जो सेवा की जाती है उसे तेलुगु लोक व्यवहार में गिलहरी की भक्ति कहते हैं । राम कथा में सेतुबंध निर्माण में गिलहरी की सेवा के कारण यह कहावत प्रचलन में आई । रंगनाथ रामायण की विशेषताएँ - इसकी वस्तु संयोजन में नवीनता है । इसमें चरित्र चित्रण में मौलिकता, रस परिपाक और वर्णन पटुता है ।

रंगनाथ रामायण की कथा में आए हुए नए प्रसंगों में श्रीराम के राजतिलक की तैयारी का समाचार सुन कर मंथरा उसमें विघ्न डालने का निश्चय करती है इसमें गोनबुद्दा रेड्डी ने मंथरा का राम से पुरानी दुश्मनी बताई । इसी कारण वह कैकेयी को कुमंत्रणा देती है[64] जम्बुमाली का वृतान्त भी इसी प्रकार का है । जम्बुमानी सूर्पण का पुत्र था जो रावण से अपने पिता की हत्या का बदला लेने के उद्देश्य से सूर्यदेवता के साक्षात्कार के लिए तपस्या करता है । वे तपस्या से प्रसन्न होकर एक खड्ग देते है । लेकिन जम्बुमानी उस खड्ग को स्वीकार नहीं करता । खड्ग अंतरिक्ष में ही रह जाता है । इसी समय लक्ष्मण जंगल में आहार की तलाश में निकलता है । उस खड्ग को देखकर वह उसे ले लेता है । उसकी धार परीक्षा के लिए उसे एक झाडी पर लगाया । उसी झाडी में जम्बुमाली तपस्या कर रहा था । खड्ग के प्रहार से उसका सिर कट कर भूमि पर गिर पडा । जब

---

63. तेलुगु साहित्य चरित्र - जी.नागय्या - पृ. 167.
64. आंध्र संस्कृति, तेलुगु भाषा लिपि वाङ्मय आदान प्रदान एवं कलाए - अकादमी - पृ. 268.

शूर्पणखा पुत्र के लिए भोजन लेकर आती है तो उसने पुत्र का कटा हुआ शरीर देखकर उसकी तलाश में निकलती है तो पर्णकुटी में श्रीराम को देखकर मोहित हो जाती है । अपने आगमन का कारण भी भूल जाती है । इस तरह शूर्पणखा के चरित्र पर अच्छा प्रकाश डाला गया । कालनेमी का वृतान्त एक और है । शक्ति के लगने से लक्ष्मण मूर्छित हो जाते हैं । संजीवनी की खोज में हनुमान निकल पड़ते है । यह समाचार सुनकर रावण अपने मातुल कालनेमी को हनुमान का रास्ता रोकने के लिए भेजता है । कालनेमी की चालाकी नहीं चलती । हनुमान के हाथों में उसका वध होता है । यह वाल्मीकि रामायण में नहीं है । 65

सुलोचना वृतान्त भी रंगनाथ रामायण में बडा ही मनोहर है । इन्द्रजीत की मृत्यु के बाद उसकी वीर पत्नी सुलोचना सती होने का निश्चय कर लेती है । वह अपने ससुर से शत्रुओं के शिबिर से पति का मृत शरीर मँगा देने की प्रार्थना करती है । किन्तु रावण अपनी असमर्थता व्यक्त करता है । तब सुलोचना स्वयं शत्रु शिबिर में पहुँच जाती है । श्रीराम से पति भिक्षा की याचना करती है । उस समय सुग्रीव सुलोचना से चुनौती देता है कि " यदि तुम पतिव्रता हो तो अपने मृत पति से वार्तालाप करो । " सुलोचना इस चुनौती को स्वीकार करती हुई पति के मृत शरीर के पास जाकर ओज पूर्ण वाणी में कहती है - " यदि मैं मन, वचन और कर्म से अपने पति से सच्ची भक्ति करती हूँ तो मेरे पति मुझसे वार्तालाप करें । " तब थोडी देर के लिए इन्द्रजीत सजीव होकर सुलोचना को सांत्वना देते हैं और सदा के लिए आँखें बंद कर लेते हैं । श्रीराम सुलोचना को इन्द्रजीत का मृत शरीर सौंप देते हैं । सुलोचना सती हो जाती है ।

---

65. आंध्र संस्कृति, तेलुगु, भाषा, लिपि वाङ्मय आदान प्रदान एवं कलाएं - अकादमी - पृ. 268.

रंगनाथ रामायण में ऊर्मिला प्रसंग का विशेष रूप से वर्णन किया गया है। हनुमान चरित्र का भी वर्णन है। हनुमान जन्म घटना का सुन्दर वर्णन है। इस प्रकार रंगनाथ रामायण का तेलुगु साहित्य में उल्लेखनीय स्थान है। रंगनाथ रामायण का उत्तर काण्ड उनके पुत्रों ने (काच विभु और विठ्ठल) लिखा।

1.2 भास्कर रामायण :-

भास्कर रामायण की रचना रंगनाथ रामायण के समय मे ही हुई लेकिन समाप्ति रंगनाथ रामायण के बाद हुई। भास्कर रामायण चार कवियों द्वारा संपन्न हुई। हुलक्की भास्कर, उनका पुत्र मल्लिकार्जुन भट्ट, शिष्य कुमार रुद्र देव तथा मित्र अय्यलार्य इसके रचयिता माने जाते हैं। बहुकृत होने के कारण इसकी शैली में भिन्न दिखाई देती है।

कवि हुलक्की भास्कर ने इस काव्य को राजा साहिणी मारना को समर्पण किया जो तेरहवीं, चौदहवी के प्रभु था। हुलक्की इनको प्राप्त उपाधि है। हुलक्की भास्कर ने अरण्य कांड और युद्ध कांड के 1139 पद्यो की रचना की। मल्लिकार्जुन भट्ट ने बालकांड और किष्कंधा कांडो की रचना की। कुमार रुद्र देव ने अयोध्या कांड तथा मित्र अय्यलार्य मे युद्ध कांड के शेष पदो की रचना की। इसकी भाषा संस्कृत निष्ठ है।

भास्कर रामायण में वाल्मिकी रामायण की कुछ कथाओं को छोड कर अनेक नई कथाओं को जोड दिया। भास्कर रामायण एक स्वतंत्र रचना है। भास्कर रामायण में आध्यात्म रामायण और प्रसन्न राघ -

वादि रामायणों को भी आधार माना गया है । [66] इस प्रकार भास्कर-रामायण के कवियों ने रामकथा को इच्छानुसार संक्षिप्त और विस्तार किया है ।

6.6.1.3 मोल्ल रामायण :-

आतुकूरि मोल्ल तेलुगु साहित्य में रामायण लिखने वाली प्रथम कवयित्री है । इसका जीवन काल 1320 - 1400 माना जाता है । मोल्ल राम भक्त थी । मोल्ल ने रामायण कथा के प्रमुख प्रसंगों को सरल रीति से प्रस्तुत किया है । मोल्ल रामायण छ: कांडों का पद्य काव्य है । कहा जाता है कि मोल्ल ने कुंभकार के घर जन्म लिया । जनश्रुति है कि मोल्ल ने शपथ लेकर सात दिनों में सात कांडो में रामायण की रचना की । मोल्ल की भक्ति मधुर भक्ति है । पार्वती की स्तुति, लक्ष्मी स्तुति और सरस्वति स्तुति में मोल्ल के मातृ, गृहणी रूपों का दर्शन होता है । मोल्ल रामायण में अनेक प्रसंगों को संक्षिप्त कर दिया गया है । कुछ प्रसंगों को छोड दिया गया है । युद्ध कांड कुल 900 है । रामायण रचना में मोल्ल ने अपनी इच्छा के अनुसार प्रसंगों को घटाबढ़ा लिया है ।

6.6.1.4 रघुनाथ रामायण :-

तंजाउर का राजा रघुनाथ नायक की रचना " रघुनाथ रामायण " है । " रघुनाथ रामायण " चार आश्वासों का संग्रह रूप है । किन्तु इसमें केवल तीन आश्वास ही उपलब्ध हैं । इसमें ऋष्यश्रृंग का प्रसंग श्रृंगार और हास्य रस के लिए प्रसिद्ध है ।

---

66. राम भक्ति साधना - सी.एच. रामुलु - पृ. 3.

6.6.1.5 एर्राप्रगड रामायण :-

कहा जाता है कि एर्रना ने भी एक रामायण की रचना की। एर्रना रामायण के कुछ अंश प्राप्त हैं। यह भी माना गया है कि एर्रना ने अपना रामायण प्रोलय वेमु को अर्पित किया। इसकी जानकारी हरिवंश की जीविका में देखा जा सकता है। वेमु ने लिखा है --

" राम कथमुनु जेप्पिंचि
यत्यन्त ख्याति बोंदिति " 67

कूचिमंचि तिम्म कवि ने " सर्व लक्षण-सार " में एर्रना के रामायण में से नौ पद्यों को उद्धृत किया है।

6.6.1.6 द्विपद रामायण :-

कट्टा वरदराजू ने (सन् 1600-1657) वाल्मीकि रामायण का स्वेच्छा-अनुवाद किया है। इन्होंने कुछ नए प्रसंगों को जोड दिया है। अहल्या का शिला वृतान्त इन्होंने रंगनाथ और भास्कर रामायण के अनुसार वर्णन किया। वरद राजु ने कई मार्मिक प्रसंगों को नए ढंग से चित्रण किया है। इन्होंने अपनी रामायण को श्री वेंकटेश्वर को समर्पित किया।

6.6.1.7 रामाभ्युदयमु :-

अय्यलराजु रामभद्र कवि द्वारा विरचित राम काव्य है। रचना-काल 1550 ई. माना जाता है। रामभद्र कवि कृष्ण देवराय के " भुवन विजय "

---

67. तेलुगु साहित्य चरित्र - नागय्य - पृ. 280.

नामक कवि परिषद के अष्ट दिग्गजों में से एक है । " रामाभ्युदयम " में राम के चरित्र को कोमल तथा सुकुमार भाषा में अभिवर्णित किया है । यह राम विषयक प्रौढ़ काव्य है । इन्होंने " रघुवीर शतक " की भी रचना की ।

6.6.1.8 दशरथ नन्दन चरित्र § 16 वीं शती § :-

श्री मरिंगंटि सिंगराचार्य ने दशरथ नन्दन चरित्र की रचना की । यह आन्ध्र का प्रथम तत्सम निरोष्ठ्य काव्य है । जन बाहुल्य में प्रचलित कई कथाओं को अपने काव्य में प्रवेश कर लिया है । अहल्या वृतान्त, मंथरा वृतान्त, रावण के गर्भ में अमृत कलश की कथा जो मूल कथा से भिन्न रूप से प्रस्तुत है ।

6.6.1.9 राघव पांडवीयम् :-

पिंगलि सूरना कृत " राघव पांडवीयम " एक द्वयर्थि काव्य है । जिसमें रामायण तथा महाभारत की कथाएँ श्लेष के आधार पर वर्णित हैं । अपनी विशेष प्रवृत्ति के कारण तेलुगु साहित्य जगत में प्रसिद्ध है ।

6.6.1.10 सुग्रीव विजयम :-

कंदुकूरि रुद्र कवि " सुग्रीव विजयम " नामक यक्षगान की रचना की । तेलुगु यक्षगान साहित्य में " सुग्रीव विजय " प्रथम कृति है । इसमें श्रीराम का शोक, तथा वालि-सुग्रीव का करुण व वीर रसों का वर्णन किया गया है ।

6.6.1.11 दाशरथी शतकम् :-

भद्राचल रामादास कृत " दाशरथी शतकम् " तेलुगु साहित्य लोक में प्रसिद्ध है । कहा जाता है कि सन्त कबीर से रामादास की भेंट हुई थी और कबीर ने ही " राममंत्र " का उपदेश दिया । कबीर के निर्गुण राम को रामदास ने सगुण राम के रूप में स्वीकारा है । तेलुगु प्रान्त में रामदास के कीर्तनों को अत्यन्त भक्ति पूर्ण स्वीकारा है ।

6.6.1.12 अन्य राम काव्य :-

अन्य रामायण कथा प्रामुख्य काव्यों में नागलिंग कविकृत " पट्टाभि-राम विलासमु ", वारणसी वेंकट कवि कृत " रामचन्द्रो पाख्यान ", कोत्तपल्लि लय्युया कृत दाशरथी विलास " सात आश्वाओं का प्रबन्ध काव्य चेरुकूरि कृष्ण कवि श्रृंगार राघवमु, भावन कवि कृत रघुराम विजयमु, रावु - पोल्लेयामात्य कृत सीता चरित्र, नंदूरि बाप मंत्री कृत " श्री राम चरित्र ", चेन्न कृष्णय्या कृत सांख्य रामायण, तालपाक अन्नमाचार्य कृत द्विपद रामायण, तरिगोंड वेंकमांबा कृत वशिष्ठ रामायण पिंगलि सूरना कृत राघव पाण्ड - वीयम अय्यल राजु तिप्पयाकृत रघुवीर जानकी नायक, रघुनाथ शतक, गोपीनाथ कृत गोपीनाथ रामायण, रामदास कृत दाशरथी शतक, त्याग राज के राम भक्ति प्रधान कीर्तन तेलुगु में राम भक्ति प्रधान काव्य है ।

6.6.2 तुलनात्मक अनुशीलन :-

हिन्दी और तेलुगु साहित्यों में राम भक्ति प्रधान काव्य प्रचुर मात्रा में रचे गए हैं । मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में राम भक्ति की एक धारा ही प्रवाहित हुई । इस युग के सगुण भक्ति पूर्ण काव्यों में राम भक्ति

शाखा का अपना अलग महत्व है । इस परंपरा के सभी कवियों ने राम कथा को ही आधार बनाकर भक्ति का निरूपण किया है । इसके पीछे भक्ति आन्दोलन का बहुत बडा हाथ है । परन्तु तेलुगु साहित्य में हिन्दी के समान भक्ति की कोई ऐसी धारा या परंपरा दिखाई नहीं देती । वाल्मीकि कृत रामायण के प्रभाव से तेलुगु में जितने रामायण लिखे गए उतेने अन्यत्र दुर्लभ हैं । समय बद्ध न होकर मध्यकाल में तेलुगु में कई रामायण लिखे गए हैं । रामायण काव्यों की प्रचुरता के कारण तेलुगु साहित्य को विशेष ख्याति मिली । इसी प्रकार राम कथा से संबंधित अनेक इतर काव्यों की रचना हुई । इनमें राम भक्ति का निरूपण हुआ है । हिन्दी काव्य क्षेत्र में रामचरितमानस के समान तेलुगु में रंगनाथ रामायण, मोल्ल रामायण भास्कर रामायण आदि को ख्याति प्राप्त है । तेलुगु में मार्गी और देशी शैलियों में राम काव्यों की रचना हुई । हिन्दी में भी देशीय प्रबन्ध रूप मिलता है । तेलुगु और हिन्दी में काव्य शास्त्रीय आधार पर अनुप्रयुक्त विधान में भी राम काव्य का प्रणयन हुआ है । यह भारतीय साहित्य में प्रयोगा की इस दिशा को सूचित करता है । इस प्रकार हिन्दी और तेलुगु साहित्य ने राम काव्यों की परंपरा में अपनी-अपनी विशेषता निरूपित की ।

6.7 मध्यकालीन कृष्ण भक्त कवि और काव्य :-

मध्यकालीन भक्ति काव्य परंपरा में कृष्ण काव्य की अपनी अलग भूमिका दृष्टि गोचर होती है । जयदेव ने राधाकृष्ण का लीला गान संस्कृत में किया उनके कुछ पद हिन्दी में भी उपलब्ध होते हैं । जयदेव कृत " गीत-गोविन्दम् " का प्रभाव परवर्ति कृष्ण काव्य पर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है ।

इस दिशा में विद्यापति का विशेष योगदान रहा है । उन्होंने राधा-कृष्ण के प्रेम के विविध पक्षों को आधार बनाकर काव्य योजना की । उनके पद श्रृंगार रस प्रधान है । राधा के नखशिख वर्णन, रूप वर्णन, कृष्ण के प्रति प्रेम आदि का भव्य चित्रण हुआ है । इनके प्रभाव से ही श्री चैतन्य प्रभु अत्यन्त भाव विभोर होकर श्रीकृष्ण भक्ति गीत गाने लगे । उनके अनुयायी ब्रज में भी हुए । इसलिए कृष्ण साहित्य पर चैतन्य का व्यापक प्रभाव है । इस युग के प्रमुख, कृष्ण भक्त कवि और कृतित्व पर सामान्य परिचय प्रस्तुत है ।

7.1 वल्लभाचार्य (1535) :-

कृष्ण काव्य की परंपरा में महा प्रभु वल्लभाचार्य का नाम विशेष रूप से महत्वपूर्ण है । इनके पिता लक्ष्मण भट्ट थे और माता इल्लमा थीं । इनकी शिक्षा दीक्षा काशी में हुई । अति अल्प आयु में ही उन्होंने शास्त्र ज्ञान प्राप्त कर लिया था । वल्लभाचार्य ने भक्ति के एक संप्रदाय की स्थापना की । जो आगे चलकर " वल्लभ संप्रदाय " नाम से प्रचलित हो गया । वैष्णव धर्म में यह " पुष्टि संप्रदाय " के नाम से भी प्रसिद्ध है । वल्लभ के प्रमुख ग्रन्थों में " तत्वदीप निबंध ", " पूर्व - मीमांसा भाष्य " या " जैमिनसूत्र भाष्य, " प्रकरणीन ", " भागवत टीका ", " अणु भाष्य ", " सुबोधिनी ", " षोडश ग्रन्थ ", " पत्रावलम्बन, " शिक्षा श्लोक, मधुराष्टक, " न्यासादेश ", " प्रेमामृत ", " पुरुषोत्तम सहस्रनाम", " त्रिविध " नामावली और सेवाफल विवरण इत्यादि ।

वल्लभाचार्य ने अपने संप्रदाय में परम ब्रह्म में ही सभी धर्मों को निहित स्वीकारी है। वल्लभसंप्रदाय में कृष्ण को ही परब्रह्म स्वीकार किया गया है। उनकी लीलाओं का प्रचार किया है। इनके अनेक शिष्य हुए।

6.7.2 हित हरि वंश ॥ 1559 ॥ :-

राधा वल्लभ संप्रदाय के प्रवर्तक हित हरिवंश है। बाल्यावस्था से ही इनके हृदय में राधा-कृष्ण की लीलाओं के प्रति अनुराग था। वे तीर्थ यात्रा करते हुए वृन्दावन पहुँचे और वहाँ पर अपने सिद्धान्तों का प्रचार किया। इनके द्वारा रचित चार ग्रन्थ, उपलब्ध होते हैं, " राधा सुधा-निधि ", " यमुनाष्टक ", " हित चौरासी " तथा " स्फुट वाणी " है। " राधा सुधा निधि " संस्कृत में लिखा गया है। इसमें 270 श्लोकों के अन्तर्गत कवि ने राधा की वंदना, उपासना, प्रशस्ति, सेवा पूजा, भक्ति, सौन्दर्य आदि का वर्णन किया है। इस काव्य का अनेक कवियों में टीकाएँ लिखी यमुनाष्टक में यमुना की वंदना है। यह एक प्रशस्ति काव्य है। " हितचौरासी " चौरासी पदों का ग्रन्थ है।

6.7.3 दामोदर दास " सेवक " ॥ सं 1577 ॥ :-

आप जन्म मध्य प्रदेश के गढ़ा नामक गांव में हुआ। इन्हें बाल्यावस्था से ही भगवद भक्ति के प्रति अनुराग था। इनके गुरु हित-हरिवंश जी है। इनकी प्रसिद्ध कृति " सेवक वाणी " है जो सोलह प्रकरनों में विभाजित है। इसमें उन्होंने सांप्रदायिक भक्ति भावना और सिद्धान्त का निरूपण किया है। इसमें संस्कृत ब्रज भाषा, बुन्देल खण्डी तथा अवधी आदि की शब्दावली मिलती हैं। हित हरिवंश संप्रदाय के प्रमुख अनुयायी है।

6.7.4 सूरदास : व्यक्तित्व और कृतित्व :-

सूर के जीवन तथा साहित्य के संबंध में कई मत व्याप्त हैं। प्रामाणिक मतों के आधार पर इनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डाला गया है। सूर के कई नाम उनके पदों में मिलते हैं - सूरज चन्द्र, सूर, सूर दास, सूर श्याम, सूरज आदि। डा॰ मुंशीराम शर्मा सूरदास नाम को स्वीकार करते हैं।[68] इनके जन्म स्थान के संबंध में भी अनेक मत भेद हैं। इनके जन्म स्थान गोपाचल जो आगरा के समीप है। चौरासी वैष्णव वार्ता में " गौघर " को इनका जन्म स्थान बताया गया है।[69] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने " सनकता " बताया है।[70] कुछ आलोचकों ने उनका जन्म स्थान दिल्ली के समीप " सीही " बताया है।[71] सूर को वल्लभ से दस दिन के छोटे बताकर इनका समय संवत 1535 बताया जाता है।[72] मिश्रबन्धुओं ने सं 1540 के आसपास माना था। रामचन्द्र शुक्ल ने सं 1620 माना है। इन सभी में वल्लभ दिग्विजय को प्रामाणिक सिद्ध होने के कारण इनका समय 1535 ही प्रमाणित माना गया है। सूर को सारस्वत ब्राह्मण माना गया है। सूरदास को कुछ विद्वान जन्मान्ध मानते हैं तो कुछ विद्वान इन्हें जन्मान्ध नहीं मानते। आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी,[73] डा॰ ब्रजेश्वर शर्मा ने सूर को जन्मान्ध नहीं माना। लेकिन सूर सागर के अनेक पद के अन्धत्व का प्रमाण करते हैं --

---

68. सूर सौरभ - मुंशीराम शर्मा - पृ॰ 17.
69. चौरासी वैष्णव वार्ता - गोस्वामी गोकुलनाथ - पृ॰ 249
70. हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ॰ 159.
71. सूरदास - डा॰ ब्रजेश्वर शर्मा - पृ॰ 45.
72. सो सूरदास जो श्री आचार्य जी महाप्रभुनते दस दिन छोटे हुतो - सूर निर्णय - पृ॰ 52.
73. सूर संदर्भ - नन्ददुलारे वाजपेयी - पृ॰ 34.

" रास - रस रीति नहि बरनि आवै ।
" इहै निज मंत्र यह ज्ञान, यह ध्यान है ।
दरस दंपति भजन सार - गाऊँ ।
इहै - मांगो बार-बार प्रभु सूर के नयन है
है रहो नर देह पाऊँ । " 74

सूरदास छह वर्ष की अवस्था में ही विरक्त होकर अपना गांव छोड कर एक पीपल वृक्ष के नीचे रहने लगे । संवत् 1568 में पुष्टि संप्रदाय में दीक्षा ली । वल्लभाचार्य के शिष्यत्व के बाद से वे कृष्ण के कीर्तन गाने लगे नित्य नवीन पदों की रचना करते रहे ।

अ) कृतित्व :-

सूरदास के साहित्य में प्रमाणिक ग्रन्थ सूर सागर, सूर सारावली और साहित्य लहरी । इसके अतिरिक्त " प्रण प्यारी ", " नलदमयन्ती " हरिवंश टीका, रामजन्म तथा एकादशी माहात्म्य को अप्रमाणिक माना गया है ।

आ) सूर सागर :-

सूर सागर महाकवि सूरदास जी की प्रमाणिक रचना है । इसमें श्रीकृष्ण की लीलाओं के साथ पुष्टि संप्रदाय की सेवा प्रणाली के रूप में सेवा विधि का वर्णन किया गया है । सूर सागर में वर्णित विषय के बारे में सूर लिखते हैं --

---

74. सूर सागर - पद संख्या 1624 - 47.

" श्री मुख चारिश्लोक दिए ब्रह्मा को समुझाई ।
ब्रह्मा नारद सो कहें, नारद व्यास सुनाई ।।
व्यास कहे शुकदेव सो, द्वादशकन्ध वनाई ।
सूरदास सोई कहै पद भाषा करि गाई ।। 75

सूर सागर को भागवत का अनुवाद नहीं कहा जा सकता वह एक स्वतंत्र रचना है । इसमें द्वादश स्कन्ध हैं । इसमें श्रीकृष्ण के जन्म से लेकर जन में पद की कथाओं तक सभी पौराणिक प्रसंगों का वर्णन है । सूर सागर गीति काव्य है । " उसमें गौरी, विहाग वट, सारंग केदार, मलार, सोरठ, जेतश्री, धनाश्री आदि रागों को बड़ है । इसमें गीतिका के अतिरिक्त 15 मात्राओं की चौपाई तथा चौबोला और 16 मात्राओं की चौपाई नाम के छन्द पाये जाते हैं । वे सबसूर सागर में सम्मिलित कर लिए गए । [76] यह ब्रज भाषा में लिखित सर्व श्रेष्ट काव्य है ।

ड) <u>सूर सारावली</u> :-

इसमें कुल 1107 पद हैं । इसमें सूर संसार को होली खेल का मैदान माना है । जिसमें अपूर्व लीलाएँ चलती है ।

" आज्ञाकारी नाथ चतुकानन करो सृष्टि विस्तारा
होरी खेलन को विधि नीको रचना रचे अपार । [77]

75· सूर सागर - प्रथम स्कन्ध - पृ· 113·
76· सूर सौरभ - मुंशीराम शर्मा - पृ· 115·
77· सूर सौरभ - डॉ· मंशीलाल शर्मा-पृ· 117·

इसमें भागवत कथा को संक्षेप में कहा गया है । इसमें कृष्णावतार कथा, वेदान्त तत्व के अनेक प्रसंगों का वर्णन है । यह उनकी स्वतंत्र रचना है ।

ई) साहित्य लहरी :-

साहित्य लहरी सूर के उन पदों का संग्रह है जिनको दृष्टि कूट कहा जाता है । [78] इसमें रस अलंकार और नायिका भेद का वर्णन है । सूर की यह प्रामाणिक रचना है । इसमें पदों संख्या 104 इसमें कृष्ण की बाल लीला से संबंधित पद है । नायिका भेद का वर्णन है । इसके हर एक पद में किसी न किसी अलंकार का निर्देश अवश्य है । इसमें वर्ण्य विषय मूल रूप से राधा-कृष्ण का अनुराग है । इसमें पूर्वराग की अवस्था में गोपियों को मिलन उत्कंठा, कृष्ण के रूप की मोहिनी, राधा कृष्ण का श्रृंगार वर्णन, युगल का संयोग, वियोग राधा और कृष्ण का प्रवास वियोग उद्धव प्रसंग आदि का चमत्कारपूर्ण वर्ण हुआ है । इनके अतिरिक्त सूर सागर तथा सूर सारवली के प्रसंग तथा लंबे पद रूप में आने वाली उनकी प्रामाणिक रचनाएँ - भागवत भाषा, दशम स्कंध भाषा सूरदास के पद, नाग लीला, गोवर्धन लीला, सूर पचीसी, व्याहलो, भ्रमर गीत, सूर रामायण दानलोला, मान लीला सूर साठी, राधा रस केली कौतूहल, सेवाफल, सूर सागर सार और सूर प्रतिक ।

---

78. सूर सौरभ - डा. मुंशीलाल शर्मा - पृ. 126.

6.7.5 कुंभनदास :-

अष्ट छाप के आठ कवियों में कुंभनदास सर्व प्रथम है । कुंभनदास वल्लभाचार्य के शिष्य है । इनका जन्म संवत् 1525 में हुआ माना जाता है । संवत् 1550 में इन्होंने वल्लभाचार्य से दीक्षा प्राप्त की । कुंभनदास के पद " रागकल्पद्रुम " तथा " रागरत्नाकर " में संग्रहीत है । इन्होंने सेवा, उत्सव, कृष्ण जन्म सखी, बरांत, लीला, दान, मान, विरह आदि के विषय में वर्णन किया है । इनके राग कल्पतरू में 46 पद है और राग रत्नाकर में केवल दो पद प्राप्त होते हैं । [79] इनके अतिरिक्त वल्लभ-संपद्रायी " वर्षोत्सव कीर्तन " वसंत धमार कीर्तन तथा नित्य कीर्तन संग्रहों में इनके 115 पद उपलब्ध हैं । " [80] इनके पदों में मधुर भक्ति का प्रसार अधिक है ।

6.7.6 परमानन्द दास :-

अष्ट छाप के कवियों में सूरदास के बाद परमानन्द दास का नाम आदर के साथ लिया जाता है । इनका जीवन परिचय चौरासी वैष्णव वार्ता में उपलब्ध है । इसके अनुसार इनका जन्म निर्धन ब्राह्मण परिवार में हुआ । इनका समय संवत् 1550 माना जाता है । [81] इनके जन्म के दिन ही इनके माता-पिता को अपार धन प्राप्त हुआ इसी आनंद में इनका नाम परमानन्द रखा गया है । परमानंद ने वल्लभाचार्य से दीक्षा प्राप्त की ।

---

79. हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास - नागरी प्रचारणी सभा - पृ. 77
पंचम भाग

80. - वही - पृ.

81. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास - पृ.

परमानन्द के पदों का संग्रह अष्ट छाप के अन्य कवियों की तरह उनके शिष्यों द्वारा बाद में किया गया है । इनकी निम्न लिखित रचनाएँ है ---

1• परमानन्द दास पद

2• वल्लभ संप्रदायी कीर्तन संग्रह

3• परमानन्द सागर

इनके अतिरिक्त " दान लीला " और " ध्रुव चरित्र " नामक दो और ग्रन्थ भी इनके ही बताए जाते हैं । परमानन्द के 41 पदों का संग्रह है । इनके कीर्तन संग्रह में कुल 454 पद है ।

" परमानन्द सागर " में पदो में विनय भावना तथा गोपिकाओं के माध्यम से व्यक्त किया है । इनमें राम से संबंधित कुछ पद हैं । इनके पदों में बालकृष्ण के जन्म से लेकर माखन लीला तक डेढ सौ पद लिखे गए हैं । मुरली तथा रास की कुछ विस्तार से की है । जिसमें राधा की आसक्ति, मानापनोधन, अभिसारिका आदि का वर्णन मिलता है । इसमें भ्रमर गीत का प्रसंग संक्षिप्त है । इन्होंने प्रेम पूर्ण प्रसंगों का सुन्दर वर्णन किया है ।

6.7.7 नन्ददास :-

कृष्ण काव्य धारा में नन्ददास जी का विशेष स्थान है । दो सौ बावन वार्ता के अनुसार इनका जन्म 1590 वि• में हुआ । नन्ददास को रामपुर निवासी और तुलसी के चचेरे भाई की बात की जाती है । [82]

82• गोस्वामी तुलसीदास - रामदत्त भारद्वाज - पृ• 194•

इन्होंने गोस्वामी विट्ठल नाथ से गुरु दीक्षा ली । इस प्रकार वे पुष्टि मार्गीय गीत गाए । नन्ददास का जीवन कृष्ण भक्ति, गोकुल और गोवर्धन पर स्थित मंदिरों के दर्शन और सेवा में बीता ।

नन्द दास की रचनाओं की संख्या 28 बताई जाती है। उनमें प्रमुख और प्रामाणिक रचनाएं - रस मंजरी, रूप मंजरी, मान मंजरी, अनेकार्थ - मंजरी, विरह मंजरी, दशम स्कंध, श्याम सगाई, गोवर्धन लीला, सुदामा-चरित्र, रुक्मणी मंगल, रास पंचाध्यायी, भ्रमर गीत, सिद्धांत, पंचाध्यायी और नन्ददास पदावली हैं ।

अ) रस मंजरी :-

" रस मंजरी " का विषय नायक-नायिका भेद है । नयिका भेद, हाव भाव, हेला रति तथा दूती भेद का वर्णन किया गया है । भानुदत्त कृत " रस मंजरी " को आधार बनाकर इन्होंने अपनी काव्य रचना की ।

आ) रूप मंजरी :-

रूपमंजरी नंददास कृत छोटा सा आख्यान काव्य है । इसमें रूप-वती स्त्री - " रूपमति " के रूप, उसके अनमेल विवाह, अलौकिक कृष्ण के साथ प्रेम व्यवहार का वर्णन है ।

इ) मान मंजरी :-

इसमें राधा का मान वर्णन है । प्रत्येक छन्द की प्रथम पंक्ति में एक-एक शब्द के पर्यायवाची शब्द दिए गए है । इसमें नन्ददास मे भाषा पांडित्य और काव्य कौशल का परिचय मिलता है ।

इ) अनेकार्थ मंजरी :-

इसमें एक एक शब्द के अनेक अर्थ दोहा बद्ध करके दिए हुए हैं। यह एक प्रकार से अनेकार्थक कोष ग्रन्थ है ।

उ) विरह मंजरी :-

नन्ददास का यह भावात्मक काव्य है। इसमें एक ब्रज बाला की विरह दशा का वर्णन है । इसमें कृष्ण चरित्र से संबंधित अनेक प्रसंग हैं। श्री कृष्ण के वियोग में ब्रज बाला बारह महीनों में होनेवाली वियोग दशाओं का अनुभव काल्पनिक वियोगदशा में ही कर लेती है । जब उसकी चेतना जागृत होती है तो वह कृष्ण संयोग की वास्तविक अवस्था में लीन हो जाती है । इसमें कवि नन्ददास ने चार प्रकार के कृष्ण विरह का वर्णन किया है । [83]

ऊ) दशम स्कन्ध :-

श्रीमद् भागवद् की टीकाओं का भाव लेकर इस ग्रन्थ की रचना हुई । इसमें 29 अध्याय है ।

ऋ) श्याम सगाई :-

राधा के रूप सौन्दर्य को देखकर यशोदा के मन में इच्छा हुई कि उसमें प्यारे पुत्र कृष्ण के साथ राधा की सगाई हो जाए । इसी अभिलाषा की पूर्ति के लिए यशोदा ने एक विप्र को राधा की माता कीर्ति के पास भेजा ।

---

83. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास - पृ. 93.

किन्तु कीर्ति इस प्रस्ताव को अस्वीकार करती है। तब राधा-कृष्ण नाग काटने के बहाने कर कीर्ति के मन को परिवर्तित करते हैं। कीर्ति ने कृतज्ञता से राधा की सगाई श्रीकृष्ण से कर दी यही " श्याम सगाई " का कथावृत्त है।

ए) गोवर्द्धन लीला :-

इन्द्र का गर्व भंग इसका मुख्य कथानक है। बादलों के प्रकोप का जीवन्त चित्रण किया गया है। गोवर्धन उठाकर उसकी छत्र छाया में कृष्ण ने ब्रज वासियों की रक्षा की। सात दिन के बाद इन्द्र अपनी हार मान लेता है। इसमें कृष्ण चरित की एक घटना का वर्णन है।

ऐ) सुदामा चरित्र :-

इसकी कथा श्रीमद् भागवद से ली गई है। इसमें सुदामा के माध्यम से कृष्ण भक्ति दिखाई गई है। सुदामा परिचय उसकी पतिव्रता पत्नी के सच्चरित्र कर्तव्य परायणता, सुदामा का द्वारिका पुर जाना, श्रीकृष्ण का आदर आदि का वर्णन है।

ओ) रुक्मणी मंगल :-

रुक्मणी मंगल की कथा श्रीमद भागवत से ली गयी है। रुक्मणी हरण और उसके साथ श्रीकृष्ण के विवाह की कथा दी गई है।

अ) **राम पांचाध्यायी :-**

नंददास की रास पंचाध्यायी में कवि दो विभिन्न धाराएँ प्रवाहित होती हैं। प्रथम धारा कवि के आध्यात्मिक भाव की है और दूसरी लौकिक श्रृंगार की। रास पंचध्यायी में रासलीला का वर्णन है। आरंभ में कवि ने कृष्ण का सौन्दर्य चित्र बनाया, वृन्दावन वर्णन, ब्रज वासियों की विरह लीलाएँ है। इसमें राजा परीक्षित के प्रसंग का भी उल्लेख है।

अ) **सिद्धान्त पंचाध्यायी :-**

इसका विषय भी कृष्ण की रास लीला ही है। इसके रास वर्णन में कवि ने आध्यात्मिक पक्ष को ग्रहण किया है।

अ:) **नन्ददास पदावली :-**

इनके पदों में गुरु स्तुति, यमुना स्तुति, लीलापद, कृष्ण रूप वर्णन, राधा का रूप वर्णन, राधा कृष्ण का विरह वर्णन, रास वर्णन, राधा मान वर्णन, होली, वसंत, वर्षा, दीपमालिक आदि का वर्णन है।

.7.8 **कृष्णदास :-**

श्रीकृष्णदास का जन्म संवत् 1553 वि॰ माना जाता है। वे गुजरात के चिलोतापुर नामक गांव के थे। वे शूद्र जाति के कहे जाते हैं। उनके पिता गांव के मुखिया थे। कृष्णदास घर से निर्वासित होकर तीर्थाटन करने लगें।

कृष्ण के दर्शन की इच्छा से वे गोवर्द्धन गए । उनके दर्शन से ही उनका मन श्रीकृष्ण में लग्न हो गया । वल्लभाचार्य से दीक्षा ली । [84] वल्लभ ने कृष्णदास को श्रीनाथ मन्दिर का अधिकार सौंप दिया । भक्ति भावावेश कृष्ण की लीलाएँ गाने गाते रहे । श्रीकृष्ण की कुंज लीला के इनके पद भक्ति और भाव की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं । इनके पदों का संग्रह " जुगल-मान चरित्र " है । इनकी अन्य कृतियों में भ्रमण गीत, प्रेम तत्व निरूपण, भक्त माल की टीका, वैष्णव वंदन बानी, प्रेम रस राशि तथा हिंडोल-लीला आदि उल्लेखनीय है । इनके काव्य में मुख्यत: अनुराग के पद, गोपी भाव से युक्त लीलापद संयोग श्रृंगार के पद सुंदर है ।

7.9 चतुर्भुजदास :-

इनका जन्म सं॰ 1569 वि॰ में हुआ माना जाता है । इनके गुरु विट्ठलनाथ जी है । इनका जन्म ब्रज में जमुनावर्तो गांव में माना जाता है । वे कुंभनदास के छोटे बेटे थे । जाति के वे गोखा क्षत्रिय थे । बाल्य काल से ही उनमें भगवद् भक्ति थी । सदैव श्रीकृष्ण का कीर्तन गान करते थे । इनके पद मुख्यत: श्रीकृष्ण के बाल लीला, विनय और विरह भाव से बने हैं । इनकी रचनाएँ - मुख्यत: मधुमालती, भक्ति प्रताप, द्वादशयश, हित जू को मंगल, चतुर्भुजदास के छप्पे कीर्तन संग्रह पद आदि है । इनके पदों की संख्या 137 है । इनमें मधुमालती, भक्ति प्रताप, द्वादशयश और हित जू को मंगल की रचनाए अप्रामाणिक है । [85]

84· हिन्दी साहित्य का प्रवृत्तिगत इतिहास - प्रताप नारायण टंडन -पृ·193

85· हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास - पृ· 102·

6.7.10 गोविंद स्वामी :-

गोविन्द स्वामी का समय 1562 सं में हुआ । ये भरतपुर के आनतरी गाँव के निवासी थे । जाति के ये ब्राह्मण थे । गोविन्द स्वामी गोकुल आए और विठ्ठलनाथ से दीक्षा लेकर उनके संप्रदाय में सम्मिलित हुए । श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य भक्ति की । इनके द्वारा रचित स्फुट पद ही प्राप्त होते हैं । इन्होंने अपने पदों में प्रेम भक्ति की महिमा बताई है । इनका विश्वास है कि प्रेम भक्ति से ही भगवद् प्राप्ति होती है ।

6.7.11 छीत स्वामी :-

इनका जन्म संवत् 1572 में हुआ माना जाता है । इनका जन्म स्थान मथुरा था । आपने वल्लभ संप्रदाय में दीक्षाली और गोवर्धन पर श्रीनाथ के कीर्तन करते थे । इनके द्वारा लिखित कुछ स्फुट पद ही प्राप्त होते हैं । इनके पदों की संख्या 64 है ।

6.7.12 मीरा बाई :-

भक्ति युगीन कृष्ण काव्य की परंपरा में मीराबाई का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है । ये राजस्थान की है । मीरा ने कृष्ण को परम आराध्य के रूप में माना है । मीरा का जीवन अत्यन्त दुःखमय था । बचपन में ही माता-पिता के प्रेम से वंचित रही । मीरा का विवाह भोज राज से हुआ । कुछ ही वर्ष पश्चात् वह विधवा हो गई । भोज के सौतेले भाई विक्रमादित्य को मीरा की भक्ति भावना और सत्संग को पसंद नहीं था । इसलिए

अनेक बार मीरा की हत्या करने का प्रयत्न किया । परन्तु भगवान कृष्ण की कृपा से वे सुरक्षित रही । मीरा ने अनेक रूपों में कृष्ण को आध्यात्मिक स्वामी कह संबोधित किया --

" गिरिधर मोहो प्रीतम देखत रूप सुभाऊ । "

मीरा पद - 20·

" म्हा गिरिधर रंग राती, सैयाम्थे

-- पद - 23·

उनके अनेक पदों में ऐसी पंक्तियाँ हैं जो उनके जीवन के प्रसंगों पर प्रकाश डालती हैं । उस समय चैतन्य संप्रदाय के जीव गोस्वामी वृन्दावन में रहा करते थे । उनसे मिलने मीरा उनके यहाँ गयी । कहा जाता है कि उन्होंने स्त्री देखी होने के कारण मीरा से मिलने से इनकार किया लेकिन बाद में उनकी भक्ति से प्रभावित हुए । [86]

मीरा के पदों में बाल कृष्ण, मुरली, चीर हरण, पनघट लीला आदि प्रसंग मिलते हैं । उन्होंने कृष्ण के प्रति अपनी अनुभूतियों को निज रागात्मकता के रूप में प्रस्तुत किया । मीरा ने अपने को राधा की स्थिति में रखकर प्रणय निवेदन किया । उनके लिए तो गिरधर गोपाल पति ही हैं । उनकी भक्ति मधुर भक्ति मानी जा सकती है जिसके विरह पक्ष अत्यंत आकर्षण पूर्ण एवं भक्ति परिपाक को छलकने वाला है ।

86· मीरा की पदावली - परशुराम चतुर्वेदी - पृ· 26·

6.7.13 हरिराम व्यास :-

ओरछा धीरा महाराजा मधुकर शाह के राज गुरु श्री हरिराम-व्यास थे । इनके जीवन के संबंध में विद्वानों में मत भेद है । इनका जन्म स्थान टीकमगढ़ माना जाता है । इनका जन्म संवत 1549 अनुमानित किया जाता है । व्यास जी के भक्ति सिद्धान्तों में राधावल्लभ सम्प्रदाय के साधना पक्ष की प्रधानता है । वृन्दावन पहुँचकर हित हरिवंश जी से दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् अपने आराध्य का मन्दिर बनवाकर उसमें मूर्ति प्रतिष्ठित की । व्यास जी की कृतियों में " व्यास वाणी " " रागमाला " एवं " नवरत्न " और " स्वधर्म पद्धति " का उल्लेख किया जाता है । व्यास वाणी में कवि ने राधा कृष्ण की निकुंज लीला का माधुर्य भक्ति का वर्णन किया है । इनके काव्य में ऋतुवर्णन और श्रृंगार वर्णन भी समाविष्ठ है ।

6.7.14 गोकुलनाथ :-

गोस्वामी विठ्ठल नाथ के चौथे पुत्र गोकुलनाथ का जन्म 1606 में हुआ है । इन्होंने वल्लभ संप्रदाय के पुष्टि मार्ग का प्रचार किया । वार्ता साहित्य के प्रवर्तन का श्रेय इन्हीं को है । 87 इन्होंने " रसिक - राय ", " हरिधन " तथा " हरिदास " नामक ग्रन्थो की रचना की ।

---

87. हिन्दी साहित्य का प्रवृत्तिगत इतिहास - प्रताप नारायण टंडन पृ. - 185.

6.7.15 श्री भट्ट जी :-

श्री भट्ट जी के जन्मकाल के संबंध में अनेक मत भेद हैं। इनका जन्म 1595 सं और रचना काल 1625 संवत माना गया है। इनका जन्म एक ब्राह्मण परिवार में हुआ है। निंबार्क संप्रदाय के प्रमुख कवि हैं। श्री भट्ट जी का ब्रज भाषा में लिखा एक ही ग्रन्थ प्राप्त है " युगल शतक "। इसमें लगभग 100 पद हैं। इनमें श्रीकृष्ण की ब्रज लीलाएँ और राधा कृष्ण की युगल लीलाओं का मनोहर चित्रण है। युगल उपासना में राधा को प्रधानता दी गई है। इनके पदों में सखी भाव दृष्टिगोचर होता है। राम चन्द्र शुक्ल जी ने भट्ट जी की एक और छोटी सी पुस्तक " आदि - बानी " का भी उल्लेख किया है। 88

6.7.16 श्री रामराय :-

श्री रामराय का जन्म 1535 में हुआ माना जाता है। ये चैतन्य-संप्रदाय के प्रमुख कवि हैं। श्री रामराय संस्कृत और ब्रज भाषा के पंडित थे। ब्रज भाषा में लिखित उनकी " आदि वाणी " और " गीत गोविंद भाषा " उल्लेखनीय है। इनकी " आदि वाणी " में कुल 100 पद प्राप्त है। इन पदों में राधा कृष्ण की लीला का सरस गायन हुआ है। सखी भाव से राधा कृष्ण की उपासना की है।

6.7.17 श्री गदाधर भट्ठ :-

ब्रज भाषा के सुप्रसिद्ध कवि गदाधर भट्ट का जन्म 1570-80 माना जाता है। गदाधर भट्ट आन्ध्र प्रदेश के वेलनाटि तेलुगु ब्रह्मण माने जाते हैं। इनका निवास स्थान बुंदेल खण्ड माना जाता है। संस्कृत भाषा के साथ-साथ

---

88. हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ. 188.

ब्रज भाषा पर भी समान अधिकार रहा है। इनकी " धन माता " नामक ग्रन्थ का उल्लेख किया जाता है । इनके केवल 85 पद प्राप्त हैं।

6.7.18 सूरदास मदन मोहन :-

सूरदासमदन मोहन का जन्म 1570 से माना जाता है। इनके गुरु गोस्वामी जी है। इनकी रचनाओं का कोई प्रमाण नहीं है। बाबू-कृष्णदास ने इनके 105 पदों का संग्रह किया है। इनके पदों का प्रमुख विषय राधा कृष्ण को श्रृंगार लीलायें है।

6.7.19 ध्रुव दास :-

ध्रुवदास जी का जन्म संवत् 1630 माना जाता है। बचपन से ही राधाकृष्ण की युगल लीलाओं की ओर आकृष्ट थे। इनकी रचनाओं की संख्या अब 42 निर्धारित हो चुकी है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इनके 37 ग्रन्थों की सूची दी है। [89]

ध्रुवदास के ग्रन्थों की सूची [90]

1. जीवदशा लीला 2. मन शिक्षा लीला 3. ख्याल हुलास लीला 4. वैद्यज्ञान लीला 5. वृन्दावनसत लीला 6. बृहद बावन पुराण की भाषा लीला 7. भक्त नामावली लीला 8. सिद्धान्त विचार लीला 9. प्रीति चौवानी लीला 10. आनन्दाष्टम लीला 11. भजनाष्टक लीला 12. भजन कुण्डलिया लीला 13. भजनसत लीला 14. भजन श्रृंगार

---

89. हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ. 216.
90. हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास - पृ. 179 - 80.

लीला 15· मन श्रृंगार लीला 16· हित श्रृंगार लीला 17· सभा मंडल लीला 18· रस मुक्तावली लीला 19· रस हीरावली लीला 20· रस रतनावली लीला 21· प्रेमावती लीला 22· प्रिया जी नामावली लीला 23· रहस्य मंजरी लीला 24· सुख मंजरी लीला 25· रति मंजरी लीला 26· नेह मंजरी लीला 27· वन विहार लीला 28· रंग विहार लीला 29· रस विहार लीला 30· रंग हुआस लीला 31· रंग विनोद लीला 32· आनंद दशा विनोद लीला 33· रहस्यलता लीला 34· आनन्द लता लीला 35· अनुरागलता लीला 36· प्रेमशा लीला 37· रसानंद लीला 38· ब्रज लीला 39· जुगल ध्यान लीला 40· नृत्य विलास लीला 41· मान लीला 42· दान लीला ।

ध्रुवदास की वाणी वल्लभ संप्रदाय के सिद्धान्तों का उद्घाटन करने वाली वाणी है । इनमें श्रृंगार भावाभिव्यक्ति इतनी अधिक है कि रीति कालीन श्रृंगार वर्णन सा लगता है । माधुर्य भक्ति की तल्लीनता इनमें दिखाई देता है ।

6.7.20 रसखान :-

भक्ति युगीन कृष्ण काव्य की परंपरा में रसखान का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है । मुसलमान कवियों का कृष्ण काव्य अत्यन्त महत्व पूर्ण है । इनका जन्म संवत् 1615 माना जाता है । इनका पूरा नाम सैयद इब्राहीम रसखान है । किन्तु काव्य रचना में " रस खान " के रूप में प्रसिद्ध है । आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने " रस ग्रन्थावली " का प्रामाणिक संपादन किया जिसमें अधिकतर सामग्री प्राप्त है । इन्होंने गोस्वामी विट्ठल नाथ से दीक्षा ग्रहण की । इनकी दो कृतियाँ उपलब्ध हैं - प्रेम वाटिका और " सुजान रसखान " हैं । रसखान का कृष्ण काव्य एक सम्मिलित भूमि पर उपस्थित है । इनमें कृष्ण लीलाओं का

समावेश, प्रेममय भावना, भावुकता का संयोग है । " प्रेम वाटिका " में राधाकृष्ण का चित्रण करते हुए उनकी लीला में स्वयं सम्मिलित हो जाते हैं ।

6.7.21 मध्यकालीन अन्य कृतियाँ :-

मध्यकालीन अन्य कवि और कृतियों में नरोत्तमदास कृत सुदामा चरित्र, ध्रुव चरित्र और विचार माला राधिका नाथ कृत महावाणी, माधव दास " माधुरी कृत " केलिमाधुरी ", " नेही नागरीदास कृत " सिद्धान्त दोहावली, पदावली, रस पदावली, श्री कल्याण पुजारी कृत " पुजारीवाणी, स्वामी हरिदास कृत साधारण सिद्धान्त के पद, केलिमाला श्री जगन्नाथ गोस्वामी कृत अनन्य सेवनिधि नरहरि कृत रुक्मणी मंगल, छप्पय नीति और कवित्त संग्रह, टोडर मल्ल कृत स्फुट-नीति पद, बीरबल कृत स्फुट नीति पद, तानसेन कृत संगीत सार, राग - माला, और श्री गणेश स्त्रोत, गंग कवि कृत गंग पदावली गंग पचीसी तथा गंग रत्नावली, मनोहर कृत शत प्रश्नोत्तरी, जमाल कृत स्फुट दोहा रहीम कवितावली, रहिमन चन्द्रिका बरवय नायिका भेद, रहीम काव्य आदि उल्लेखनीय हैं । कादि कृत स्फुट नीति पद, बनारसी दास कृत अर्ध कथानक, नवरस, नाम माला, बनारसी विलास, ज्ञानवानी, सूक्ति मुक्तवली, पंचपद विधान आदि । लक्षण काव्यों में - कृपाराम कृत हित तरंगिनी, बलभद्र मिश्र कृत " नख शिख " और " रस विलास " मोहन लाल मिश्र कृत श्रृंगार सार, केशवदास कृत रसिक प्रिया, कवि प्रिय, राम चन्द्रिका, छन्दमाला, अलंकार मंजरी आदि उल्लेखनीय कृष्ण भक्ति काव्य हैं ।

6.7.22 राम भक्त कवि तुलसी - कृष्ण काव्य :-

अ) कृष्ण गीतावली :-

तुलसीदास का कृष्ण गीत काव्य है । इसमें ब्रज भाषा में रचित 61 पद हैं । इसमें कृष्ण की बाल्य चपलता और गोपियों का विरह वर्णन उद्धव संवाद, भ्रमर गीत तथा द्रौपदी के वस्त्र बढ़ाना आदि का वर्णन है । यह एक मुक्तक काव्य है । कृष्ण भक्ति से प्रभावित होकर इन्होंने कृष्ण गीतावली की रचना की जिसका उद्देश्य श्रीराम के ही अवतार श्रीकृष्ण की लीला का वर्णन कर राम भक्त और कृष्ण भक्त में समांजस्य सद्भावना और समन्वय बनाए रखना था ।

6.7.1 तेलुगु में कृष्ण भक्ति काव्य :-

यद्यपि तेलुगु साहित्य में कृष्ण भक्ति की अलग धारा दिखाई नहीं देती फिर भी वैष्णव भक्ति साहित्य के अन्तर्गत कृष्ण भक्ति से संबंधित कुछ रचनाओं का उल्लेख मिलता है । प्रमुख कृष्ण काव्य कवि और उनकी रचनाओं का संक्षिप्त विवरण आगे प्रस्तुत है ।

6.7.1.1 एर्राप्रगडा :-

14 वीं शब्दी में महा कवि एर्राप्रगडा कृत " हरि वंश " रेड्डी राजा प्रोलय वेमा रेड्डी को समर्पित है । यह काव्य महा भारत का अंश हरिवंशोपाख्यान का विस्तृत रूप है । [91] इसमें मुख्य रूप से श्रीकृष्ण की

---

91. आन्ध्र संस्कृति - तेलुगु अकादमी - पृ. 279.

जीवनी विस्तार से वर्णित है । श्री विष्णु के अन्य अवतारों का संक्षेप में वर्णन है । हरिवंश में वर्णित श्रीकृष्ण वीर रसावतार है । इसमें श्रीकृष्ण को विष्णु के अंश मानते हुए भी उनमें मानव सुलभ शक्ति तथा पुरुषत्व का प्रदर्शन किया गया है । हरिवंश में श्रीकृष्ण की श्रृंगार लीलाओं का सुन्दर चित्रण हुआ है । इसमें श्रीकृष्ण के द्वारा यादव राज्य की स्थापना, जय सपंथ वध, राज्य विस्तार तथा बन्धु प्रीति का वर्णन है । हरिवंश में व्रज वासियों का जीवन, गोपबाल, गोचरण आदि का जीवन्त चित्रण है । हरिवंश में श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं का भी सुन्दर चित्रण है । संध्या समय के गोधूली का वर्णन, चाँदनी रात में गोप गोपि का रास-विलास श्रीकृष्ण के माखन चोरी आदि का सजीववर्णन हरिवंश में हुआ है ।

हरिवंश के दो भाग हैं इसके पूर्व भाग में नौ आश्वास है जिनमें 2044 गद्य-पद्य है । उत्तर भाग में 10 आश्वास 2660 गद्य-पद्यों में प्रस्तुत है । [92] एर्रना के हरिवंश में प्रभावती प्रद्युम्न प्रसंग और हंस - डिबको पाख्यान नहीं मिलते हैं जिनका वर्णन संस्कृत हरिवंश में है । " एर्रन ने अपने काव्य को " विश्व पुराण " कहा है —

" समस्तवस्तु विस्तर प्रशंसबुगा " [93]

" कोरत बड कुंड ब्रत्यक्ष परिचिंत बैनीर । " [94]

92· तेलुगुं साहित्य समीक्षा - जी·नागय्या - पृ· 282·

93· हरिवंश पूर्व भाग - 1 - 49 / 1 - 50

94· - वही -

6.7.1.2 नाचन सोमनाथ :-

" उत्तर हरिवंश " नाचन सोमनाथ द्वारा रचित काव्य है। उत्तर हरिवंश छः आश्वासों का महा काव्य है। प्रथम आश्वास में नरकासुर वध, द्वितीया श्वास में कृष्ण के द्वारा ब्रह्मण की मृत सन्तान को पुनः प्राप्त कराने का प्रसंग तथा घंटाकर्ण नामक पिशाच-राजा का देवेन्द्र पद प्राप्त करना, उसके पश्चात शिवादि के लिए तपस्या कर कृतकृत्य होना वर्णित है। तृतीयाश्वास में पौन्ड्रक वासुदेव का वध है। चतुर्थाश्वास में हंस डिभक वृतान्त, पंचम तथा षष्टाश्वासों में उषापरिणय तथा बाणासुर का गर्व भंजन आदि प्रसंगों का वर्णन है। इसमें पारिजातापहरण, कुंभ - वध, प्रभावती प्रद्युम्न का विवाह, व्रजनाथ वध प्रसंगों को छोड दिया गया है।

6.7.1.3 बम्मेर पोतना : (1400 - 1450 ई.) :-

पोतन तेलुगु साहित्य में कृष्ण भक्ति के आधार स्तंभ है।[95] कवि शिरोमणि पोतना कृत " श्रीमदांध्रमहा भागवतम् " भक्ति की उच्च-कोटी की रचना है। श्रीरामचन्द्र की प्रेरणा से " भागवत " की रचना हुई और भागवत का श्री चरणों में समर्पण हुआ।[96] श्रीमदांआन्ध्र महा - भागवत संस्कृत भागवत का अनुसरण होते हुए भी स्वतंत्र अनुवाद है। काव्य सौष्ठव और रस की दृष्टि से कई प्रसंगों में परिवर्तन परिवर्द्धन हुआ है।

---

95. सूर और पोतना के काव्य में भक्ति तत्व - सी.एच. रामुलु - पृ.77.
96. तेलुगु साहित्य समीक्षा - पी.नागय्य - पृ. 458.

श्रीमद्‌आन्ध्र महाभागवत तेलुगु भक्ति साहित्य का गौरव ग्रन्थ है । इसे गजेन्द्र मोक्षमु, प्रहलाद चरित्र, वामन चरित, ध्रुवोपाख्यान अम्बरीषोपाख्यान रुक्मिनी मंगल, कुचेलोपाख्यान आदिका मार्मिक वर्णन हुआ है ।

" गजेन्द्र मोक्षम " प्रसंग में भक्ति का उत्कृष्ट रूप मिलता है । इसका काव्य सौन्दर्य भी विशेष उल्लेखनीय है । कवि अपने काव्य कला के द्वारा पाठक को भक्ति के भाव लोक में ले जाते हैं । " रुक्मणी-मंगल " में " रुक्मनी की मानसिक दशा और कृष्ण भक्ति का मार्मिक वर्णन मिलता है । श्रीकृष्ण के मथुरा चले जाने के बाद विरह वेदना तपित गोपिकाए कृष्ण ब्रज के कोने-कोने ढूडती हैं यहाँ श्रृंगार भक्ति का सुन्दर चित्रण किया गया है ।

" नल्लनिवाड्डु पद्‌मनयनंबुल वाड्डु कृपा रसंबबै
जल्लेडु वाड्डु मौलि परिसर्पित पिंचमु वाड्डु नव्दुरा
जल्लेडु मोमु वाड्डु वाडोकड्डु चेल्वल मान दनंबु बेच्चनो
मल्लियलारा मी पोदल माटुन लेडु कदंनम चेप्पडे !

भागवत - पू॰ भ॰ 1013

आन्ध्र भागवत में अनुराग भक्ति का प्रतिपादन हुआ है । पोतना को शैली में गंभीरता और सरलता है । पोतना की भाषा जन मानस को अपनी ओर खींचनेवाली है । पोतना कहते हैं कुछ लोगों के लिए तेलुगु गुण और कुछ लोगों के लिए संस्कृत गुण कुछ लोगों को दोनो के गुणों का मिश्रित रूप देकर उन सब का आदर प्राप्त किया है --

6.7.2 तुलनात्मक समीक्षा :-

हिन्दी और तेलुगु साहित्यों में कृष्ण भक्ति से संबंधित अनेक काव्यों की रचना हुई । जिस प्रकार हिन्दी में कृष्ण भक्ति की एक अलग शाखा दिखाई देती है उस प्रकार की कोई शाखा तेलुगु साहित्य में दिखाई नहीं देती फिर भी कृष्ण कथा को आधार बनाकर अनेक ग्रन्थ विभिन्न शैलियों में रचे गये हैं । हिन्दी में ब्रज भाषा में रचित कृष्ण काव्य का जितना महत्व है उतना ही तेलुगु में कृष्ण भक्ति प्रतिपादक साहित्य है । इसमें प्रमुखत: पोतना कृत " श्रीमद् आन्ध्र महा भागवत " की है । श्रीकृष्ण देव - रायलु कृत " आमुक्तमाल्यदा " भी कृष्ण भक्ति निरूपक काव्य है । हिन्दी में सूर कृत सूर सागर के समक्ष तेलुगु महाभागवत को रखा जा सकता है । तेलुगु के यक्षगानों में भी कृष्ण भक्ति का प्रतिपादन हुआ है । रस, अलंकार की दृष्टि से भी दोनों साहित्यों का महत्वपूर्ण स्थान है । इस प्रकार हिन्दी और तेलुगु में कृष्ण कथा प्रधान साहित्य का महत्व उल्लेखनीय है ।

6.8 तेलुगु साहित्य में अन्य प्रमुख कवि और कृतियाँ :-

तेलुगु साहित्य में शैव, राम और कृष्ण भक्ति प्रधान काव्यों के अतिरिक्त कई वैष्णव धर्म के अनुयायियों ने विष्णु के अन्य अवतारों को भी अपने काव्य वस्तु बनाई है । यही नहीं अन्य लौकिक विषयों और पुराणों से वस्तु को ग्रहण कर अनेक काव्यों की रचना की । और साथ-साथ अनेक लक्षण ग्रन्थों की रचना भी । तेलुगु में अनेक कवयित्रियों द्वारा रचित साहित्य भी इसी कोटी में रखा जा सकता है ।

जा सकता है । कुशलवोपाख्यान, चन्द्रहास चरित्र, प्रमीला र्जुनीय आदि प्रसंगों का पिन वीरना कवि ने जैमिनी भारत में मार्मिक चित्रण किया है । [98]

6.7.1.6 श्रीकृष्ण देवराय (1487 - 1530) :-

श्रीकृष्ण देवराय विजय नगर के प्रसिद्ध साम्राट थे । ये भारतीय साहित्य एवं संस्कृति के रक्षक माने जाते हैं । आपनेसाहित्य सेवा में इनकी राजा भोज से तुलना की जाती है । अष्ट दिग्गजों का पोषण ही नहीं स्वयं भी अनेक काव्यों की रचना की । इनमें " आमुक्त माल्यदा " आन्ध्र साहित्य का अपूर्व प्रबन्ध काव्य है । इसी को " विष्णु - चित्तीयमु " भी कहा जाता है । [99] आमुक्त माल्यदा सात आश्वासो का प्रबन्ध है । इसमें श्रीरंगनाथ (श्रीकृष्ण) गोदा देवी का प्रणय वृत्तान्त है ।

श्री विलपुत्तूर पाण्डय राज्य का प्रधान नगर था । विष्णु-चित्त नामक भक्त हर दिन तुलसी वन से तुलसी मालाएँ लेकर भगवान की अर्चना किया करता था । विष्णु चित्त को एक दिन तुलसी वन में गोदा देवी प्राप्त हुई । उन्होंने उसे पुत्री वत स्वीकार किया । विष्णु-चित्त की भगवान के प्रति वात्सल्य भक्ति है । गोदा ने कृष्ण भक्ति की अनेक गीतों की रचना की । उनमें तिरुप्पावै प्रमुख रचना है । गोदा ने श्रीकृष्ण को अपना पति मान कर उनकी पूजा पाठ, भजन कीर्तन किया करती रही । विष्णु चित्त के लिए वह रोज पुष्प मालाएँ गूँथती थी,

---

98. आन्ध्र साहित्य चरित्र - पिंगलि लक्ष्मी कांतम् - पृ. 491.
99. तेलुगु साहित्य समीक्षा - जी.नागय्या - पृ. 30 (द्वितीय भाग)

जिन्हें विष्णुचित्त रंगनाथ स्वामी को समर्पित करते थे। गोदा देवी प्रतिदिन तुलसी माला बनाकर स्वयं पहनकर दर्पण में देखकर पश्चात् उसे पिता को भगवदार्चना के लिए देती थी। एक दिन माला में केश के अंश देखकर उसे दूषित मानकर विष्णुचित्त उसे भगवान को समर्पित नहीं किया। किन्तु दूसरे दिन उसे रंगनाथ स्वामि ने स्वप्न में दर्शन देकर कहा कि "गोदा के पहने हुए मालाओं को ही मैं स्वीकार करूँगा।" बाद में गोदा और श्रीरंगेश्वर का विवाह भी बडी जोर दार से संपन्न हुआ। इसप्रकार "अमुक्तमाल्यादा" श्रीकृष्ण की मधुर भक्ति का काव्य है। इसमें यमुनाचार्य के द्वारा तत्व चिंतन तथा भक्ति की चर्चा है। विष्णुचित 12 आलवारों में एक माने जाते हैं। [100] इसमें प्रसंग वश "खण्डिकोशिक्यजो पाख्यान" यमुनाचार्य चरित्र, मालदासरि कथा आदि का भी वर्णन है। इसमें वैष्णव भक्ति को महिमा स्थापित की गई।

6.7.1.7 तेनालि रामकृष्ण :-

श्री कृष्ण देवरायलु के "भुवन विजयमु" के अष्ट दिग्गज कवियों में विकट कवि" या "हास्य कवि" के रूप में प्रसिद्ध है। कृष्ण भक्ति से संबंधित इनका "पांडुरंग महात्म्यम्" विशेष उल्लेखनीय है। शैव धर्मी होते हुए इन्होंने वैष्णव धर्म स्वीकारा पश्चात् "पांडुरंग महत्म्यम्" की रचना की। [101] श्रीकृष्ण स्तुति से इस काव्य का आरम्भ किया गया है। इसमें पांडरंगमाहात्यमु" स्थल देवता, तीर्थ आदि की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

---

100. आंध्र संस्कृति --- अकादमी - पृ. 286.
101. तेलुगु साहित्य समीक्षा - द्वितीय भाग - जी.नागय्य - पृ. 114.

भीमी नदी के किनारे स्थितपुंडरीक क्षेत्र पर स्थित पांडरंग स्वामी की लीलाएँ इसमें वर्णित है । इस काव्य में पांडुरं क्षेत्र की महिमा, पुंडरीक-कथा निगमशर्मोपाख्यान, श्रीकृष्णावतार चरित्र, श्री राधादेवी चरित्र, काक,-हंस और सर्प, भ्रमर के मोक्ष संबंधी कथाएँ, सुशीला नामक पतिव्रता की कथा, सुशर्मोपाख्यान धर्मराज आदि पांडवों का पांडुरंग क्षेत्र दर्शन और आयुत-नियुत मुनिकुमारों की कथा आदि नौ कथाओं का सुन्दर और मार्मिक वर्णन है । साधारण प्रबन्ध काव्यों की तरह इसमें श्रृंगार रस की वर्णन दिखाई नहीं देता । शान्त रस का अधिक प्रयोग हुआ है । यह पंढरिपुर क्षेत्र पालक पांडुरंग का माहत्म्य वर्णित करनेवाला भक्ति रस पूर्ण महाकाव्य है ।

6.7.1.8 नंदि तिम्मन :-

श्रीकृष्ण देवरायलु के अष्ट दिग्गजों में नंदि तिम्मना दूसरे प्रधान कवि माने जाते हैं । इनका " पारिजातापहरण " संस्कृतके हरिवंश के आधार पर रचित है । [102] इसमें श्रीकृष्ण साधारण मनुज के रूप में अवतरित होकर लोक व्यवहार के अनुकूल सहस्राधिक कन्याओं का वरण कर बहुभार्याओं से अनेक प्रसंगों में कष्ट झेलते हुए दर्शन देते हैं । सत्य भामा उनकी प्यारी रूपसी पत्नी है । श्रीकृष्ण सत्य भामा की आँखों के इशारें पर चलते हैं । प्राण-प्रिय प्रणयेश्वरी को शान्त करने के लिए वे स्वर्ग के पारिजात वृक्ष को धरती पर ले जाते हैं ।

नरकासुर वध के बाद नारद ने पारिजात पुष्प लाकर श्रीकृष्ण को भेंट के स्वरूप दिया । श्रीकृष्ण ने उसे रुक्मणी को दिया । उस पुष्प की गौरवगाथा नारद ने रुक्मणी को सुनाई । सत्यभाम स्वभाव

---

102. सूर और पोतना के काव्य में भक्ति तत्व - सी.एच.रामुलु -पृ.78.

से ही अहंकारी एवं क्रोधी है । इसी कारण वह रुक्मणी का यह गौरव सह नहीं सकती । कुपित सत्यभामा श्रीकृष्ण से " पारिजात वृक्ष को ही लाने को विवश करती है । क्रोधित सत्यभामा श्रीकृष्ण को लात मारती है । किन्तु श्रीकृष्ण रसिक शिरोमणि होने के कारण सत्यभामा से पूछते हैं अपने कठिन शरीर स्पर्श से कोमल चरणों को चोट तो न लगी । इस प्रकार पारिजातपहरण तेलुगु साहित्य जगत में प्रसिद्ध है । तिम्मना कवि अपनी मृदु शैली के कारण साहित्य लोक मे " मुक्कु तिम्मना " के नाम से प्रसिद्ध हैं ।

6.7.1.9 पिंगलपूडि एल्लनार्थ :-

16 वी शती के एल्लनार्थ " राधा माधवम् " तारक ब्रह्म राजीयमु और विष्णु माया नाटक नामक तीन कृतियों की रचना की । राधा - माधव विरूदांकित कवि है । इसमें राधा को सहस्रगों को पुत्री के रूप में कल्पित किया । ब्रह्मवैवर्त पुराण की कथा को बदल अपनी कल्पना से कथा को आगे बढ़ाया । एल्लनार्थ कृत राधा माधव में लौकिक श्रृंगार दर्शाता है । राधा को स्वीया के रूप में प्रतिष्ठित प्रथम तेलुगु प्रबन्ध है । इसमें श्रीकृष्ण श्रृंगार नायक ही नहीं परब्रह्म के स्वरूप है । [103] एलनार्थ कृत " विष्णु माया नाटक " पांच आश्वासों का प्रबन्ध काव्य है । कवि ने इसे " नाटक " का नाम दिया है । इसमें विष्णु की लीला का प्रभाव, विष्णु लीला को धिक्कार करने वाले मुनि, ब्रह्मनारद कथाएं वर्णित है । इसमें पुंडरीक कथा, चंद्रदमन कथाओं का भी वर्णन है ।

---

103. तेलुगु साहित्य समीक्षा नागया - पृ. 228 (द्वितीय भाग)

6.7.1.10 वेलगपूडि वेंगयामात्य (16 वी शती) :-

वेंगय्य कवि ने " श्री कृष्ण कर्णामृत " नामक तीन आश्वासों के प्रबन्ध की रचना की ।

6.7.1.11 हरिभट्ट (16 वी· शती) :-

श्री हरिभट्ट कवि ने बराह पुराण, मत्स्य पुराण, भागवत के षष्टम एकादश, द्वादश स्कन्धों का अनुवाद किया । इन्होंने अपना एकादश, द्वादश स्कंधों को आंजनेय स्वामि को अर्पित किया । षष्टम स्कन्ध पुरी जगन्नाथ को समर्पित है ।

6.7.1.12 तेलुगु में कृष्ण भक्ति संबंधित यक्षगान :

6.7.1.12.1 विजयराघव नायक (ई· 1632 - 1675) :-

तंजाउरू के शासक राजा रघुनाथ नायक के पुत्र विजय राघव नायक का समय यक्षगानों का स्वर्ण काल कहा जाता है । [104] राजा रघुनाथ नायक ने " रुक्मिणी कृष्ण विवाह " नामक यक्षगान की रचना की लेकिन यह ग्रन्थ अनुपलब्ध है । विजय राघव नायक ने स्वयं यक्षगानों की रचना ही नहीं की बल्कि दरबारी कवियों से भी रचना कराई । इनके द्वारा रचित यक्षगानों में - 1· राजगोपाल - विलास, चेंगमल - बल्ली परिणय, गोवर्दनोद्धार, रतीमन्मथ विलास, रास क्रीडा नवगीत, पारिजातपहरण, रुक्मिणी कल्याण,

---

104· आन्ध्र संस्कृति -- अकादमी - पृ· 306·

राधा माधव, धनाभिराम, सत्य भामा विलास, उषा-परिणय, दक्षिण-द्वारका स्थल वर्णन, कालिय मर्दन, प्रहलाद चरित्र, पूतन हरण, विप्रनारायण-चरित्र, समुद्र मंथन, कृष्ण विलास, मोहिनी-विलास, और कंस-विजय आदि हैं । 105 इनमें अधिकतर कृष्ण भक्ति से संबंधित यक्षगान ही है । इनमें " गोवर्द्धनोद्धार " में श्रीकृष्ण के द्वारा इन्द्र का गर्व भंग, गोवर्द्धन पर्वत पूजा, गोप बालों का उद्धार आदि का वर्णन है । पारिजातापहरण " सत्यभामा " गर्व भंग कृष्ण को लात मारना, कृष्ण की चमत्कार पूर्ण बातों से सत्यभामा से वार्तालाप आदि है, इनका " रुक्मणी कल्याण " अनुपलब्ध है । " राधा माधव " में राधाकृष्ण का प्रणय लीला वर्णित है । " पूतना हरण " में श्रीकृष्ण का पूतना को मारना इसकी कथा वस्तु रही । " कालीय मर्दन " में श्रीकृष्ण के द्वारा कलिय भुजंग का मर्दन प्रसंग वर्णित है ।

6.7.1.13 मध्यकालीन अन्य कृष्ण भक्ति प्रधान काव्य :-

मध्यकाल की अन्य रचनाओं में तिक्कना कृत कृष्ण शतक, नादेंडला-गोपना कृत कृष्णार्जुन संवाद, चेंगल्वा कालय्या कृत राज गोपाल चरित, पसुपुलेटि रंगाजम्मा कृत भागवत संग्रह, क्षेत्रय्या के पद (मधुर भक्ति प्रधान), दोनूरु कोनेरुनाथ कृत बाल भागवत, कृष्ण नायक कृत राधामाधव संवादम् मन्नारदेव कृत - रुक्मणी विवाह, नारायण तीर्थ कृत पारिजातापहरण, चोडिगोंड धर्मन्न कृत चित्र भारतम्, तरिगोप्पुल मल्लना कृत चन्द्र भानु - चरित्र आदि तेलुगु के कृष्ण भक्ति प्रधान काव्य है । इनका तेलुगु साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है ।

---

105. आंध्र संस्कृति - अकादमी - पृ. 306.

6.7.2 तुलनात्मक समीक्षा :-

हिन्दी और तेलुगु साहित्यों में कृष्ण भक्ति से संबंधित अनेक काव्यों की रचना हुई । जिस प्रकार हिन्दी में कृष्ण भक्ति की एक अलग शाखा दिखाई देती है उस प्रकार की कोई शाखा तेलुगु साहित्य में दिखाई नहीं देती फिर भी कृष्ण कथा को आधार बनाकर अनेक ग्रन्थ विभिन्न शैलियों में रचे गये हैं । हिन्दी में ब्रज भाषा में रचित कृष्ण काव्य का जितना महत्व है उतना ही तेलुगु में कृष्ण भक्ति प्रतिपादक साहित्य है । इसमें प्रमुखतः पोतना कृत " श्रीमद् आन्ध्र महा भागवत " की है । श्रीकृष्ण देव - रायलु कृत " आमुक्तमाल्यदा " भी कृष्ण भक्ति निरूपक काव्य है । हिन्दी में सूर कृत सूर सागर के समक्ष तेलुगु महाभागवत को रखा जा सकता है । तेलुगु के यक्षगानों में भी कृष्ण भक्ति का प्रतिपादन हुआ है । रस, अलंकार की दृष्टि से भी दोनों साहित्यों का महत्वपूर्ण स्थान है । इस प्रकार हिन्दी और तेलुगु में कृष्ण कथा प्रधान साहित्य का महत्व उल्लेखनीय है ।

6.8 तेलुगु साहित्य में अन्य प्रमुख कवि और कृतियाँ :-

तेलुगु साहित्य में शैव, राम और कृष्ण भक्ति प्रधान काव्यों के अतिरिक्त कई वैष्णव धर्म के अनुयायियों ने विष्णु के अन्य अवतारों को भी अपने काव्य वस्तु बनाई है । यही नहीं अन्य लौकिक विषयों और पुराणों से वस्तु को ग्रहण कर अनेक काव्यों की रचना की । और साथ-साथ अनेक लक्षण ग्रन्थों की रचना भी । तेलुगु में अनेक कवयित्रियों द्वारा रचित साहित्य भी इसी कोटी में रखा जा सकता है ।

6.8.1 तिक्कना सोमयाजी :-

तिक्कना राजा मनुमसिद्दि के दरबार में आमात्य के पद पर नियुक्त थे। अत: उनमें काव्य शास्त्रों के अतिरिक्त राजनीति का भी असाधारण पाण्डित्य था। तिक्कना ने नन्नया द्वारा रचित " महा - भारत " के विराट पर्व से लेकर पन्द्रह पर्वों की रचना की। [106]

महाभारत को तिक्कना ने प्रबन्ध काव्य कहा और उसमें हर एक पर्व को उन्होंने प्रबन्ध कहा। [107] विराट पर्व के आगे की कहानी दौत्य राजनीतिक और युद्ध से संबंधित होने के कारण तिक्कना ने आत्मीयता के साथ इसका वर्णन किया। इनकी रचना की विशेषता है कि नाटकीयता। उन्होंने मानव मन का सूक्ष्म निरीक्षण किया यह भी उनकी विशेषता है।

" महाभारत " के अतिरिक्त उन्होंने निर्वचनोत्तर रामायण ", " विजय सेना " नामक प्रबंध काव्यों की रचना की। तिकना को उभय कवि मित्र की उपाधि है। [108]

6.8.2 माल घटिक केतना (1200 - 1280 ई.) :-

तिक्कना के सम-कालिकों में केतना प्रमुख हैं। उनके सहचर्य में ही इन्हें प्रसिद्दि मिली। केतना ने संस्कृत दण्डी कृत दशकुमार चरित्र " को आधार बना कर " दश कुमार चरित " नामक चंपू काव्य की रचना की। 12 आश्वासों का काव्य है। यह काव्य तेलुगु का प्रथम कथा काव्य है। इसे केतना से तिक्कना को समर्पित किया।

---

107. आन्ध्र साहित्य चरित्र - पिंगलि लक्ष्मी कांतम - पृ. 209.
108. तेलुगु साहित्य समीक्षा - नागय्य - पृ. 257.

6.8.3 मारना ॥ सन् 1295 – 1323 ई॰ ॥ :-

मारना तिक्कना सोमयाजी के शिष्य और तिक्कनामात्य के पुत्र थे। आपने " मार्कंडेय पुराण " की रचना की है और काकतीय द्वितीय प्रताप रुद्र को समर्पित किया। अष्टादश पुराणों में " मार्कंडेय पुराण " सप्तम् है। इनमें हरिश्चन्द्र वृत्तान्त, वरूदिनी-प्रवराख्य कथा, मदालसा चरित, कुवलयाश्व कथा, वहुलाश्व चरित्र, बहुल उत्तम वृतान्त, रुचि प्रजा पति कथा, मानिनी राज वर्धन कथा, मुरुत्त वृत्तान्त आदि का मार्मिक वर्णन है। यह काव्य अनेक कथा काव्यों की रचना का हेतु बना है।[109]

6.8.4 मंचना :- ॥ 1300 ई॰ ॥ :-

मंचना कृत " केयूरा बाहु चरित्र " चार आश्वासों का रसवत्तर काव्य है। यह चोल राजा मंत्री गुडन मंत्री को समर्पित है। कंलिग के राजा केयूरबाहु का वृतान्त है। इसमें मंचना ने पंचतंत्र और हितोपदेश से भी कुछ कथाओं को ग्रहण कर कुल 22 नीति कथाओं को केयूराबाहु चरित्र में प्रस्तुत किया है।

6.8.5 बद्देना : ॥ 1261 ई॰ ॥ :-

" कमलासन " उपाधि प्राप्त बद्देना ने तेलुगु में " नीति शास्त्र मुक्तावली " नामक राजनैतिक ग्रन्थ की रचना की। इसमें राजनीति, मंत्रणापद्धति, उपाय पद्धति आदि नैतिक सूत्रों से संबंधित पद हैं। बद्देना ने " सुमति शतक " की भी रचना की जो तेलुगु प्रान्त की जनता में व्याप्त है।

109· तेलुगु साहित्य समीक्षा – नागय्य – पृ॰ 266·

6.8.6 कृष्णमाचार्य :-

13 वीं शताब्दी के कृष्णमाचार्य तेलुगु के प्रथम वचन काव्यकार है । 110 इनके " सिंहगिरि वचन " और " नरहरि वचन " प्रमुख है ।

6.8.7 शिव देवय्या :-

काकतीय साम्राज्य के गणपति देव और रानी रुद्रम देवी तथा प्रतापरुद्र के राज्य काल में शिव देवय्या ने मंत्री पद में रहकर आदर प्राप्त किया । इन्होंने " पुरुषार्थ " नामक नीति शास्त्र की रचना की । " देवधर्मणि " नामक शतक की रचना भी शिव देवय्या की मानी जाती है । इसमें " शिव देवधीमाण " मुकुट है ।

6.8.8 भास्करुनि केतना :-

केतना कवि ने वाणभट्ट की " कादम्बरी " को तेलुगु में गद्य-काव्य के रूप में रचा । यह ग्रन्थ पूरा उपलब्ध नहीं है । " कादम्बरी " के कुछ ही अंश प्राप्त होते हैं जिनका उल्लेख कस्तुरि रंग कवि " आनन्द-रंगर्भाट छन्द " में प्रस्तुत किया है । 111

6.8.9 कमलनाभमात्य :-

श्रीनाथ के पितामह कमलानाभामात्य ने " पद्मपुराण संग्रह " की रचना की यह श्रीनाथ की रचनाओं से पता चलता है ।

---

110. तेलुगु साहित्य समीक्षा - डा. पी. नागय्या - पृ. 270.
111. तेलुगु साहित्य समीक्षा - डा. पी. नागय्या - पृ. 272.

6.8.10 लक्क भट्ट :-

काकतीय साम्राज्य के कवियों में लक्क भट्ट एक है। इन्होंने " मुद्रामात्य " नामक नीति शास्त्र की रचना की लेकिन इसकी केवल 32 पद्य " सकल नीति सम्मत " में उद्धृत है।

6.8.11 एर्रा प्रगडा :-

14 वीं शताब्दी के " प्रबन्ध परमेश्वर " बिरुदांकित कवि एरना ने महा भारत के अरण्य पर्व और नृसिंह पुराण की रचना की। " महा-भारत " के अरण्य पर्व के चतुर्थ अश्वास के 142 के पद्य के बाद के पद्यों में एर्रना की शैली दिखाई देती है।[112] " नृसिंह पुराण " विष्णु के " लक्ष्मी नरसिंहावतार " की पुराण गाथा है। इसमें ब्रह्मांडादि पुराणों में वर्णित नरसिंह कथा और अहोभिल माहात्म्य का वर्णन है। यह पांच आश्वासों में रचित प्रबन्ध काव्य है। एरना ने स्थल पुराण रचना का श्री गणेश किया है। इन के बाद रचे गये स्थल पुरानों, क्षेत्र महात्म्यों पर एर्रना का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

6.8.12 राविपाटि त्रिपुरांतक ‡ 1380 ई॰ ‡ :-

इन्हें रावीपाटि तिप्पना भी कहते हैं। इन्होंने " मदन विजय " और " चन्द्र तारावली " तथा संस्कृत में " प्रेमाभि रामम " की रचना की। " मदन विजय " आठ आश्वासों का काम शास्त्र ग्रन्थ है। इस काव्य में

---

112. तेलुगु साहित्य समीक्षा - आन्ध्र साहित्य चरित्र - नागय्या - पृ॰286॰ पिंगलि लक्ष्मी कांत - 281॰

संस्कृत " कोक्कोकम् " की विषय वस्तु को स्वीकारा गया है। यह अनुपलब्ध है। " चंद्रतारावली " 27 पद्यों की चाटु कृति है। इसके केवल चार पद्य ही उपलब्ध हैं।

6.8.13 गणपनाराध्य ‖ 14 वी• शताब्दी ‖ :-

गणपनाराध्य ने " सर्वशास्त्र " नामक लघु द्विपद काव्य की रचना की। यह एक वेदान्त ग्रन्थ है। इसमें योग शास्त्रों का विवरण है। डा• नेलटूरि वेंकट रमणय्य ने इस ग्रन्थ को प्रथम सूचना दी। [113]

6.8.14 दोनयामात्य ‖ 1350 ई• ‖ :-

दोनयामात्य कवि ने " सस्यानन्द " नामक वर्षा शास्त्र ग्रन्थ की रचना की। इसके चार आश्वासों में 228 पद्य है। वर्षा की पूर्व सूचना और ज्योतिष शास्त्र के अनुसार प्रकृति में होने वाले परिवर्तनों का इसमें सूचना है। इनकी " सर्वलोकाश्रय " नामक ग्रन्थ आज अनुपलब्ध है।

6.8.15 चिम्मपूडि अमरेश्वर ‖ 1350 ई• ‖ :-

कूचिमंचि तिम्म कवि का " सर्व लक्षण सार संग्रह " लक्षण ग्रन्थ है। वेदूरि प्रभाकर शास्त्री ने प्रबन्ध रत्नावली में अमरेश्वर कवि के " विक्रम सेन " काव्य का उल्लेख किया है।

113• गणपनाराध्य - निबंध - भारती 12 सपु - पृ• 29 - 30

6.8.16 शरभांकु :-

शरभांक केवल कवि ही नहीं प्रताप रुद्र के मंत्रिगण में एक था । प्रतापरुद्र को जब मुसलमानों ने कैदी बनाया तब शरभांक ने मुसलमानों को खरी-खोटी सुनाते हुए अनेक पद्यों की रचना की । तेलुगु में इन्हें " तिट्टु " (गाली) पद्य कहते हैं । 114

6.8.17 पेद्दयामात्य (1300 ई॰) :-

पेद्दयामात्य द्वितीय तिक्कराजु के दरबारी कवि और उद्दंड पंडित हैं । आशु कविता, अवधान प्रदर्शन में और प्रबन्ध लेखन में भी पंडित हैं । इनकी रचनाएँ अनुपलब्ध है ।

6.8.18 पशुपति नपनाथ कवि (1369) :-

पद्मनायक प्रभु प्रथम अनपेतनायक के दरबारी कवि हैं। इन्होंने तेलुगु में " विष्णु पुराण " की रचना की और संस्कृत में " मदन विलास " । परन्तु दोनों अनुपलब्ध हैं ।

6.8.19 श्रीनाथ (1385 - 1475) :-

तेलुगु साहित्य में उच्च कोटि के साहित्यकारों में श्रीनाथ का नाम आदर के साथ लिया जाता है । इन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना की । " कवि सार्वभौम " की उपाधि प्राप्त की । इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ है -

अ) **मरुत्तराट चरित्र :-**

यह श्रीनाथ के बचपन की रचना है । श्रीनाथ ने अपना " काशी-खण्ड " में इसे अपने बचपन की रचना कही । " मार्कंडेय पुराण " से मारुत्त राजा की कहानी को स्वीकारा है ।

आ) **शालिवाहन सप्त सती :-**

हाल कृत " गाथा सप्त सती " के आधार पर श्रीनाथ कवि ने " शालिवाहन सप्त सती " की रचना की । यह काव्य पूर्णत: पद्य रूप है । श्रृंगार रस की मात्रा कुछ अधिक प्रयोग हुआ है । श्रीनाथ की सप्त सती आज अप्राप्त है ।

इ) **श्रृंगार नैषधमु :-**

यह श्रीहर्षनैषध का तेलुगु अनुवाद है । इस रचना में श्रृंगार रस छलकता मिलता है । यह आठ आश्वासों का महा काव्य है ।

ई) **क्रीडाभिरामम् :-**

क्रीडा संबन्धी विषयों से भर पूर वीथि रूपक है । यह त्रिपुरांतक कवि कृत संस्कृत " प्रेमाभिरामम् " का तेलुगु रूपान्तरण है । इसमें कासल्नारि-गोविन्द मंचन शर्मा नामक श्रोत्रिय युवक और उसका मित्र दोनों रात दिन एक-शिला नगर में विलासपूर्ण विहार करते हैं । वहाँ की विशेषताओं, विनोद पूर्ण दृश्यों श्रृंगार पूरित केलि का वर्णन ही इसका प्रधानांश है । तत्कालीन सामाजिक स्थिति का परिचय इससे मिलता है ।

3) पलनाटि वीर चरित्र :-

यह तेलुगु में सर्व प्रथम वीर गाथा काव्य है। "पलनाटि वीर-चरित्र" में 11 प्रकरण हैं। पिंगलि लक्ष्मी कान्तम जी के अनुसार पलनाटि-वीर चरित्र की रचना एक कलम से नहीं हुई। [114] श्रीनाथ का यह ऐति-हासिक द्विपद काव्य है। इसे पलनाटि भारतम" भी कहते हैं।

श्रीनाथ की अन्य रचनाओं में "भीम खण्डम्", "काश्मराजु-कथा" आदि है। श्रीनाथ के 12 शिला लेखों का उल्लेख भी मिलता है। इसके अतिरिक्त अनेक "मुक्तक पद्यों की रचना भी की।

6.8.20 बम्मेर पोतना ﴾1420 - 1480 ई.﴿ :-

"बम्मेर पोतना का तेलुगु भक्ति तत्व प्रचार में आदर के साथ लिया जाता है। इनकी भोगिनी दण्डकम्, प्रसिद्ध श्रृंगार काव्य है। इस काव्य की रचना से पोतना की भक्ति को कोई कलंक नहीं लग सकता। सर्वज्ञ सिंग भूपाल को गोपाल देवोत्सव में भोगिनी नामक वेश्या देखकर उस पर आसक्त होती है। माँ के रोकने पर भी भोगिनी किसी तरह नायक से मिलकर उसे स्वीकार करने की याचना करती है। सिंग भूपति ने भोगिनी को हाथी पर बिठाकर घुमाता है उसे प्रियतमा के रूप में स्वीकार करता है। यही प्रेम कथा दण्डक में है।

---

114. आन्ध्र साहित्य चरित्र - पृ. 412.

6.8.21 मडिगि सिंगना (1375 – 1455) :-

सिंगन कवि ने तेलुगु में पद्मपुराण (उत्तर कांड), ज्ञान वशिष्ठ, सकल नीति समगत नामक रचनाएँ की । " सकल नीति सम्मत " नैतिक सूत्रों से युक्त काव्य है ।

6.8.22 जक्कना कवि (1380 – 1440 ई॰) :-

पेरंराजु जक्कना कृत " विक्रमार्क चरित्र " आठ आश्वासों का अपूर्व प्रबन्ध काव्य है । इसे उन्होंने सिद्दय मंत्री को समर्पित किया । " विक्रमार्क चरित्र " प्रसिद्ध विक्रमार्क का ऐतिहासिक काव्य नहीं है । यह विक्रमार्क पर लिखा गया चित्राख्यान है । यह संस्कृत विक्रमार्क-चरित्र का अनुवाद भी नहीं है । यह जक्कन की स्वतंत्र रचना है । कथा काव्य होते हुए प्रबन्ध शैली में है ।

6.8.23 अनन्तामात्य (14 वीं॰ शती) :-

अनन्तामात्य कृत " भोज राजीयम् ", " छन्दोदर्पण ", " रसाभरण " प्रसिद्ध रचनाए है । इनका " भोज राजीयम् " 7 आश्वासों का कथा काव्य है । ऐतिहासिक पुरुष भोज का वृतान्त ही इसका वृतान्त है । यह अनेक कथाओं का संग्रह है । छन्दोदर्पण " 4 आश्वासों का छन्द शास्त्र ग्रन्थ है । " रसाभरण " भी चार आश्वासों का अलंकार शास्त्र ग्रन्थ है । रस का स्पष्ट विवरण इस ग्रन्थ में प्राप्त है ।

6.8.24 गौरना (1380 - 1450 ई.) :-

"हरिश्चन्द्रोपाख्यान" गौरना कवि का द्विपद काव्य है। संस्कृत में उन्होंने लक्षण दीपिका नामक छन्द शास्त्र ग्रन्थ की रचना की। "हरिश्चन्द्र की कथा को काव्य वस्तु के रूप में स्वीकार करने वाले कवियों में गौरना प्रथम है। इसमें वेदपुराणों की नरमेध वृत्तान्त को पूरी तरह से छोड दिया।

6.8.25 दग्गुपल्लि दुग्गना (1465 ई.) :-

दुग्गना कृत कांचिपुर माहत्म्य, नाचिकेतोपाख्यान विशेष उल्लेखनीय हैं। "नासिकेतोपाख्यान" में कवि अपने को श्रीनाथ के बन्धु होने के कारण ही काव्य वैशिष्ट्य प्राप्ति की बात करते हैं। "कांचीपुर-माहात्म्य" में कांची पुरेश्वर की कथा का वर्णन है। यह ग्रन्थ अब अनुपलब्ध है। "नाचिकेतो पाख्यान" शान्त रस प्रधान ज्ञानोपदेशक काव्य है। धर्माचरण का निरूपण ही इस काव्य की विशेषता है।

6.8.26 दूबगुंट नारायण (1470 ई.) :-

नारायण भट्ट द्वारा संस्कृत में रचित पंचतंत्र का नारायण कवि ने तेलुगु में अनुवाद किया। नारायण कवि अपने पंचतंत्र को उदयगिरि के राजा बसवराजु को समर्पित किया। पंचतंत्र में अनेक नीति कथाओं का चित्रण है।

6.8.27 पिल्ललमर्रि पिनवीरभद्र ॥ 1480 ई॰ ॥ :-

श्रीनाथ के समकालिक और पंडित वीरभद्र द्वारा " नारदीयम् " माघ माहात्म्य, मानसोलास " नामक ग्रन्थों का उल्लेख है। श्रृंगार शाकुन्तलम् की अवतारिका ॥ भूमिका ॥ में इसका उल्लेख स्पष्ट है।[115] वीरभद्र कवि की मुख्य कृतियों में श्रृंगार शाकुन्तलम् उल्लेखनीय है। यह चार आश्वासों का प्रबन्ध काव्य है। कालिदास कृत " अभिज्ञान शाकुन्तलम " इनका आधार रहा है। इसके वियोग पक्ष को उन्होंने छोड दिया है।

6.8.28 नंदि मल्लया, घंट सिंगना ॥ 1450 - 1520 ई॰ ॥ :-

इन युगल कवियों ने " प्रबोधचन्द्रोदय, वराहपुराण, और क्ष्वुलाष्टम ग्रन्थों की रचना की। इनका " प्रबोध चन्द्रोदय " 5 आश्वासों का सुन्दर श्रव्य काव्य है। इसमें सर्व वेदान्त सार, सुस्थिर ज्ञान के लिए मार्ग दर्शक, नव रसाश्रय और षड्दर्शनों का अपूर्व संयोग हुआ है। यह शान्त रस प्रधान काव्य है।[116] " वराह पुराण " 12 आश्वासों का काव्य है। वराह पुराण के पूर्व भाग का ही इन्होंने तेलुगु में अनुवाद किया।

6.8.29 कोरवि गोप राज ॥ 15 वी शती ॥ :-

गोपराज कृत सिंहासन द्वात्रिंशिका 12 आश्वासों का सरस कथा काव्य है। यह काव्य हरिहर नाथ को समर्पित किया गया है। राज

---

115. तेलुगु साहित्य समीक्षा - जी॰नागय्या - पृ॰ 506.
116. प्रबोध चन्द्रोदय - पृ॰ 1 - 21.

भोज विक्रमार्क सिंहासन अधिरोहनार्थ कही गई 32 कथाओं का वर्णन है । तत्कालीन सामाजिक स्थिति की ज्ञानकारी के लिए उपयुक्त ग्रन्थ है ।

6.8.30 भैरव कवि (1420 - 1475 ई.) :-

श्री गौरना कवि के पुत्र भैरव कवि ने " श्रीरंग माहात्म्य, रत्न शास्त्र, कविगजांकुश नामक ग्रन्थों की रचना की । श्री रंगमाहात्म्य पाँच आश्वासों का प्रौढ़ प्रबन्ध काव्य है । इसमें श्रीरंग क्षेत्र की महिमा चक्रबंध, नागबंध, गोमूत्रिकाबंध, सर्वलघुवों आदि चित्र कविता रीतियों का काव्य है । " रत्न परीक्षा " नवरत्नों के गुण-दोषों के परीक्षण का विवरण देने वाला शास्त्रीय ग्रन्थ है । " कवि गजांकुश " काव्य शास्त्रीय ग्रन्थ है ।

6.8.31 नूतन कवि सूरना (1420 - 1475 ई.) :-

सूरना कवि कृत " धनाभिरामम् " तीन आश्वासों का काव्य है । इसमें 328 गद्य, पद्य हैं । यह दाक्षारामम् के भीमेश्वर को समर्पित कहा जाता है और अनुपलब्ध है ।

6.8.32 ताल्लपाक के कवि :-

तेलुगु प्रान्त में वैष्णव भक्ति को साहित्य के माध्यम से प्रचार में लाने के लिए ताल्लपाक वंश प्रसिद्ध हैं । इनकी भक्ति मधुर भक्ति है । तेलुगु साहित्य के क्षेत्र में ताल्लपाक कवियों की सेवा अतुलनीय है । इतना ही नहीं संगीत क्षेत्र में भी इनका अपना स्थान है ।

6.8.33 तालपाक अन्नमाचार्य ॥ 1424 - 1503 ई॰ ॥ :-

तालपाक कवियों में अग्रज तथा प्रसिद्ध अन्नामाचार्य हैं। बचपन से ही इनमें भगवद भक्ति थी। ये चौदहवें वर्ष की आयु में ही भगवद् संकीर्तन करने लगे। इन्होंने लगभग 32,000 से अधिक संकीर्तनों ॥ पदों ॥ की रचना की। इन्हें " पद कविता पितामह ", " संकीर्तनाचार्य " तथा " कृति कीर्तना चार्य " की उपाधियाँ प्राप्त है। अन्नमाचार्य संस्कृत में वेंकटाचल माहात्म्य तथा संकीर्तन लक्षणों की रचना की। कहा जाता है कि इन्होंने एक द्विपद रामायण की भी रचना की लेकिन आज अनुपलब्ध है। [117] अन्नमाचार्य कृत वेंकटेश्वर शतक उपलब्ध है।

6.8.34 तालपाक तिम्मक :-

अन्नमाचार्य की प्रथम पत्नी तिम्मक " सुभद्रा कल्याण " नामक द्विपद मंजरी की रचना की। शृंगार रस प्रधान भक्ति काव्य है।

6.8.35 तालपाक पेद्दतिरुमला चार्य ॥ 1493 - 1553 ॥ :-

अन्नमाचार्य द्वितीय पत्नी अक्कमांबा की संतान पेदतिरुमल चार्य हैं। इन्हें श्री रामानुज सिद्धान्त स्थापना चार्य, वेदान्ता चार्य, कवि तार्किक केसरि, शरणागत वज्र पंजरा आदि उपाधियाँ है। इन्होंने भगवान वेंकटेश्वर पर शृंगार और आध्यात्मिक संकीर्तन, शृंगार वृत पद्य शतक, रेफकार

---

117. तेलुगु साहित्य समीक्षा - जागय्या - पृ॰ 524.

निर्णय, वेंकटेश्वरोदाहरण, श्रृंगार दण्डक, सुदर्शन रगड, चक्रवालमंजरी, द्विपद दण्डक, सुप्रभात मंजरी, संकीर्तण लक्षण व्याख्य ‌‌﴾ अप्राप्त ﴿ भगवद् गीता वचन आदि ग्रन्थों की रचना की । इन्होंने अन्नमाचार्य के संकीर्तनों को ताम्रपत्रों पर सुरक्षित करवाया ।

6.8.36 <u>ताल्लपाक चिन तिरुमन्ना चार्य ﴾ 1495 - 1556 ﴿</u> :-

ये पेद्दतिरुमल चार्य के पुत्र थे । इन्होंने वेंकटेश्वर श्रृंगार संकीर्तन और अष्टभाषा दण्डक नामक दो काव्यों की रचना की । इस समय के अन्य कवियों में प्रोलुगंटि चेन्नशौरी कृत नरसिंह पुराण, चिन्नकोट पेद्दना कृत काव्यालंकार चूडामणि, पोट्कवि मल्लना कृत एकादशी माहात्म्य और रुक्मांगद तथा, मनुमंचि भट्टु कृत हयलक्षण विलास या अश्व लक्षण सार, पशुपति नाग नाथ कृत विष्णु पुराण, वेन्नेलकंटि सूरना कृत विष्णु पुराण कीलिदंडि भावनारायण कृत वचनरूपक विष्णु पुराण इत्यादि हैं ।

<u>कृष्ण देवयाल युग के प्रसिद्ध कवि और कृतित्व</u>

6.8.37 <u>अल्लसानि पेद्दनामात्य ﴾ 1470 - 1540 ﴿</u> :-

श्रीकृष्ण देवरायलु के " भुवन विजय " के अष्ट दिग्गजों के अग्रगण्य अल्लसानि पेद्दना हैं । पेद्दनामात्य ने " स्वारोचिष मनु चरित्र " [118] लिखकर श्रीकृष्ण देवराय को समर्पित किया । इसमें स्वारोचिष मनु की कहानी है । इस काव्य की नायिका वरूथिनि है और नायक प्रवराख्य ।

---

118. तेलुगु साहित्य समीक्षा द्वितीय भाग - जी·नागय्या - पृ· 47·

इस काव्य के लिए " स्वरोचिष चरित्र " और " स्वारोचिष संभवम् " नामान्तर भी है । वरुथिनी देव सभ्यता की प्रतिनिधि है और प्रवराख्य मानव सभ्यता का । तत्कालीन समाज में व्याप्त परस्पर विरोधी सभ्यताओं का समान वर्णन है । देव सभ्यता में श्रृंगार काम लीला के लिए स्वेच्छा पूर्ण वातावरण है । परन्तु मानव सभ्यता मानवीय गुणों, ज्ञान की साधना तथा शील-संपदा का प्रतिनिधित्व करती है । " मनुचरित्र के नायक ब्राह्मण सात्विक जीवन बिता रहा था । एक दिन सिद्ध पुरुष के मुँह से तीर्थ यात्रा का वर्णन सुनकर प्रवराख्य के मन में पुण्य तीर्थों के दर्शन की अभिलाषा उत्पन्न हुई । सिद्ध पुरुष की दी हुई दिव्य औषधि के प्रभाव से हिमालय प्रांत में वायु मार्ग से पहुँचता है । हिम के कारण उसका पाद लेप निकल गया । व्याकुल होकर लौटने का उपाय सोचते हुए प्रवराख्य इधर उधर घूमने लगा । सहसा एक परम सुन्दरी गंधर्व रमणी दिखाई देती है । वह " मनुचरित्र " की नायिका वरुथिनी थी । प्रवराख्य के सुन्दर रूप पर मोहित हो गई प्रवाख्य के मना करने पर वह न मानी । प्रवर उसका तिरस्कार कर किसी तरह घर पहुँच गया । वरुथिनी के विरह से व्याकुल एक गंधर्व ने शांभरी विद्या से प्रवराख्य का रूप धारण कर वरुथिनी का सांगत्य प्राप्त करता है । कुछ समय पश्चात वह चला जाता है । वरुथिनी एक बालक को जन्म देती है । उसका नाम स्वरोची था । वह सकल विद्या पारंगत और बल संपन्न होकर साम्राट बन जाता है । वह शाप ग्रस्त गंधर्व को मुक्त कर उसकी पुत्रियाँ मनोरमा, कलावती और विभावती से विवाह करता है । एक दिन स्वरोचि वन में शिकार के लिए जाता है और हिरणी को गोद में लेता है । तुरन्त वह कोमलांगी बन गई । वह वन देवी थी । उससे स्वारोचिष मनु पैदा होता है । तेजो संपन्न

वह अपने राज्य का शान्ति पूर्वक पालन करता है । यही मनु चरित्र की कहानी है । यह धर्मार्थ काम मोक्ष की साधना तथा माननीय चरित्र का प्रबोध करने वाला उदात्त काव्य है ।

6.8.38 मादय्यगारि मल्लना (1520 ई॰) :-

मल्लना कृत " राज शेखर चरित्र " तीन आश्वासों का काव्य है । इसे तिम्मरस मंत्री के दामाद अप्पमात्य को समर्पित किया । इसकी कथा वस्तु अति संक्षिप्त है । राजा हेमध्वज को शिव की कृपा से " राज शेखर " नामक पुत्र की प्राप्ति होती है वह तेजो संपन्न, बलवान था । अपने बल और साहस के द्वारा विशंक नामक राक्षस को मार कर जटिल कौशिल मुनि की पुत्री की रक्षा करता है । कालि प्रसाद से एक दिव्य रत्न को और योगी से चतुर और त्रिकाल बेधि तोते को प्राप्त करता है । इस पक्षि के द्वारा कान्तिमति और राजशेखर का विवाह संपन्न होता है । यही " राज शेखर चरित्र " का इतिवृत्त है । आचार्य खण्ड वल्लि लक्ष्मी रंजनम के अनुसार इसकी शैली मृदुमधुर और सहज है । [119]

6.8.39 अय्यल राजु राम भद्रुडु (1510 - 1580) :-

इन्होंने श्रीकृष्ण देवराय द्वारा संस्कृत में रचित सकल कथासार संग्रह " की षट साम्राटों की कथाओं को तेलुगु में अनुवाद किया ।

---

119. आन्ध्र साहित्य संग्रहमु - पृ॰ 127.

6.8.40 तेनालि राम कृष्ण ‖ 1485 - 1575 ‖ :-

तेलुगु साहित्य में " विकट " कवि बिरुदांकित हास्य प्रिय कवि तेनालि राम कृष्ण है। आपकी प्रमुख रचना " पांडुरंग माहात्म्यमु " है। अन्य रचनाओं में " कंदर्पकेतु ", " हरिलीला विलास ", " घटिकाचल माहात्म्यमु " उल्लेखनीय है। " कंदर्प केतु " अनुपलब्ध है।[120] रामकृष्ण कवि के हरि लीला विलास " के 21 पद्यों का उल्लेख जग्गय कवि ने प्रबन्ध रत्नाकर में किया।[121] रामकृष्ण कवि की अंतिम रचना " घटिकाचल माहात्म्य " है। इस में घटिकाचल क्षेत्र की महिमा वर्णित है।

6.8.41 पिंगलि सूरना ‖ 1560 ‖ :-

इस युग के प्रतिभाशाली कवि पिंगलि सूरना ने गुरुड़ पुराण, कलापूर्णोदयमु, प्रभावति प्रद्युम्न आदि की रचना की। इनकी " गरुड़ पुराण " अनुपलब्ध है। " कलापूर्णोदय सूरना कवि द्वारा रचित आठ आश्वासों का कल्पित कथाओं का काव्य है। " प्रभावती प्रद्युम्नमु " पांच आश्वासों का प्रबन्ध है। इस काव्य में शिल्प की असाधारण प्रवीणता तथा उन्नत माधुर्य शैली में रचना की। इनकी शैली को द्राक्षपाक शैली कहा जाता है।[122] इनकी अन्तिम रचना हरिश्चन्द्र नलोपाख्यान है यह एक द्वयर्थि काव्य है।

---

120. तेलुगु साहित्य समीक्षा - जी. नागय्या - पृ. 109. ‖ द्वि. भा. ‖

121. - वही - पृ. 111.

122. आन्ध्र संस्कृति -- अकादमी - पृ. 288.

6.8.42 संकुसाल नृसिंह कवि § 16 वी शती § :-

नृसिंह कवि कृत " कविवर्ण रसायन " है । यह श्रीरंगेश्वर को समर्पित है । मांधातृ चरित्र पुण्य कथा है । छः आश्वासों का प्रबंध काव्य है । इसमें 1200 गद्य, पद्य है । इसमें कथा प्रसंग बहुत कम है । यह वर्णनात्मक काव्य है ।

6.8.43 अद्दंकि गंगाधर § 16 वी § :-

गंगाधर कवि गोलकोंडा के निवासी और केदार गुरु के शिष्य हैं । इन्होंने " तपती संवरणोपाख्यान " नामक श्रृंगार प्रबन्ध काव्य की रचना की है । इसे गोलकोंडा नवाब इब्राहीम कुतुबशाह को समर्पित किया । " तपती संवणोपाख्यान " महाभारत के आदिपर्व में है । नन्नय ने इसे 23 गद्य, पद्यों लिखा । [123] लेकिन गंगाधर कवि ने इसे पाँच आश्वासों का काव्य बनाया ।

6.8.44 पोनगंटि तेलगना § 1580 ई॰ § :-

तेलगना कवि ने अच्च तेलुगु में " ययाति चरित्र " नामक पाँच आश्वासों का काव्य लिख कर अमीरखान और अप्पन को समर्पित किया । " ययाति चरित्र " की कथा महा भारत और भागवत से ग्रहण किया गया है । इसमें ययाति देवयानी, शर्मिष्टा के विवाह प्रसंग वर्णित है ।

123॰ महा भारत – आदिपर्व – सातवा आश्वास – पद्य 68 – 70॰

6.8.45 कंदुकूरि रुद्र कवि (1480 - 1560) :-

रुद्रकवि " निरंकुशोपाख्यान " चार आश्वासों का सरस प्रबन्ध काव्य है। यह कंदुकूर सोमेश्वर को समर्पित है। इसमें निगमशर्मा की कथा से मिलती जुलती कथा है। इनकी अन्य रचना " जनर्दाष्टक " है। यह देव स्तुति परक किन्तु श्रृंगार रचना है।

6.8.46 सिद्दि राजु तिम्मराजु (1564) :-

तिम्मराजु ने " परम योगी विलास " नामक पांच आश्वासों का चंपू प्रबन्ध काव्य की रचना कर मंगल गिरि नृसिंह स्वामि को समर्पित किया। कथा कथन पद्धति में रचित भक्ति प्रधान काव्य है।

6.8.47 चदलुवाड मल्लन (1580 ई.) :-

आपने " विप्रनारायण चरित्र " नामक पांच आश्वासों का भक्ति प्रबन्ध रच कर कार्वेटि नगर पालक तिम्मत राजु को समर्पित किया। इसका ताल्लपाक चिन्नना का " विप्रनारायण चरित्र " है।

6.8.48 सारंगु तुम्मय्य (1600 ई.) :-

वैष्णव भक्त तुम्मय्या ने विप्रनारायण की कथा को "वैजयन्ती विलास " नामसे चार आश्वासों में श्रृंगार प्रबन्ध के रूप में रचना की। इसे श्रीरामचन्द्र को समर्पित किया। कुतुबशाह के राज्य को गोल कोंडा के कारण (पटवारी) के पद पर रहे। तुम्मय कविने विप्रनारायण

की कथा में स्वप्न वृतान्त जोडा है । आस्ध्र कवि तुम्मय के विप्रनारायण को सामान्य मानव के रूप में नहीं देखते हैं । [124]

6.8.49 कामिनेनि मल्ला रेड्डी ‹ 1550 – 1610 › :-

मल्लारेड्डी कवि ने षटचक्रवर्ति चरित्र " " शिव धर्मोत्तर " और " पद्मपुराण "नामक काव्यों की रचना की । इन्हें सिद्ध रामेश्वर स्वामी को समर्पित किया । षट चक्रवर्ति चरित्र आठ आश्वासों का प्रबंध काव्य है । चेमकूर वेंकट कवि कृत विजय विलास प्रसिद्ध काव्य है । यह भारत कथा के अर्जुन से संबंधित प्रसंगों पर यह निर्मित है ।

6.8.50 शंकर कवि ‹ 1550 › :-

इन्होंने हरिश्चन्द्र की कथा को पद्य काव्य का रूप दिया । इन्होंने द्विपद हरिश्चन्द्रोपाख्यान को पद्य रूप दिया ।

6.8.51 रामराव रंगप्प ‹ 1560 › :-

इन्होंने " सांबोपाख्यान " नामक पांच आश्वासों का प्रबन्ध लिखा । इसमें श्रीकृष्ण जांबवति के पुत्र सांबवती और दुर्योधन की पुत्री यक्षणा के विवाहों का वर्णन है । प्रबन्ध युग के अन्य कवियों में हरिभट्ट ‹ 1555 › कृत वराह-पुराण, मत्स्यपुराण, नृसिंह पुराण । बोड्डु पेर्रि चिन तिम्मन ‹ 1600 › कृत

---

124. समग्रान्ध्र साहित्यम् – आन्ध्र – 8, भाग – पृ. 164.

" प्रसन्न राघव नाट्य प्रबन्धं, कासे सर्वप्प (16 वी) कृत सिद्देश्वर-चरित्र, अन्दुगुल वेंकय्य (1630) कृत रामराजीयम, कुमार धूर्जटि (1650) कृत श्रीकृष्ण राय विजयमु, रेवनूरि वेंकटाचार्य (16 वी) कृत शकुन्तलपरिणय, श्रीपादरेणु महात्म्य, मट्टि अनन्त राजु (1605) कृत कुकुस्थ विजय, वासिराजु रामय्य कृत भूहनारदीयम्, पेंदलूरि चिक्कय कृत नासिकेतोपाख्यान, नैषदं तिम्म मंत्री (1550) कृत लक्षण मंजरी, चित्र कवि पेद्दना (1550) कृत लक्षण सार संग्रह, वेल्लंकि तातंभट्ट (1520) कृत कवि चिंतामणि, छन्दोदर्पण, लिंगम गुंट तिम्म (1560) कृत सुलक्षण सार, बाल बोध छन्द, मुद्दराजु रामन (1580 - 1650) कृत कविजन संजीवनी " तुरना राजकवि, अयंपिल्बाल सरस्वति कृत " नागर खण्ड ", मम्मडि मल्लना कृत तत्व चन्द्रोदय, वेंकटकवि कृत ज्ञान सूर्योदय, मारेपल्लि वेंकट योगी कवि कृत तत्व दीपिका इत्यादि हैं ।

6.8.52 यक्षगान साहित्य :-

यक्षगान वह रूपक है जो गीत के साथ नाट्य को मिलाकर नाटकीय ढंग से अभिनीत किया जाता है । वह संगीत, साहित्य नाट्य तथा नाटक की विधाओं का संगम है ।

6.8.53 रघुनाथ नायक :- (1614 - 1633 ई.)

यह राजा अच्युतप्प नायक के पुत्र थे इन्हें अपर श्रीकृष्ण देवरायलु कहा गया है । [125] तिम्मरुस के समान मेधावि है । संगीत और साहित्य में इनकी विशेष रुचि थी । इनका दरबार " इन्दिरा मंदिर " कहलाता है । संस्कृत में अनेक काव्यों की रचना की । तेलुगु में इनके नौ ग्रन्थ है ।

---

125. तेलुगु साहित्य समीक्षा हि. भ. नागय्य - पृ. 288.

लेकिन ये प्राप्त नहीं है । प्राप्त चार रचनाओं में " पारिजाता पहरण " " रूक्मिणी विवाह ", " जानकी परिणय " । नलदमयंती कथा है ।

6.8.54 मन्नास देव ॥ 1673 - 1675 ॥ :-

राजा विजय राघव नायक के पुत्र थे इन्होंने कई यक्षगानों की रचना की । कोवंली यक्षगान प्रसिद्ध है ।

6.8.55 विजय राघव नायक ॥ 1633 - 1673 ॥ :-

इन्होंने तेलुगु में तेरह यक्षगानों की रचना की । इनका विवरण कृष्ण काव्यों में दिया गया है । उनके अतिरिक्त राज गोपाल विलास, चेंगमल-वल्ली परिणय, रतीमन्मथ विलास धनाभिरामम्, विप्रनारायण चरित्र, जानकी कल्याण आदि उल्लेखनीय है । नायक कवियों के अतिरिक्त कामरसु वेंकटपति सोमयाजुलु कृत विजय राघव चन्द्रिका विहार, कोनेटि-दीक्षित चन्द्र कृत " विजय राघव कल्याण, पसुलेटि रंगजम्मा कृत मन्नरु - दास विलास इत्यादि प्रमुख है ।

6.9 तेलुगु साहित्य को कवयित्रियों की देन :-

तेलुगु साहित्य के लिए कवयित्रियों की देन विशेष उल्लेखनीय है । अखिल भारतीय कवयित्रियों में अट्कूरि लक्ष्मीदेवी ने खण्ड्ग तिक्कना की पत्नी चानम्मा और उनकी बहु प्रोलम्मा को प्रथम तेलुगु कवयित्रीयाँ कह सकते हैं । [126]

---

126. अखिल भारत कवयित्री - पृ. 52.

चानम्मा और प्रोलम्मा का समय सन् 1370 ई० है । इनके बाद गंगादेवी का नाम लिया जा सकता है जो विजयनगर के कंपरायलु की पत्नी थी । इन्होंने " मधुरा विजय " संस्कृत में लिखा । तााल्लपाक तिम्मक " सुभद्रकल्याण " की रचना की । मोल्ल कृत " रामायण " तेलुगु में प्रसिद्ध है । " मोहनांगी " श्रीकृष्ण देवराय की पुत्री थी । इनकी रचनाएं प्राप्त नहीं है । तिरुमलांबा कृत " वरदांबिका परिणय " संस्कृत चंपू काव्य है । राम भद्रांबा " रघुनाथ नायक के दरबार में थी । इन्होंने " रघुनाथाभ्युदयम् " नामक 12 सर्गों के संस्कृत काव्य की रचना की । मधुरवाणी रघुनाथ नायक दरबार में थी । इन्होंने रामायण की रचना की जो अनुपलब्ध है । इसके केवल 1500 श्लोकों से युक्त 14 सर्ग ही प्राप्त है । रंगाजम्मा ने मन्नारुदास विलास, विजय राघव विलास, रामायण, भारत, भागवत के संग्रहों की रचना की । इनके अति - रिक्त नाचि, लीलावती, शारदा, त्रिवेणी, चन्द्ररेखा कृष्णाजी आदि कवयित्रियों का उल्लेख मिलता है लेकिन इनकी रचनाएँ प्राप्त नहीं है ।

6.10 तुलनात्मक समीक्षा :-

मध्यकालीन हिन्दी और तेलुगु साहित्य में नीति प्रधान काव्य विपुल मात्रा रचे गए हैं । तेलुगु में सुमतिशतक, वेमना के पद, पंचतंत्र की कथाएँ नीतिमुक्तावली काव्य नीति परक उपदेशात्मक काव्य है तो हिन्दी में भी तुलसी, कबीर, रहीम, रसखान नरहरि, गंग, जमाल की रचनाएँ नीति-बोधक है । उसी प्रकार लक्षण ग्रन्थों के प्रणयन में भी हिन्दी और तेलुगु साहित्यों का महत्वपूर्ण स्थान है । दोनों साहित्यों में रस, छन्द अलंकार शास्त्र आदि लक्षण ग्रन्थो की प्रचुरता है । व्याकरण ग्रन्थ भी दोनों साहित्यों में प्राप्त होते हैं । परन्तु पौराणिक प्रसंगों और पुराणों का जितना अनु - वाद व मौलिक ग्रंथ रचना तेलुगु में है उतना हिन्दी में नहीं है । पुराणानुवाद

की पद्धति तेलुगु में प्राचीन काल से ही प्रचलित है । वीर रस प्रधान काव्य हिन्दी में मध्य युग में कम मिलते हैं । फिर भी रास और चरित काव्यों में यह प्रवृत्ति है तेलुगु में " पलनाटिवीर चरित " महत्व पूर्ण वीर काव्य है । इस प्रकार हिन्दी और तेलुगु साहित्य में सभी प्रकार के काव्य रूपों को देखा जा सकता है । काव्य और कवि हृदय की दृष्टि से एक विशिष्ट साम्य समय के भीतर मिलता है ।

कवि और कृतियों की तालिका

संख्या	नाम	समय	कृतियाँ	प्रवृत्ति
1	2	3	4	5
1.	सोम प्रभु सूरि	1225 सं.	कुमारपाल प्रतिबोध	उपदेशात्मक
2.	हेमचन्द्र	12 वीं.	द्वयाश्रय, काव्यानुशासन, छन्दोशासन, देशी नाम माला	लक्षण
3.	अब्दुर्रहमान	13 वीं	संदेश रासक	शृंगार
4.	महेश्वर सूरी	13 वीं	संजम मंजरी	आध्यात्मिक
5.	विजयसेन सूरि	1288	रेवन्तगिरि रास	शृंगार
6.	पल्हड	1289	आबू रास	शृंगार
7.	मोहनलाल	1247	पच्नगैत	पौराणिक
8.	नल्लसिंह	1355	विजयपाल रसो	वीर

1	2	3	4	5
9.	शारंगधर	1375	हम्मीर रासो, प्राकृत पैंगलम	वीर
10.	मेरुतुंग	1360	प्रबंध चिंतामणि	व्याकरणिक
11.	राजशेखर सूरि	1371	नेमिनाथ सूरि	धार्मिक (जैन)
12.	अम्बदेसूरि	1371	संघपति समरा रास	"
13.	प्रज्ञातिलक	1363	कच्छुलि राज	"
14.	भर्तृनाथ	13 वीं	भर्तृहरि शतक	नीति
15.	श्रीधर कवि	14 वीं	रणमल्ल छन्द	मुक्तक वीर
16.	जगनिक कवि	13 वीं	आल्ह खण्ड	वीर
17.	मधुकर कवि	13 वीं	जयमयंक जस चन्द्रिका	वीर
18.	अमीर खुसरो	13 वीं	पहेलियाँ मुकरियाँ	मुक्तक

1	2	3	4	5
19.	छीहल	16 वीं	पन्थी गीत, उदारगीत, पंचेन्द्रिय वेली	धार्मिक
20.	भट्टारक रत्नकीर्ति	16 वीं	नेमिनाथ फागु, नेमिबारहमासा	"
21.	ब्रह्मरायमल्ल	17 वीं	प्रद्युम्न चरित, सुदर्शन रास, नेमिश्वर रास। भविष्यदत्त कथा	"
22.	पाण्डे जिनदास	1642 सं	जम्बु स्वामी चरित, योगी रास जखडी चेतन गीत, मुनिश्वरों की जयमाल, माली रास	"
23.	त्रिभुवन चन्द	16 वीं	चन्द्रशतक	आध्यात्मिक
24.	कुमुद चन्द	1678 सं.	नेमिनाथ, बारहमासा, प्रणय गीत हिंडोल गीत	"
25.	गोवर्धन दास	--	शिव व्यालो	शिव भक्ति
26.	नाम देव	13 वीं	निर्गुण बानी	निर्गुण भक्ति
27.	किसनद	--	महादेव पार्वती रोला	शिव भक्ति

1	2	3	4	5
28.	जयदेव	13 वीं	गीत गोविंद	निर्गुण भक्ति
29.	त्रिलोचन	13 वीं	पद	"
30.	रामानन्द	1356	गीत भाष्य, वेदान्त विचार, ज्ञान लीला रामानन्द देश	दार्शनिक
31.	सेन	13 वीं	पद	निर्गुण
32.	कबीर	1399	बीजक, दोहावली, अनुग्रह सार	"
33.	संत सदन	14 वीं	आदि ग्रन्थ (संकलन)	"
34.	लालदेव	"	लालयोगिनी	"
35.	धन्ना	"	आदि ग्रन्थ (संकलन)	"
36.	रविदास	13 वीं	वाणी ग्रन्थ	"
37.	संत पीपा	"	पीपा जी की बानी, सरब गोटिका	"
38.	धर्मदास	"	वाणी ग्रन्थ	"
39.	गुरु नानक देव	1539	नानक वाणी, गुरु ग्रन्थ साहब	"

1	2	3	4	5
40.	अमरदास	--	आनन्द	निर्गुण
41.	गोविंद सिंह	15 वीं	दसवां पातशाह	"
42.	दादू दयाल	1588	असाभय वाणी, काया वेली	"
43.	सुन्दर दास	1586	ज्ञान समुद्र, सुन्दर विलास, सवैया	"
44.	रज्जब	1610	सर्वांगिनी वाणी	"
45.	धरनी दास	1575	शब्द प्रकाश, ज्ञान प्रकाश	"
46.	मलूक दास	1574	ज्ञानबोध, रतन खान, भक्ति बिरुदावली पुरुष विलास, दस रत्न ग्रन्थ, ध्रुव चरित, बारह खड़ी, विभय विभूति, सुख सागर, भक्ति विवेक, गुरु प्रताप	"
47.	जगजिवन दास	1682	शब्द सागर, ज्ञान प्रकाश, आगम पद्धति, महा प्रलय	"

1	2	3	4	5
48·	प्राणनाथ	1675	ब्रह्म ज्ञानी, प्रकत्वाली, प्रेम पहेली, तार तम्य	निर्गुण भक्ति
49·	असाइत	14 वीं	हंसावली	प्रेमाख्यान
50·	मुल्लादाउद	14 वीं (1375)	चंद्रायन	"
51·	मंझन	1545	मधुमालती	"
52·	जायसी	1540	पद्मावत, चित्र लेखा, आखरी कलाप	"
53·	दामोदर	15 वीं	लखनसेन पद्मावती कथा	"
54·	ईश्वर दास	1501	सत्यवती कथा	"
55·	कुतुबन	1503	मृगवती	"
56·	आलम, जैसलमेर, गणपति	1525	माधव नल काम कंदला	"
57·	नन्ददास	1568	रूपमंजरी	प्रेमाख्यान
58·	जैन श्रावक	1556	प्रेम विलास प्रेम लता कथा	"

1	2	3	4	5
59.	नारायण दास	1590	छिताई वार्ता	प्रेमाख्यान
60.	उसमान	1613	चित्रावली	"
61.	पुहकर	1618	रस रतन	"
62.	शेखनबी	1619	ज्ञान दीप	"
63.	जान कवि	1620	इनकी 67 प्रेमाख्यान - इनमें मुख्य कथा रत्नवल, कथा रस मंजरी, कथा छीता, कथा-कामला, कथा-कनकवती, कथा मधुमालती, कथा-कंवलावती, कथा मोहिनी, कथा-नल दमयन्ती, लैला मजून, कथा-कलावती, कथा सपवती आदि	"
64.	गोस्वामी तुलसीदास	1568	राम चरित मानस, जानकी मंगल, रामाज्ञ प्रश्न, कवितावल, कृष्ण-गीतावल, पर्वती मंगल, विनय प्रत्रिका, रामलाल नहछू, दोहावली	राम भक्ति

1	2	3	4	5
65.	केशवदास	1612	राम चन्द्रिका	राम भक्ति
66.	सेनापति	1646	कविरत्नाकर	"
67.	प्राणचन्द चौहान	1667	रामायण महान्नाटक	"
68.	हृदय राम	16 वीं	हनुमन्नाटक	"
69.	अग्रदास	16 वीं	ध्यान मंजरी, कुण्डलियाँ पद	"
70.	नाभादास	1657	भक्तमाल, अष्टयाम	"
71.	वल्लभाचार्य	1535	तत्वज्ञानदीप निबंध, पूर्व मीमांसा भाष्य, जैमिनी सूत्र भाष्य, भागवत टीका, अणु भाष्य, कृष्णाश्रय, पुरुषोत्तम, सहस्रनाम, त्रिविध नामावली	कृष्ण भक्ति दार्शनिक
72.	हित हरिवंश	1559	राधा सुधानिधि, यमुनाष्टक, हित चौरासी, स्फुटवाणी	"

1	2	3	4	5
73.	दामोदरदास सेवक	1577	सेवक वाणी	कृष्ण भक्ति दा.
74.	सूरदास	1535	सूरसागर, सूर सारावली, साहित्यलहरी, गोवर्धन लीला	"
75.	कुंभनदास	1550	कुंभनदास के पद, राग कल्प द्रुम, राग रत्न के	"
76.	परमानन्द दास	1550	दानलीला, ध्रुव चरित, परमानन्द सागर पद, कीर्तन	"
77.	नन्ददास	1590	रस मंजरी, रूप मंजरी, मान मंजरी, अनेकार्थ मंजरी, विरह मंजरी, रास पंचाध्यायी, सिद्धान्त पंचाध्यायी, भ्रमर गीत नन्ददास पदावली ।	"
78.	कृष्णदास	16 वीं	प्रेमतत्व निरूपण, भक्तमाल की टीका, वैष्णव वंदनवानी, प्रेम रस राशि, हिन्डोल लील	"

1	2	3	4	5
79.	चतुर्भुजदास	1569	मधुमालती, भक्ति प्रताप, द्वादशयशा हित जू को मंगल, चतुर्भुजदास के पद	कृष्ण भक्ति दा.
80.	गोविंद स्वामी	1562	स्फुट पद	"
81.	छीत स्वामी	1572	"	"
82.	मीरा बाई	1546	नरसीजी रो मोहिरो, गीत-गोविन्द की टीका, राग गोविन्द सोरठ के पद, मीरा का मलार, गर्वागीत, राग-विहार पद, प्रेम वाटिका	"
83.	हरिराम व्यास	1549	व्यास वाणी, राग माला	"
84.	गोकुल नाथ	1608	रसिक राय, हरिधन, हरिदास	"
85.	श्री भट्ट	1625		"

1	2	3	4	5
86•	श्रीराम राय	1635	युगल शतक	कृष्ण भक्ति
87•	सूरदास मदन मोहन	16 वीं	आदि वाणी	"
88•	ध्रुवदास	1630	स्फुट पद, जीव दशा लीला, मनशिक्षा लीला, श्याम हुलास, वैद्यज्ञान लीला, वृन्दावन सत-लीला, बृहद बावन आदि पर रचनाएँ है ।	"
89•	रस खान	1620	प्रेम वाटिका, सुजान रसखान	"
90•	नरोत्तम दास	16 वीं	सुदामा चरित, विचार माला	"
91•	राधि का नाथ	16 वीं	महावाणी	"
92•	माधवदास माधुरी	16 वीं	केली माधुरी	"
93•	नेही नागरीदास	16 वीं	सिद्धान्त दोहावल, पदावली, रस पदावली	"
94•	श्रीकल्याण पुजारी	16 वीं	पुजारी वाणी	"

1	2	3	4	5
95.	नरहरि	16 वीं	रुक्मणी मंगल, छप्पय नीति कवित संग्रह	भक्ति, लक्षण नीति
96.	टोडल मल्ल	17 वीं	स्फुट पद (नैतिक)	"
97.	बीरबल	"	"	"
98.	तानसेन	16 वीं	संगीतसार, राग माला, श्रीगणेश स्त्रोत,	संगीत शास्त्र
99.	गंग	"	गंगा पदावली, गंग पच्चीसी गंग रत्नावली	नीति भक्ति
100.	रहीम	17 वीं	रहीम विनोद, दोहावली, कवितावली रहिमन चन्द्रिका, बरवै नायिका भेद	भक्ति नीति शृंगार

1	2	3	4	5
101•	कृपाराम	17 वीं	हित तरंगिनी	लक्षण
102•	बलभद्र मिश्र	"	नखशिख, रस विलास	श्रृंगार, लक्षण
103•	मोहन लाल मिश्र	"	श्रृंगार सार	श्रृंगार रस
104•	केशवदास	16 वीं	रसिक प्रिया, कविप्रिया छन्दमाला अलंकार मंजरी	लक्षण

कवि कृतित्व तालिका

तेलुगु साहित्य के शैव कवि और कृतियाँ

क्रम संख्या	नाम	समय	काव्य	प्रवृत्ति
1	2	3	4	5
1.	पालकुर्कि सोमनाथ	1160-1240ई.	बसवपुराण, पंडिताराध्य चरित्र, अनुभव सार, वृषाधिप शतक, चतुर्वेद सार ।	शैव भक्ति
2.	श्री पति पंडित	1000 ई.	शिव दीपिका	"
3.	शिवलेंक मंचन पंडित	1160 के लगभग	अनुपलब्ध	"
4.	मल्लिकार्जुन पंडित	13 वीं	शिव तत्व सार	"
5.	यादवक्कुल अन्नमय्या	13 वीं	सर्वेश्वर शतक	"
6.	चित्र पाणि रंगना	12 वीं	नयन रगड, नम: शिवाय रगड	"

1	2	3	4	5
7.	राविपाटि त्रिपुरांतक	1380	त्रिपुरांत कोदाहरण, चन्द्रतारा-वली, अंबिका शतक,	शैव भक्ति
8.	श्रीगिरि कवि	1388	त्रिडाबि रामम् (संस्कृत) ।	"
9.	श्रीनाथ	1385-1475	पंडिताराध्य चरित्र, भीमेश्वर पुराण, हर विलास शिव रात्रि, महात्म्य ।	"
10.	निरशंक कोम्मना	1410-1470 ई.	शिवलीला महात्म्य, वीर महेश्वरम्	"
11.	पिडुतपर्ति सोमना	14 वीं	बसव पुराण, प्रभुलिंग लीलम्	वीर शैव
12.	[redacted] पल्लि दुग्गय्या	1410-1490 ई.	कांचिपुर महात्म्य, नासिकेतोपाख्यान	शैव
13.	पोननमात्य	1420-1510	वीर भद्र विजयम्	"

1	2	3	4	5
14•	पेदपाटि सोमना	14 वीं	शिवाइ दीपिका	शैव भक्ति
15•	कोलनि गणपति देव	"	शिव योग सार	"
16•	पोरोटिट्ट लिंग	"	नवनाथ चरित	वीर शैव
17•	तेनालि रामलिंग कवि	1515 – 1565	उद्भटाराध्य चरित	शैव

तेलुगु में राम काव्य और रामायण

1	2	3	4	5
18•	गोना बुद्दा रेड्डी	1310 – 20 ई•	रंगनाथ रामायण	राम भक्ति
19•	हुलकी भास्कर	1310 – 20 ई•	भास्कर रामायण	"
20•	मल्लिकार्जुन भट्ट	"	"	"
21•	कुमार रुद्र	"	"	"
22•	आतुकूरि मोल्ल	1320–1400 ई•	मोल्ल रामायण	"
23•	रघुनाथ नायक	1600 – 1631	रघुनाथ रामायण	"

1	2	3	4	5
24.	एर्राप्रगड	14 वीं	एर्रन रामायण	राम भक्ति
25.	कट्टा वरदा राजु	1600 - 1650 ई.	द्विपद रामायण	"
26.	अय्यल राजु राम भद्र कवि	1550 ई.	रामाभ्युदयमु	"
27.	श्री मरिंगंटि सिंगराचार्य	16 वीं	दशरथ नन्दन चरित, सीता कल्याणम्	"
28.	पिंगलि सूरना	1542 - 1570 ई.	राघव पांडवीयम्	"
29.	कंदुकूरि रुद्र कवि	15 वीं	सुग्रीव विजयम्	"
30.	भद्राचल राम दास	16 वीं	दाशरथी शतकम्	"
31.	नागलिंग		पट्टाभि राम विलासमु	"
32.	वारणासी वेंकट कवि		रामचन्द्रो पाख्यान	"
33.	कोत्तपल्लि लघुघय्या		दाशरथी विलास	"
34.	चेरुकूरि कृष्ण कवि		श्रृंगार राघवम्	"

1	2	3	4	5
35.	भावना		रघुराम विजय	राम भक्ति
36.	राव चेल्लेयामात्य		सीता चरित्र	"
37.	नंडूरि बापमंत्री		श्रीराम चरित्र	"
38.	चेन्नकृष्णय्या		साख्या रामायण	"
39.	तालपाक अन्नमाचार्य		द्विपद रामायण	"
40.	ताडिगांडा वेंकमांबा		वशिष्ट रामायण	"
41.	अय्यल राजु तिप्पय्य		रघुवीर जानकी नायक, रघुनाथ शतक	"
42.	गोपीनाथ		गोपीनाथ रामायण	राम भक्ति
43.	त्यागराजु		राम भक्ति कीर्तन	"

तेलुगु में कृष्ण भक्ति काव्य

1	2	3	4	5
44.	एर्राप्रगडा	14 वीं	हरिवंश	कृष्ण भक्ति
45.	नाचन सोमनाथ	"	उत्तर हरिवंश	"

1	2	3	4	5
46•	बम्मेर पोतनामात्य	1400 – 1450	श्रीमदान्ध्र भागवतम्	कृष्ण भक्ति
47•	मडिगि सिंगना	15 वीं	पद्म पुराण	"
48•	पिल्लल मर्रि पिन वीरना	1480 ई•	जैमिनी भारतम	"
49•	श्रीकृष्ण देवराय	1487 – 1530	आमुक्त माल्यदा	"
50•	तेनालि रामकृष्ण	1515 – 1570 ई•	पांडुरंग महात्म्य	"
51•	नंदि तिम्मन	1470 – 1533	पारिजातापहरण	"
52•	चिंतल पूडि एल्लनार्य	16 वीं	राधा माधव, तारा ब्रह्म राजीयम्, विष्णु मायानाटक	"
53•	वेलगपूडि वेंगयामात्य	16 वीं	श्रीकृष्ण कर्णामृत	"
54•	हरिभट्ट	16 वीं	भागवत, बराह पुराण, मत्स्यपुराण	"
55•	विजय राघव नायक	1630 – 1675 ई•	रुक्मिणी कृष्ण विवाह (यक्षगान) गोवर्द्धनोद्धार, सत्यभामा विलास, कृष्ण विलास, पारिजातापहरण आदि	

1	2	3	4	5
56.	तिक्कना	13 वीं	कृष्ण शतक	कृष्ण भक्ति
57.	नादेंडला गोपना	16 वीं	कृष्णार्जुन संवाद	"
58.	पुसुपुलेटि रंगजम्मा	"	भागवत संग्रह	"
59.	क्षेत्रय्या	17 वीं	कृष्ण पद	"
60.	कृष्ण नायक	16 वीं	राधा माधव संवादम	"
61.	मन्नारु देव	"	रुक्मिणी विवाह	"
62.	नारायण तीर्थ	"	पारिजातपाहरण	"
63.	चेरिगोंड धर्मन्न	"	चिन्न भारतम्	"
64.	तरिगेप्पुल मल्लना	"	चन्द्र भानु चरित	"

तेलुगु में अन्य प्रमुख कवि और कृतियाँ (भक्ति-भक्ति तर)

65.	तिक्कन सोमयाजी	13 वीं	महाभारत, निर्वचनोत्तर रामायण विजयसेन, कवि सार्व भौम छन्द रस	भक्ति, लक्षण

1	2	3	4	5
66.	माल घीटक केतना	1200 - 1280 ई.	दशकुमार चरित	कथा काव्य
67.	मारना	1295 - 1323 ई.	मार्कंडेय पुराण	पुराण काव्य
68.	मंचना	1300 ई.	केयूरा बाहु चरित्र	नीति
69.	बद्देना	1261 ई.	नीति शास्त्र मुक्तावली, सुमति सुमति शतक	"
70.	कृष्णमाचार्य	13 वीं	सिंह गिरि वचन, नरहरि वचन	"
71.	अप्पन मंत्री	1375 - 1435 ई.	चारु चर्या	चर्या काव्य
72.	शिव देवय्या	14 वीं	पुरुषार्थ, देवमणि शतक	नीति
73.	भास्करीन केतना	"	कादम्बरी	गद्य काव्य
74.	कमला भमात्य	"	पद्मपुराण संग्रह	पुरण
75.	एर्रा प्रगडा	"	महा भारत, नृसिंह पुराण	"

1	2	3	4	5
76.	राविपीर त्रिपुरांतक	1380 ई.	मदन विजय, चन्द्र तारावली प्रेमाभि रामम्	श्रृंगार
77.	गणपनाराध्य	14 वीं	सर्व शास्त्र	वेदान्त
78.	दोनयामात्य	1356 ई.	सस्यानन्द ।	वर्षा शास्त्र
79.	चिम्मपूडि अमरेश्वर	1350 ई.	सर्व लक्षण सार संग्रह, विक्रम सेन	लक्षण ग्रन्थ
80.	शरभांकु	14 वीं	मुक्तक	मुक्तक
81.	पेद्दना मात्य	1300 ई.	मुक्तक (आशु कविता) अवधान	
82.	पशुपति नागनाथ कवि	1369 ई.	विष्णु पुराण, मदन विलास (संस्कृत)	पुराण
83.	श्रीनाथ	1385 - 1475 ई.	मरूत्तराट चरित्र, शालि - वाहन सप्त सती, श्रृंगार नैषद, क्रीडाभिरामम्, पल - नाटि वीर चरित्र	

1	2	3	4	5
84.	बम्मेर पोतना	1420 - 1480	भोगिनी दण्डकम् श्रीमद् भागवत	नीति
85.	मडिगि सिंगना	1375 - 1455	सकल नीति सम्मत	वीर
86.	जक्कना कवि	1380 - 1440	विक्रमार्क चरित्र	लक्षण
87.	अनन्ता मात्य	14 वीं	भोजराजीयम्, छन्दो दर्पण, रसाभरण	
88.	गोरना	1380 - 1450	हरिश्चन्द्रो पाख्यान	
89.	दुग्गुपलि दुग्गय्या	1465 ई.	नासिक केतो पाख्यान	नीति
90.	दुब्गुंट नारायण	1470	पंचतंत्र (अनुवाद)	
91.	पिल्लल मर्रि पि वीरना	1480 ई.	नारदीयम्, माघ महात्म्यम्, मान सोलास	श्रृंगार
92.	नंदिमल्लया घंट सिंगना	1450 - 1520 ई.	प्रबोध चन्द्रोदय,वराह पुराण	
93.	कोरवि गोपराज	15 वीं	सिंहासन द्वात्रिंशिक	
94.	भैरव कवि	1420 - 1475 ई.	श्रीरंग महात्म्य, रत्नशास्त्र, कवि गजांकुश	

1	2	3	4	5
95.	नूतन कवि सूरना	1420 - 1475 ई.	श्रीरंग महात्म्य, रत्नशास्त्र, कवि गजांकुश	
96.	ताल्लपाक अन्नमाचार्य	1424 - 1503	वेंकटेश्वर शतक	
97.	ताल्लपाक तिम्मन्न	15 वीं	सुभद्रा कल्याण	
98.	ताल्लपाक पेद तिरुमला चार्य	1493 - 1553	श्रृंगार वृत पद्य शतक, रेपकार निर्णय वेंकटेश्वर रोदाहरण, श्रृंगार दण्डक, सुदर्शन रगड, चक्रमाल मंजरी आदि	
99.	ताल्लपाक चिन तिरुमलाचार्य	15 वीं	संकीर्तन	
100.	अल्लसानि पेद्दना	1470 - 1540	मनु चरित्र	
101.	मादय्यगारि मल्लना	1520 ई.	राजशेखर चरित्र	
102.	अय्यलराज रामभद्रुमु	1510 - 1580	सकल कथा सार संग्रह	
103.	तेनालि रामकृष्ण	1485 - 1575	घटिकाचल महात्म्य	

1	2	3	4	5
104.	पिंगलि सूरना	1560	कला पूर्णोदय	
105.	सांकुसाल नृसिंह कवि	16 वीं	मांधातृ चरित्र	
106.	अद्दंकि गंगाधर	"	तपती संवणोपाख्यान	
107.	पोन्नगंटि तेलगना	1580	ययाति चरित्र	
108.	कंदुकूरि रुद्रकवि	1480 - 1560	निरंकुशोपाख्यान	
109.	सिद्दिराजु तिम्मराजु	1564 ई.	परम योगी विलास	
110.	चदलु मल्लना	1580 ई.	विप्रनारायण चरित्र	
111.	सारंग तुम्मया	1600 ई.	वैजयन्ती विलास	
112.	कोमि नेनि मल्लारेड्डी	1550 - 1610.	षट् चक्रवर्ति चरित्र, शिव धर्मोत्तर, पद्मपुराण	
113.	चेमकूरु वेंकट कवि	1614 - 1635	विजय विलासम्	
114.	शंकर कर	1550	हरिश्चन्द्रोपाख्यान	

1	2	3	4	5
115.	रामराज रंगप्पा	1560	सांबोपाख्यान	
116.	हरिभट्ट	1535 ई.	वराह पुराण, मत्स्यपुराण, नृसिंह पुराण	
117.	बोड्डु चेर्ल चिन तिम्मन	1600	प्रसन्न राघव नाट्य प्रबन्ध	
118.	कोस सर्वप्प	16 वीं	सिद्धेश्वर चरित्र	
119.	अन्द्गुल वेंकय्या	1630 ई.	राम राजीयम्	
120.	कुमार धूर्जटी	1650	श्रीकृष्णराय विजयम्	
121.	रेवनूरि वेंकटाचार्य	16 वीं	शकुन्तला परिणय, श्रीपाद रेणु महात्म्य	
122.	मार्टट अनन्त राजु	1605	ककुत्स्थ विजय	
123.	वासिराजु रामय्य	16 वीं	भुहनारदीयम	
124.	चेपलूरि बोचिक्कय्या	"	नासि केतोपाख्यान	
125.	नैषदं तिम्म मंत्री	1550 ई.	लक्षण मंजरी	लक्षण

1	2	3	4	5
126.	चित्रकवि पेद्दना	1550 ई.	लक्षण सार संग्रह	लक्षण
127.	वेल्लंकि तातं भट्ट	1520 ई.	कविचिंतामणि, छन्दो दर्पण	"
128.	लिंगम गुंट तिम्मना	1560	सुलक्षण सार, बालबोध छन्द	"
129.	मुद्द राजु रामन	1580 - 1650	कविजन संजीवनी	"
130.	तुरग राज कवि अय्यबाल सरस्वति	16 वीं	न्गार खण्ड	वेदान्त
131.	मम्मडि मल्लना	"	तत्वचन्द्रोदय	"
132.	वेंकट कवि	"	ज्ञान सूर्योदय	"
133.	मारेपल्लि वेंकट योगी		तत्व दीपिका	
134.	वेंकट पतिसोमयाजुलु	1650 ई.	विजय राघव चन्द्रिका (यक्षगान)	
135.	कोनेटि दीक्षितचन्द्र	16 वीं	विजय राघव कल्याण	
136.	पसुपुलेटि रंगजम्मा	"	मन्नारुदास विलास	

/x/x/x/x/x/x/x/x/x/x/x/x/x/x/x/x/x/x/x/x/x/x/x/x/x/x/x/x/

सप्तम अध्याय

मध्य कालीन हिन्दी और तेलुगु साहित्य की

काव्यगत प्रवृत्तियाँ

/x/x/x/x/x/x/x/x/x/x/x/x/x/x/x/x/x/x/x/x/x/x/x/x/x/x/x/x/

मध्य कालीन हिन्दी और तेलुगु साहित्य की काव्यगत प्रवृत्तियाँ

7.0. प्रस्तावना :-

किसी भी साहित्य का संपूर्ण अध्ययन तभी संभव हो सकता है जब उस साहित्य की काव्य गत प्रवृत्तियों पर सम्यक विवेचन हो । प्रस्तुत अध्याय में हिन्दी और तेलुगु के मध्य कालीन साहित्य की सामान्य काव्य गत प्रवृत्तियों पर विवेचन किया गया है ।

हिन्दी साहित्य के इतिहास के मध्यकाल में भक्ति काव्य की प्रवृत्ति प्रमुख प्रवृत्ति रही है । भक्ति की प्रवृत्ति की अधिकता के कारण ही इस युग को हिन्दी में भक्तिकाल कहा गया है । इतना ही नहीं इस युग को भारतीय साहित्य का स्वर्ण युग कहा जा सकता है ।

साहित्य और धर्म का एक दूसरे पर प्रभाव सदैव बना रहता है । भक्ति युगीन साहित्य हमारी जाति की श्रेष्ठ धार्मिक भावनाओं को लेकर चला है । वैदिक धर्म का पुनरुद्धार तदानुसार भक्ति की विविध धाराएँ इस युग में परिलक्षित होती हैं । समूचे मध्यकाल में काव्य की समान धाराएं प्रवाहित होती रही हैं । इस काल में धर्म, राज्य तथा लोकाश्रय साहित्य सृजन की प्रक्रिया चलती रही । भक्ति धारा के अतिरिक्त गीत काव्य, ऐतिहासिक काव्य, चरित काव्य और स्वच्छन्द प्रेम काव्य की उपधाराएँ भी मिली हैं । इनमें भी भक्ति अधिक परिलक्षित होती है ।

7·1· मध्य कालीन साहित्य में काव्य वस्तु :

हिन्दी :-

हिन्दी साहित्य में भक्ति का आविर्भाव एक ओर राजनीतिक पराजय का परिणाम है तो साथ ही एक अविच्छिन्न सांस्कृतिक, धार्मिक एवं सामाजिक भावना का परिणाम भी है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते है - " अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान् की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था । "[1] परिणाम स्वरूप इस युग के लोगों ने भक्ति को अपनाया । इस समय की हिन्दी कविता अपने परिमाण, प्रसार, रूप बाहुल्य और

1· हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ·

कवित्व कला की दृष्टि से महान है । राजनीतिक परिवर्तन, सामाजिक आन्दोलन, धार्मिक क्रान्ति एवं विदेशी संघर्ष आदि से भारतीय संस्कृति ऊब चुकी थी । उत्तर भारत में मुगलों का राज्य पूर्णतया स्थापित हो जाने के बाद कट्टर मुसलमानों ने हिन्दुओं पर आक्रमण करने लगे । ऐसे समय में हिन्दु धर्म एवं संस्कृति की रक्षा हुई । रामानुज रामानन्द वल्लभाचार्य, मिबार्मचार्य आदि महात्माओं ने घूम-घूम कर अपने विचारों और दर्शनों का प्रचार किया । इनकी पूर्णता पन्द्रहवी-सोलहवीं शता - ब्दियों में दिखाई देती है ।

मध्यकाल के कवियों की काव्य वस्तु मूलत: भक्ति से संबन्धित ही है । युगीन विशेष धाराओं के आधार पर भक्ति की अनेक धाराएँ इस युग की वस्तु का रूप धारण करती है । इनमें मुख्यत: निर्गुणभक्ति और सगुण भक्ति विशेष उल्लेखनीय है ।

अ] संत काव्य :-

मध्ययुगीन भक्ति काव्य की विशेषता यह है कि यह विरोधी परिस्थितियों में समन्वय करके उन्हें जीवन की एक सूत्रता में बाँध देता है। यह समन्वय की भावना बडा ही व्यापक है । समन्वय के मूल में कबीर ने एक परमात्मा के दर्शन कर ब्राह्मण और शूद्रों में भी साम्य भाव स्थापित करने का प्रयत्न किया । कबीर ने एक सामान्य भक्ति मार्ग की स्थापना की जिसमें जाति पाँति पूछे नहि कोय, हरि को भजे सो हरि का होय " का समन्वयवादी सिद्धान्त मूल में था । सूर, तुलसी, मीरा आदि भक्त कवियों ने भगवान के भक्तों में अजामिल

गीध, गणिका, शबरी इत्यादि को शिरो स्थान दे कर इस समन्वयवादी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। कबीर ने तो इनसे भी बढ़कर हिन्दू और मुसलमानों के बीच में पारस्परिक विद्वेष को मिटाकर दोनो के बीच मानवतावादी के धरातल की स्थापना का सराहनीय प्रयत्न किया है। कबीर का मुख्य विषय ज्ञान से युक्त भक्ति है। यह भक्ति निर्गुण सत्ता के प्रति है जिन्हें कबीर ने साहब, राम, सत्यपुरुष, अलख निरंजन-स्वामी शून्य आदि नामों से पुकारा है। कबीर की यह भक्ति ज्ञानाश्रयी भक्ति है। आलबन के निर्गुण तथा निराकार होने के कारण कबीर की भक्ति मे रहस्य का पुट आ गया है। भक्ति और ज्ञान की साधना से मनुष्य की आत्मा शुद्ध हो जाती है। यह एक प्रकार का अन्त: मिलन है। निर्गुण भक्तों का यही लक्ष्य है कि उनकी कविता में आत्मा परमात्मा के इस मिलनाकांक्षा की तीव्रता और मिलनानन्द का सुन्दर चित्रण मिलता है। सन्त कवियों ने पुरानी रूढ़ियो और मिथ्याडम्बरों का घोर विरोध किया है। यह परंपरा संतों में ही मिलती है। संतों ने तिलक, छापा, माला, रोजा-नमाज़, योग की क्रियाएँ आदि को व्यर्थ ठहराया। इन्हें मानने वालो को फटकारा। संत काव्य में गुरु की महत्ता को स्वीकारा गया। गुरु को ईश्वर से अधिक प्रमुखता दी है। इस प्रकार संत काव्य में निर्गुणवाद, वैष्णव भक्ति भावना नैतिक सिद्धान्त आदि का दर्शन होता है।

आ) प्रेम काव्य :-

निर्गुणोपासक भक्तों की एक शाखा सूफी प्रेमाश्रयी शाखा है। वस्तुत: सूफी मत प्रेम भावना पर स्थित है। सूफियों ने लोक प्रिय प्रेम गाथाओं के माध्यम से प्रेम तत्व की अभिव्यक्ति की। जिसका आभास लौकिक प्रेम के रूप में मिलता है जो ईश्वरोन्मुख है। सूफी

ईश्वर को अपनी प्रियतमा के रूप में देखते हैं । सभी सूफी कवियों की काव्य वस्तु प्रेम ही है । चन्दायन, स्वप्नावती, मुग्धावती, मृगावती, मधुमालती, प्रेमावती पद्मावत आदि प्रेमाश्रित काव्यों में लौकिक प्रेम को काव्य की वस्तु बनाकर अपने लक्ष्य के अनुरूप काव्य का प्रणयन किया है । सूफियों के अनुसार यह सारा जगत एक ऐसे रहस्यमय प्रेम सूत्रों में बंधा है । उन्होंने लौकिक प्रेम और लौकिक सौन्दर्य को अलौकिक रूप में देखा है । सूफी कवि उस निर्गुण निराकार ईश्वर की उपासना करते थे । जो अनन्त प्रेम का भण्डार है । धार्मिक प्रतिबन्धों के कारण सूफी कवियों के लौकिक प्रेमाख्यानों में ऐतिहासिकता का अभाव है क्योंकि वे इनका उपयोग अलौकिक प्रेम को व्यक्त करने के लिए करते थे । सूफी कवियों की प्रेमगाथाएं अधिकांशत: हिन्दुओं के घरों की कथाए हैं जिनमें इन्होंने अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है । [1]

इ ‖ राम काव्य :-

वैष्णव भक्ति में रामोपासना अति प्राचीन है । मध्यकाल में रामानन्द राम भक्ति के संस्थापक है । राम काव्य का मूल स्रोत वाल्मीकि कृत रामायण है । राम कथा की लोक प्रियता से बौद्धों और जैनो ने भी इसे अपनाया है । मध्य काल में राम काव्य का स्वरूप विविध प्रकार से विकसित हुआ है । हिन्दी राम काव्य को प्रमुख कवि तुलसीदास है । प्रधानत: उनके काव्य तथा अन्य राम भक्त

---

1. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियां : जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल – पृ० 198.

कवियों के काव्यो का मुख्य विषय राम चरित है । इसमें विष्णु के राम रूप की भक्ति का पतिपादन मिलता है । तुलसी ने राम को पूर्ण ब्रह्म माना है । तत्कालीन राजनीतिक एवं सामाजिक परीस्थितियों के अनुरूप तुलसी ने राम को मर्यादा पुरूषोत्तम एवं शक्ति शील और सौन्दर्य के निदान-स्वरूप का चित्रण किया है । राम काव्य में वैष्णव धर्म के आदर्शों की प्रतिष्ठा है । राम काव्य में ज्ञान, कर्म और भक्ति की अलग-अलग सत्ता स्पष्ट करके भक्ति को सर्वश्रेष्ट बताया है । राम भक्ति को ही तुलसी संपूर्ण जीवन परीधि का केन्द्र मानकर चले हैं। तुलसी के काव्य में लोक संग्रह की भावना अविच्छिन्न रूप से व्याप्त है । उसमें सत्यं शिवं सुन्दरं साकार हो उठा है । तुलसी ने अपने काव्य का सृजन स्वान्त सुखाय किया है । तुलसी का राम काव्य उनके हृदय से निकला इसी कारण तुलसी का काव्य सर्व श्रेष्ट है ।

ई) कृष्ण काव्य :-

मध्यकालीन सगुण भक्ति काव्य के अन्तर्गत कृष्ण काव्य का विशेष महत्व है । कृष्ण भक्ति प्रतिपादन ही इस काव्य का उद्देश्य है । राम काव्य की तरह कृष्ण काव्य की भी परंपरा चली थी । इसमे विष्णु के कृष्ण अवतार की भक्ति का प्रतिपादन है । हिन्दी साहित्य में कृष्ण-काव्य का प्रारम्भ विद्यापति से माना गया है । हिन्दी में कृष्ण काव्य को उत्कर्ष प्रदान करने में वल्लभ संप्रदाय, राधावल्लभ संप्रदाय और हरिदास संप्रदाय का विशेष योगदान है । कृष्ण काव्य का चरमोत्कर्ष सूरदास में मिलता है । अष्टछाप कवियों के कृष्ण काव्य में महत्वपूर्ण स्थान है ।

कृष्ण काव्य में लीला-गान की जो परंपरा है उसमें कवियों के हृदय की सरसता एवं प्रेम उमड़ता है । सूर काव्य का विषय गोपाल कृष्ण की ब्रज लीला है । सूर के विनय पद उनके हृदय की भक्ति भावना को व्यक्त करते है । कृष्ण भक्ति साहित्य की पूर्णता केवल कृष्ण के बाल और किशोर जीवन तक सीमित है । कृष्ण काव्य का प्रमुख विषय कृष्ण की लीलाओं का गान है । वस्तुत: कृष्ण भक्ति शाखा में वात्सल्य, साख्य एवं माधुर्य भक्ति का प्राधान्य है । अत: इनके अनुरूप ही कृष्ण चरित का वर्णन कृष्ण काव्य में मिलता है । वात्सल्य भाव के अन्तर्गत कृष्ण की बाल लीलाओं का वर्णन है । सख्य भाव के अन्तर्गत कृष्ण और ग्वालों के जीवन की मन को रंजित करनेवाली घटनाएँ मिलती है । माधुर्य भाव के अन्तर्गत गोपी लीला प्रमुख है । श्रृंगार वर्णन के अन्तर्गत संयोग और वियोग दोनो भावनाएँ कृष्ण काव्य के सौन्दर्य को बढ़ा देती है ।

उ) जैन काव्य :-

यद्यपि जैन काव्य का उद्‌भव प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं में आदिकाल में ही हो गया था किन्तु इसका विकास 14 वीं शताब्दी में हुआ । जैन काव्य का मूल भाव शान्त भाव है । लोक कथाओं के माध्यम से चरित काव्यों का निर्माण हुआ । जैन भक्ति मार्ग का प्रति-पादन किया गया है । इनमें भक्ति भावना, आध्यात्मिक तत्व का विवेचन, दार्शनिक निरूपण श्रृंगार एवं समाज का चित्रण हुआ । जैन काव्य में मूलत : वैराग्य मूलक भक्ति है । शान्त भाव को जैन कवियों ने विविध

रूपों में अभिव्यक्ति दी है। जैन धर्म में ईश्वर को सृष्टि का विनायक न मानकर केवल चित्त और आनन्द का स्रोत माना है। जैन साहित्य में अहिंसा, दया तथा त्याग का प्रचार किया है। जैन मुनियों की रचनाएँ अपभ्रंश में है जो मूलत: धार्मिक है। जैन साहित्य में तीर्थ करों के चरित्र के अतिरिक्त नारायण और वासुदेव के चरित्र भी विशेष रूप से लिखे गए है। इस प्रकार धार्मिक काव्य प्रवृत्ति का हिन्दी साहित्य में विशेष योग रहा है।

ऊ) नीति :-

हिन्दी साहित्य के इतिहास के भक्ति युग में नीति काव्य की प्रवृति भी स्पष्ट रूप से मिलती है। नीति काव्य-प्रवृत्ति की परंपरा भी अति प्राचीन है।[1] आरम्भिक युग के प्राकृत, पालि, अपभ्रंश में नीति उपदेश सम्यक रूप में मिते है।" भक्ति युग में भी यह परंपरा अन्य प्रवृत्तियों के समान विकसित हुई है। नीति आध्यात्मिक, भौतिक और सामाजिक क्षेत्रों में मानव जीवन का पथ प्रशस्त करती है। इस युग में नैतिक उपदेश गोरख वाणी, कबीर, रविदास, नानक, ईश्वर दास, नरहरि, गंग, भक्त रहीम, बीरबल आदि की मुक्तक रचनाओं में देखा जा सकता है। इनमें मूलत: कुछ कवि नीति तत्त्व को ही अपनी काव्य वस्तु बनाकर नीति का तात्विक उपदेश दिया है। अनेक भक्त

---

1. हिन्दी साहित्य का प्रवृत्तिगत इतिहास - प्रताप नारायण टंडन - पृ. 203.

कवियों में जहाँ एक ओर ईश्वर के सगुण और निर्गुण रूपों की उपासना से संबद्ध काव्य की रचना की वहाँ दूसरी ओर तटस्थ भाव से नीति परक उपदेश भी दिए है । इस प्रवृत्ति का रीति काल में और विस्तार मिलता है ।

मध्यकाल में वीर काव्य की प्रवृत्ति यत्र तत्र दिखाई देता है । श्रीधर कृत " रणमल्ल छन्द " वीर काव्य है । इसमें ईडर के राजा रागमल्ल की एक युद्ध में ऐतिहासिक विजय का वर्णन है । जगनिक कविकृत अल्हड खण्ड भी वीर काव्य है ।

तेलुगु :-

मध्य कालीन तेलुगु साहित्य में संस्कृत के उत्कृष्ट काव्यों के भाषान्तरीकरण की प्रवृत्ति मिलती है यह क्रम बाद में भी जारी रहा है । महाभारत की रचना मूलत: नन्नय के बाद तिक्कना और एर्राप्रगड की रचना में यही प्रवृत्ति मिलती है । व्यास कृत महाभारत का अनुवाद करते हुए भी कवियों ने कल्पना को भी आधार बनाया है । इसी कारण तेलुगु महाभारत स्वतंत्र रचना बन गयी है ।

मध्य कालीन तेलुगु साहित्य को प्रवृत्ति की दृष्टि से तीन भागों में देख सकते हैं । प्रथम पुराणानुवाद द्वितीय धार्मिक प्रवृत्ति तृतीय प्रबन्ध काव्य की प्रवृत्ति । इनमें अतिरिक्त नीति काव्य लक्षण काव्य और वीर काव्य की प्रवृत्ति भी देखी जा सकती है । वस्तु की दृष्टि से तेलुगु साहित्य में धर्म, पुराण, ऐतिहासिक व्यक्ति, भक्त पुरुष इत्यादि को स्वीकृति हुई है ।

तेलुगु साहित्य के मूल में वैदिक धर्म की संरक्षा निहित है । मध्य कालीन तेलुगु साहित्य में धर्म का महत्व पूर्ण स्थान है । इस युग में शैव, वैष्णव धर्मों का उत्कर्ष देखा जा सकता है ।

अ) शैव काव्य :-

समस्त शैव साहित्य शैव धर्म के प्रचार के लिए लिखा गया है । शिव वृत्त ही काव्य वस्तु है । मल्लिकार्जुन कृत " शिव तत्व सार " वीर शैव धर्म के सिद्धान्तों को प्रति पादित करने वाला तात्विक ग्रन्थ है । पाल्कुरिंकि सोमनाथ ने वीर शैव धर्म को वैदिक मत के अनुरूप बनाने में काफी परिश्रम किया । शैव धर्म के प्रति पादन के लिए चतुर्वेदसार, अनुभवसार, रुद्र भाष्य, बसव पुराण, पंडिताराध्य चरित्र, वृषाधिप चरित्र, बसव रगड, बसवोदाहरण इत्यादि का प्रणयन किया । शैव साहित्य में शिवलीलाएँ, शैव भक्तों की कथाएँ, माहात्म्य , उनकी शिक्षा-दीक्षा इनके काव्य की वस्तु है ।

आ) पौराणिक काव्य :-

तिक्कना के समय तक काव्य वस्तु में परिवर्तन आ गया है । उन्होंने हरिहर नाथ तत्व को ग्रहण किया । धर्म का महत्व तो इनके समय में भी रहा है लेकिन इन्होंने शैव-वैष्णव धर्मों में समन्वय का प्रतिपादन किया है । इनकी काव्य वस्तु पुराणाश्रित है । निर्वचनोत्तर-रामायण में राम की कथा को वस्तु बना कर उत्तर रामायण की रचना की ।

इ) राम काव्य :-

तेलुगु साहित्य में राम कथा को काव्य वस्तु बनाकर अनेक रामायण और राम कथा काव्य रचे गए है । राम के जन्म से लेकर राज्याभिषेक तक की घटनाओं को इन काव्यों में अधिक स्थान दिया गया है । रंगनाथ रामायण, भास्कर रामायण, मोल्ल रामायण आदि राम कथा काव्य के संदर्भ में उल्लेखनीय ग्रंथ है । इनमें वाल्मीकि कृत रामायण के अतिरिक्त अनेक अवाल्मीकीय प्रसंगों का वर्णन भी किया गया है । वैष्णव धर्म का प्रचार भी इन काव्यों के एक और उद्देश्य रहा है ।

ई) कृष्ण काव्य :-

मध्यकालीन तेलुगु साहित्य में भागवत की कथा को वस्तु बनाकर अनेक काव्य रचे गए है । इनमें कृष्ण भक्ति का प्रतिपादन किया गया है । पोतनामात्य कृत श्रीमदान्ध्रमहाभागवत संस्कृत महा भागवत का अनुसरण होते हुए अनेक स्वतंत्र प्रसंगों, पौराणिक कथाओं को नवीन और भक्ति संयुक्त रूप में ढाला गया है । वैष्णव संप्रदाय के प्रचार में इन काव्यों की प्रमुखता है । कृष्ण की बाल चेष्टाएं, सख्य भाव, माधुर्य भाव भागवत में देखा जा सकता है । श्रृंगार रस, गोपीकाओं का विरह वर्णन आदि का महत्त्वपूर्ण स्थान है । कृष्ण भक्ति से संबंधित अनेक काव्य तेलुगु में रचे गए है लेकिन इनकी एक अलग धारा नहीं बही जैसे हिन्दी में है । तेलुगु में यक्षगान काव्य रूप में भी कृष्ण की कथा ही वस्तु है ।

उ) नीति काव्य :-

मध्यकालीन तेलुगु साहित्य में नीति तत्व को काव्य वस्तु बनाकर अनेक काव्य रचे है नीति तत्व का उपदेश अनेक लौकिक कथाओं के माध्यम से दी गई है। इनमें राजनीति, नीति के उपदेश मौजूद हैं। मडिकि सिंगन कृत सकल नीति सम्मत, गोनबुद्देश्य कृत नीतिशतक (सुमति शतक), कुचिराज एरेन्ना कृत सकल नीति कथा विधान, पंचतंत्र कवि की पंचतंत्र कथाएं, वेमना के पद्य, अय्यल राजु राम भद्रुडु कृत सकल कथा सागर संग्रह आदि नीति तत्व प्रधान रचनाएँ है।

ऊ) लक्षण काव्य :-

लक्षण काव्यों की रचनाएं मध्य युगीन तेलुगु साहित्य में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है। अलंकार, छन्द, रस आदि का प्रतिपादन इन काव्यों का उद्देश्य है। ज्योतिषशास्त्र, संगीत शास्त्र, वैद्य शास्त्र, व्याकरण शास्त्र छन्द शास्त्र, अलंकार शास्त्र आदि लिखे गए है।

ऋ) वीर काव्य :-

" पलनाटिवीर चरित्र " श्रीनाथ की रचना तेलुगु में वीर काव्य है। एक युद्ध जो आन्ध्र प्रान्त के पलनाडु प्रान्त में घटित हुआ था। उसका वीरोचित वर्णन इसमें हुआ है। जिसके मूल में वीर शैव और वैष्णव धर्मों के बीच के संघर्ष बताया जाता है। इस प्रकार वीर गाथा की प्रवृति मध्यकालीन तेलुगु साहित्य में देखी जा सकती है। इसी प्रकार कुमार धूर्जटी कृत " कृष्ण राय विजयमु " भी तेलुगु का वीर काव्य है।

7.1.1. तुलनात्मक अनुशीलन :-

मध्य कालीन हिन्दी और तेलुगु साहित्य की काव्य वस्तु में कुछ साम्य दिखाई देता है। यद्यपि तेलुगु साहित्य में अनुवाद की प्रवृत्ति अधिक दिखाई देती है। फिर भी वस्तु ग्रहण में एक रूपता मिलती है। हिन्दी साहित्य की मुख्यत: भक्ति प्रवृत्ति मिलती है। निर्गुण भक्ति के दो रूपों में संतो का ज्ञान तत्व और सूफियों का प्रेम तत्व विशेष उल्लेखनीय रहा। तो सगुण भक्ति के अन्तर्गत राम, कृष्ण, शिव को काव्य वस्तु बना कर काव्य रचना की गई। इस प्रकार हिन्दी में धर्म, भक्ति, नीति वीर तत्व दिखाई देती है तो उसी प्रकार तेलुगु साहित्य की मूल वस्तु में भी धर्म, धार्मिक व्यक्ति, पुराण, भक्ति आदि दृष्टि गोचर होते हैं। हिन्दी साहित्य में पुराणानुवाद की पद्धति दिखाई नहीं देती फिर पुराणों को दृष्टि में रखकर ही राम कथा-काव्य, कृष्ण कथा-काव्य, शैव काव्य रचे गए है। दोनों साहित्यों में नीतिपरक साहित्य लिखे गए है। नीति तत्व का उपदेश हिन्दी और तेलुगु दोनों काव्यों परिलक्षित होता है। उसी प्रकार लक्षण काव्य भी हिन्दी और तेलुगु साहित्य में रचे गए हैं। तेलुगु साहित्य में धार्मिक प्रवृत्ति अधिक है तो हिन्दी साहित्य में भक्ति प्रवृत्ति स्पष्ट दिखाई देती है।

7.2. मध्य कालीन साहित्य में काव्य रूप :

हिन्दी :-

मध्यकाल में उपलब्ध सामग्री से अनेक प्रकार के काव्य रूपों का उद्घाटन हुआ है। काव्य रूपों की दृष्टि से भक्ति काल काफी समृद्ध काल है। विविध काव्य प्रवृत्तियों के साथ अनेक काव्य-रूपों के दर्शन

होते हैं। साधारणत: रूप से बाहरी आकार का अर्थ लिया जाता है। बाहरी आकार या ढांचे से ही किसी वस्तु या पदार्थ का बोध होता है। वस्तुत: संस्कृत भाषा में महाकाव्य, खण्ड काव्य, प्रबन्ध काव्य, मुक्तक काव्य, कथा-काव्य, आख्यायिका आदि काव्य रूपों का विस्तार से विचार किया गया है।[1] डा॰ हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में जब-जब कोई जाति नवीन जातियों के संपर्क में आती है तब तब उसमें उसमें नई प्रवृत्ति आती है। नई आचार परंपरा का प्रचलन होता है नए काव्य रूपों की उद्‌भावना होती है और नए छन्दों में जन चित्त मुखर हो उठता है। नया छन्द नए मनो भाव की सूचना देता है।[2] मध्यकालीन काव्य रूपों को इस प्रकार देखा जा सकता है।

अ) चरित काव्य :-

संस्कृत, अपभ्रंश तथा नव्य भारतीय भाषाओं में चरित काव्य विपुल मात्रा में रचे गए हैं मध्य काल में चरित काव्यों की संख्या कम नहीं है। मूलक दास कृत " ध्रुव चरित्र " तुलसी कृत " राम चरित मानस ", नाभादास कृत रामचरित संग्रह ", हृदय राम कृत " सुदामा चरित ", परमानन्द दास कृत " ध्रुव चरित ", कृष्णदास कृत " जुगलमान चरित " नन्ददास कृत " सुदामाचरित " केशवदास कृत " वीर ब्रह्मरायल कृत " पद्दुम्नचरित आदि चरित काव्य है जिनमें चरित काव्य परंपरा अविच्छिन्न रूप से मिलती है।

1· आदि कालीन हिन्दी साहित्य - शम्भुनाथ पाण्डे - पृ॰ 216·

2· हिन्दी साहित्य का आदिकाल - पृ॰ 97·

आ) चर्चरी :-

मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में चर्चरी काव्य रूप मिलता है। चर्चरी के लिए चाचरी, चांचरी और चर्चरी आदि कई नाम है।[1] जिनदत्त सूरी का " चार्चरी " में 47 पद्यों में अपने गुरु जिन वल्लभ-सूरी का गुण गान किया गया है। वस्तुतः चर्चरी ताल और नृत्य के साथ गाये जानेवाला लोक गीत है। कबीर के बीजक का चांचरी काव्य रूप भी इसी का विकसित रूप है। इस प्रकार श्रृंगार प्रधान लोक गीत संत एवं सूफि कवियों के साहित्य में काव्य रूप के लिए समयको अपने अनुकूल बनाया है।

इ) मंजरी काव्य :-

मध्यकालीन हिन्दी साहित्य मंजरी काव्य विपुल मात्रा में प्राप्त होता है। महेश्वर सूरी कृत " संजम मंजरी ", अग्रदास कृत " रामध्यान मंजरी ", बाल कृष्ण कृत " ध्यान मंजरी ", दयान मंजरी, नन्द दास कृत " अनेकार्थ मंजरी ", मान मंजरी, रूप मंजरी, रस मंजरी, केशवदास कृत " राम अलंकृत मंजरी " आदि मंजरी काव्य के उदाहरण है।

ई) कथा कहानी - आख्यायिका :-

साधारणता कथा, कहानी, आख्यायिका वार्ता आदि शब्दों का प्रयोग समानार्थकरूप में प्रयोग किया जाता है। किसी भी इतिवृत्त का कथा तत्व का समावेश इनके लिए पर्याप्त समझा जाता है। प्रेमाख्यान

---

1. आदिकालीन हिन्दी साहित्य - शंभुनाथ पांडे - पृ. 221.

काव्य इस काव्य रूप के उदाहरण है । जान कवि कृत 29 प्रेमाख्यान उदाहरण के लिए कथा कनकावती, कथा कमनावती कथा रूप मंजरी आदि है । अलीमुराद कृत कथा कुंवरावती इत्यादि कथा काव्य की परंपरा में है ।

उ) चौपाई काव्य :-

चौपाई काव्य रूप में निर्मित अनेक रचनाएँ इस युग में प्राप्त होती है । जिदत्त चौपाई, नेमिनाथ चौपाई विवेक चौपाई आदि ऐसी ही रचनाएँ है । चौपाई प्रसिद्ध छन्द है । इसे कवियों ने काव्य रूप के रूप में प्रयोग किया है ।

ऊ) गीत काव्य :-

इस युग के साहित्य में गेय पदों के रूप दिखाई पड़ते है । मध्ययुगीन काव्यों में गीत काव्यों का विशेष महत्त्व है । संपूर्ण संत साहित्य गेय मुक्तक रूप में लिखा गया है । भक्ति कालीन कृष्ण भक्ति काव्य में गीत काव्य की बडी मनोहरणी छटा है । संगीतात्मकता के कारण कृष्ण काव्य के पदों का सृजन विभिन्न राग रागनियों में मिलता है । सूरदास के पद, मीरा के पद गीत काव्य के सुन्दर उदाहरण हैं। जैन कवि वादिचन्द) ।65।) कृत श्रीपाल आख्यान गीत काव्य है । मध्यकालीन जैन काव्य गीत काव्य ही अधिक है ।

ब) शतक काव्य :-

शतक साहित्य का प्रणयन मध्यकाल के हिन्दी साहित्य में दृष्टि गोचर होता है । शतक लक्षण के अनुसार शतक में लगभग 108 पद्य होनी चाहिए । त्रिभुवन चन्द्र कृत " चन्द्र शतक " मुनारक कृत अनक शतक और तिक शतक ऐसे ही शतक काव्य हैं ।

ए) मुक्तक काव्य :-

मुक्तक काव्य रूप को साहित्य में हमेशा आदरणीय स्थान मिलता रहा है । कथात्मक प्रबन्ध या इसमें विषयगत बहुत लम्बे निबंध की योजना नहीं होती । हेमचन्द्र कहते हैं - " अनिबद्ध मुक्तादि " अर्थात जो अनिबद्ध हो वे मुक्तादि है । इसमें जीवन के किसी एक पक्ष या किसी दृश्य का चित्र मिलता है । रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार " मुक्तक में प्रबंध की भाँति रस की धारा नहीं रहती । इसमें तो रस की छींटे पड़ते हैं, जिसमें हृदय की कलिका थोडी देर के लिए खिल उठती है । यदि प्रबन्धात्मक काव्य एक विस्तृत वनस्थली है तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता है ।[1] मध्यकालीन भक्ति काव्यों में निर्गुण संत साहित्य में अधिकतर मुक्तक रूप में कविताएँ उपलब्ध होती है । संतों ने गुरु भक्ति, प्रेम, विरह, चेतावनी आदि भावनाओं को अलग-अलग समझाया है । इस प्रकार संत मुक्तक काव्य को प्रधानता देकर उनकी वाणी को जनता तक लाने में सफल हुए । तुलसी कृत " विनय पत्रिका " के पद मुक्तक रूप के आदर्श है । भक्ति युगीन

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ. 247.

कृष्ण काव्य में मुक्तक रूप की प्राधान्यता है। इन्होंने मुक्तक के लिए कविता, सवैया, दोहा, रोला, चौपाई इत्यादि का प्रयोग किया है। मध्यकालीन जैन साहित्य में भी मुक्तक के रूप मिलते हैं।

ऐ) खण्ड काव्य :-

मध्य कालीन हिन्दी साहित्य में खण्ड काव्य भी प्राप्त होते है। मूलतः मध्यकालीन जैन साहित्य में ये खण्ड काव्य के रूप प्रचुर मात्रा में हैं। कुमुदचन्द कृत " भरत बाहुबलि " खण्ड काव्य है। नरोत्तम दास कृत " ध्रुव चरित " भी खण्ड काव्य है। वादिचन्द कृत " श्रीपाल आख्यान " भी इस युग का खण्ड काव्य है।

ओ) फागु काव्य :-

फाग या फागू आरम्भिक कालीन महत्त्वपूर्ण काव्य रूप है। इसके मूल में वसंत ऋतु में गाए जाने वाले लोक गीत ही जान पड़ते हैं। फागू को एक प्रकार का गेय रूपक कहा जा सकता है। इस काव्य रूप का प्रयोग मध्यकालीन जैन भक्ति काव्य में देखा जा सकता है। शलिभद्र फागू, नेमिनाथ फागू, जिनदत्त फागू जम्बु स्वामी फागू आदि इसके उदाहरण है।

औ) नाटक :-

मध्य कालीन भक्ति साहित्य में नाटक भी प्राप्त होते है। परन्तु इनकी संख्या बहुत कम है। प्राणचन्द्र चौहान कृत " हनुम न्नाटक " और केशवदास कृत " हनुम न्नाटक " इसके उदाहरण है।

अ) प्रबन्ध काव्य या महाकाव्य :-

प्रबन्ध काव्य को संस्कृत साहित्य में विशेष आदर प्राप्त हो चुका था। मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में प्रबंध काव्य या महाकाव्य विपुल मात्रा में रचे गए हैं। तुलसी कृत " राम चरित मानस ", सूफी प्रेम धारा के लगभग समस्त प्रेमाख्यान काव्य इसी प्रबन्ध रूप में ही रचे गए हैं। मुख्यत: जायसी कृत पद्मावत। केशव दास कृत राम चन्द्रिका भी महाकाव्य माना जाता है। पौराणिक तत्वों से युक्त होने पर " मानस " महाकाव्य है। प्रेमाख्यान होते हुए भी " पद्मावत " महाकाव्य है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सफल प्रबन्ध काव्य को महाकाव्य कहा है। शुक्ल जी की दृष्टि में महाकाव्य के आवश्यक गुणों में मानव जीवन के पूर्ण दृश्य की योजना सर्वोपरि है और वस्तु संगठन के लिए उन्होंने घटनाओं की सम्बद्ध श्रृंखला शब्द का प्रयोग किया है।[1] इस प्रकार प्रबन्ध काव्य से पूरित सूफी प्रेमाख्यान और प्रबन्ध प्रधान राम काव्य हिन्दी साहित्य में उपलब्ध होते हैं।

तेलुगु :-

मध्यकालीन तेलुगु साहित्य में अनेक प्रकार के काव्य रूपों का दर्शन होता हैं। काव्य रूपों की दृष्टि से यह अत्यन्त उत्कृष्ट काल है। विभिन्न काव्य प्रवृत्तियों के साथ ही विभिन्न काव्य रूपों का भी दर्शन होता है। तेलुगु साहित्य में पौराणिक प्रबन्ध काव्य या महाकाव्य, मुक्तक काव्य आख्यायिका, कथा काव्य, गीत काव्य, चंपू

---

1. जायसी ग्रन्थावली - पृ. 66.

काव्य, द्विपद काव्य, चरित काव्य और उदाहरण काव्य इत्यादि काव्य रूपों का दर्शन होता है । इन रूपों के आधार पर ही प्राय: तेलुगु साहित्य को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है ।

अ पौराणिक प्रबन्ध या महाकाव्य :-

तेलुगु साहित्य में " प्रबन्ध " शब्द का प्रयोग एक विशिष्ट काव्य विधा को लक्ष्य करके किया जाता है । आचार्य पिंगलि लक्ष्मी कांतम जी के अनुसार संस्कृत में दण्डी के द्वारा सर्गबद्ध / महाकाव्य के लिए निरूपित लक्षणों को ही तेलुगु के लक्षण कारों ने " प्रबंध " के लक्षणों के रूप में ग्रहण किया है । "[1] तेलुगु साहित्य में प्रबन्धों की निजी विशेषता है । इसी कारण इनको महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है । इस युग के तेलुगु साहित्य में प्रबन्धात्मक काव्यों की रचना विपुल मात्रा में हुई है । तिक्कन कृत " निर्वचनोत्तर रामायण ", श्रीनाथ कृत श्रृंगार नैषद, अल्लसानि पेद्दना कृत " मनु चरित्र ", रामराज भूषण कृत " वसु चरित्र ", हरिश्चन्दोपास्थान नंदि तिम्मना कृत " पारि - जातप हरण ", कृष्णदेवराय कृत " आमुक्त माल्यदा ", पिंगलि सूरना कृत " कलापूर्णोदय " तेनालि रामकृष्ण कवि कृत " पांडुरंग महात्म्य " इत्यादि इस युग के महत्वपूर्ण प्रबन्ध लक्षणों से युक्त महाकाव्य है ।

---

1. तेलुगु विज्ञान सर्वस्वमु - तृतीय भाग - पृ. 607.

आ) कथा काव्य :-

तेलुगु साहित्य में कथा काव्य प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। जिनके साथ चरत्नु या चरित्र शब्द लगा हुआ है। केतना कृत " दश कुमार चरित " 12 आश्वासों का प्रबन्ध प्रधान कथा काव्य है।[1] मंचना कृत " केयूर बाहु चरित्र " पालकुरिकि सोमना " बसवपुराणं " की अनेक भक्ति पूरित कथाएँ, जक्कन कवि कृत " विक्रमार्क चरित्र " तेलुगु के कथा काव्य है। अनन्तनामात्य कृत्य भोजराजीयम भी कथा काव्य है।

इ) शतक काव्य :-

मध्य युगीन तेलुगु साहित्य में शतक काव्य का महत्वपूर्ण स्थान है। शतक के लक्षणों के अनुसार 108 पद्य होने चाहिए। मल्लिकार्जुन पंडिताराध्य कृत " शिव तत्व सारमु " को प्रथम शतक काव्य माना जाता है। इसमें 97 पद्य है. शतक शैली में रचे जाने के कारण इसे शतक काव्य माना जाता है। पालकुरिकि सोमनाथ कृत " वृषाधिप शतकमु " इसमें 108 चंपकोत्पलमालाओं का प्रयोग किया गया है। यथावक्कुल अन्नमय्या कृत " सर्वेश्वर शतक " में 12!2 मत्तेभ-शार्दूल छन्दों का प्रयोग हुआ है। कहा जाता है कि तिक्कना ने " कृष्ण शतक " की रचना की। बद्देना कृत " सुमति शतक " तेलुगु में नीति उपदेश काव्य है। इसमें 162 पद्य है। श्रीगिरि कविकृत " श्री [illegible] शतक ", [illegible] कृत [illegible] शतक, अड्डम रामु तिम्मय्या कृत रघुनाथ शतक इत्यादि शतक काव्य के [illegible] उदाहरण है।

---

1. [illegible] साहित्य समीक्षा - [illegible] - पृ

ई) द्विपद काव्य :-

द्विपद छंद का आरम्भ संपूर्ण काव्य के लिए तेलुगु में सर्व प्रथम पालकुरिक सोमनाथ ने अपने किया है। द्विपद प्रचलित लोक भाषा का छन्द है। द्विपदा छन्द का जातिगत संबंध है। देशीय पद और गीतों में प्राचीन काल से ही द्विपदा का दर्शन होता है। पालकुरिक सोमनाथ ने बसव पुराण में प्रथम बार द्विपदा का प्रयोग दिया है। इनका " पंडिताराध्य चरित्र " भी द्विपद काव्य है। इनके " बसव पुराण " में 6288 द्विपद है। " पंडिताराध्य चरित " में 11,910 द्विपद है। गोन बुद्दारेड्डी कृत " रंगनाथ रामायण " द्विपदा में ही लिखा गया है। द्विपदा मात्रा छन्द दो चरणों से युक्त रचना है। शिव कवियों ने जम कर द्विपदा का प्रयोग किया है। प्रौढ़ कवि मडिकिसिंगन ने भागवत का दशम स्कंध द्विपदा में लिखा। गणपनाराध्य कृत " स्वर शास्त्र " द्विपदा काव्य है। ताल्लपाक कवियों ने भी द्विपदा का प्रयोग किया है। तिम्मन कृत " सुभद्रा कल्याण " लघु द्विपद काव्य है। इस प्रकार इस युग में द्विपदा का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है।

उ) चंपू काव्य :-

चंपू काव्य रूप का तेलुगु साहित्य में बहुमुखी प्रयोग हुआ है। चंपू अर्थात पद्य गद्यात्मक रूप। शिव कवियों की रचनाओं में चंपू रूप मिलता है। आन्ध्र महाभारत भी चम्पू काव्य ही कहा जा सकता है। पालकुरिक सोमनाथ कृत " वृषाधिप शतक, केतना कृत " दशकुमार चरित " मारना कृत मार्कंडेय पुराण ", एर्रना कृत हरिवंश, श्रीनाथ का " हरविलास " इत्यादि चंपू काव्य के उदाहरण है।

ऊ] गीत काव्य :-

गीत काव्य की परंपरा अति प्राचीन है । इस युग में भी शैव और वैष्णव साहित्य में गीत काव्य मिलते है । पालकुरिके सोमनाथ की रचनाएँ इसके उदाहरण है । मल्लिकार्जुन का शंकर गीत, आनन्द गीत, भंडारु बसवन्न भव्यगीत गीत काव्य के उदाहरण इनके अतिरिक्त ताल्लपाक अन्नमाचार्य के भक्ति पूरक पद, सर्वेश्वर शतक, त्याग राजु के भक्ति गीत, क्षेत्रय्या के पद रामदास कृत गीत आदि को गीत काव्य के रूप में रखकर देखा जा सकता है ।

ऋ] चरित काव्य :-

तेलुगु साहित्य में चरित काव्य रूप का भी दर्शन होता है । शैव साहित्य में मूलत: वीर शैव साहित्य में शैव चरित काव्यों का निर्माण हुआ है । केतना कृत " दशकुमार चरित्र ", मंचना कृत " केयूर बाहु चरित्र " सोमनाथ कृत " पंडिताराध्य चरित्र ", इनके अतिरिक्त विक्रमार्क चरित्र, नवनाथ चरित्र, पंडिताराध्य चरित्र, पलनाटि वीर चरित्र, अन्नमाचार्य चरित्र, षटचक्रवर्ति चरित्र, चन्द्रभानु चरित्र सावित्री चरित्र, सारंगधर चरित्र, उद्भटाराध्य चरित्र आदि चरित्र काव्य के महत्वपूर्ण उदाहरण हैं ।

ए) आख्यान काव्य :-

तेलुगु में आख्यानों की संख्या भी कम नहीं है । अनेक संस्कृत आख्यानों को तेलुगु में लिखा गया है । इनमें मंत्री गौरना कृत " हरिश्चन्द्रोपाख्यान " रामराज भूषण कृत " हरिश्चन्द्र नलोपाख्यान " रुद्र कवि कृत निरंकुशोपाख्यान, शंकर कवि कृत हरिश्चन्द्रोपाख्यान कोट-शिव रामप्पा कृत सामन्दोपाख्यान लिगम गुंट राम कविकृत साबोपाख्यान, दुगुडपति दुग्गय्या कृत नासिकेतोपाख्यान आदि आख्यान काव्य महत्व पूर्ण है ।

ऐ) उदाहरण काल रूप :-

उदाहरण काव्य रूप तेलुगु का ही प्रमुख काव्य रूप है । उदाहरण काव्य अनिबद्ध काव्यों में गिना जाता है । मधुर काव्यों के लिए उदाहरण का प्रयोग किया जाता है ।[1] यह अक्षर गण बद्ध वृत्त रचना है । मार्ग देशी कविता सम्मिश्रण से यह रूप निर्मित हुआ है । स्तोत्र रूप को भी उदाहरण कहा जाता है ।[2]

तेलुगु में सर्व प्रथम पाल कुरिकि सोमनाथ ने उदाहरण काव्य का श्री गणेश किया है । इनका प्रयोग " बसवोदाहरण " महत्वपूर्ण है । सोमनाथ को उदाहरण काव्य का प्रवर्तक कहा जा सकता है । पंडिताराध्य का " शिव तत्व सार " को भी उदाहरण काव्य माना जाता है । रावित्रिपुरांतक कृत " त्रिपुरांत कोदाहरण उदाहरण काव्य के उदाहरण है ।

---

1. तेलुगु साहित्य समीक्षा - जी॰ नागय्या - पृ॰ 119.
2. - वही - पृ॰ 120.

ओ) मंजरी काव्य :-

मंजरी काव्य भी तेलुगु साहित्य में प्राप्त होते हैं। ताल्लपाक-अन्नमाचार्य कृत " श्रृंगार मंजरी " रामराज रंगाजप्पराज कृत चमत्कार मंजरी उल्लेखनीय है। इनके अतिरिक्त कुछ लक्षण काव्य, नीति काव्य भी तेलुगु साहित्य में प्राप्त होते है।

7·2·1· तुलनात्मक समीक्षा :-

हिन्दी और तेलुगु साहित्य में काव्य रूपों की दृष्टि से विविधता और बहु-रूपता दिखाई देती है। संस्कृत में प्रयुक्त अनेक काव्य रूपों को हिन्दी और तेलुगु के कवियों ने स्वीकार किया है जैसे - महा काव्य, प्रबन्ध काव्य मुक्तक, कथा-आख्यान गीत काव्य इत्यादि। इनके अतिरिक्त देशी काव्य रूपों को भी हिन्दी और तेलुगु के कवियों ने अपनाया है। जैसे हिन्दी में फागू, चौपाई, बरबै आदि है, उसी प्रकार तेलुगु में द्विपदा और उदाहरण इत्यादि है। इसके अतिरिक्त चरित काव्य, गीत काव्य, कथा काव्य, गेय कथात्मक काव्योंमेंदोनों साहित्यों में समानता दिखाई देती है। प्रबंध और मुक्त रूप में दोनो साहित्यों में दिखाई देती है। इस प्रकार काव्य रूपों की दृष्टि से हिन्दी और तेलुगु में परंपरागत काव्य रूपों के प्रयोग का निर्वाह हुआ है। प्रवृत्ति की दृष्टि से तेलुगु में महाकाव्य या प्रबन्ध काव्य की बहुलता है तो हिन्दी साहित्य में गेय और मुक्तक काव्य की।

7•3• मध्यकालीन साहित्य में काव्य रूढ़ियाँ :

7•3•1• हिन्दी :-

मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में काव्य एवं कथानक रूढ़ियों का बहुत प्रयोग मिलता है। इस युग की कृतियों में रूप विधान सम्बंधी ऐसी रूढ़ियाँ प्रयोग में आने लगी जिनकी परंपरा बहुत दिनो तक चलती प्रबन्ध काव्य में अपनी इष्ट देवता का मंगलाचरण आत्म परिचय, दुर्जन निंदा, सज्जन प्रशंसा, ग्रन्थ रचना का उद्देश्य, विषय प्रतिपादन, अन्त में आशीर्वादात्मक वचन का प्रतिपादन होना चाहिए। उसी प्रकार मुक्तक काव्य में कवि के नाम का रखा जाना कुछ ऐसी काव्य पद्धतियाँ है। जिन्हें कवि रचना प्रारंभ करने से पहले ही उनको ध्यान में रखता है।

मध्यकालीन संत काव्यों में परंपरागत काव्य रूढ़ियों का निर्वाह पूरी तरह से नहीं हुआ। संत काव्य गेय-मुक्तक शैली में रचा गया है। सभी संतों ने अपना परिचय काव्य में नहीं दिया फिर भी संतवाणी में कवि का नाम प्राप्त है। संतों ने अनेक लौकिक विषयों को लेकर अपनी वाणी का श्रृंगार किया है।

" हिन्दू तुरक की एक राह है सद्गुरु यहै बताई।
कहै कबीर सुनो हो सन्तों राम न कहेऊ खोदाई ।।

-- कबीर ग्रन्थावली

सूफी कवियों में फारस की मसनवी परंपरा का प्रभाव दिखाई देता है । प्रेम मार्गी कवियों ने मसनवी पद्धति के अनुसार कथारंभ पूर्व ईश्वर वन्दना मुहम्मद साहब की स्तुति, तत्कालीन बादशाह की प्रशंसा तथा अपना परिचय दिया है । मध्यकालीन वर्णनात्मक शैली में नगर उपवन बारात आदि का वर्णन किया गया है । उसी प्रकार भारतीय कथानक रूढ़ियों का भी सूफी कवियों ने प्रयोग किया है । काव्य में गति लाने के लिए सूफी कवियों ने भारतीय कथानकरूढ़ियों का व्यवहार किया है । भारतीय कथानक रूढ़ियों में चित्र दर्शन या स्वप्न दर्शन जन्य प्रेम, शुक-सारिका संवाद आदिकेद्वारा नायिका या नायक के रूप देख या सुनकर आसक्त होना, पशुपक्षियों की बात चीत से भावी घटना का संकेत पाना, वेश बदलना, युद्ध, संघर्ष, शैतान अंत में मंदिर या चित्रशाला में प्रिय-प्रियतमा का मिलना इत्यादि है । सूफी प्रेम मार्गी कवियों ने इन रूढ़ियों का पूरी तरह से प्रयोग किया है ।

इसी प्रकार सगुण भक्ति की राम भक्ति शाखा के कवियों में भी काव्य रूढ़ियों का पालन किया है । तुलसी कृत मानस में प्रबन्ध काव्य की रूढ़ियों का प्रयोग मिलता है । कृष्ण भक्त कवियों ने मुक्त गेय पद्धति का अनुसरण किया है । काव्य रूढ़ियों में काल्पनिक काव्य रूढ़िऔरकथानक काव्य रूढ़ि का प्रयोग मिलता है । इस प्रकार मध्यकालीन भक्ति साहित्य में परंपरागत काव्य रूढ़ियों का प्रयोग मिलता है ।

7·3·2· तेलुगु :-

तेलुगु साहित्य में भी काव्य रूढ़ियों का पालन लगभग उसी प्रकार मिलता है । मध्यकालीन तेलुगु साहित्य में पुराणानुवाद की काव्य पद्दति मिलती है । जिसका आरंभ 11 वीं शती में नन्नय ने आरंभ की । इसी पद्दति का अनुकरण अनेक कवियों ने किया है । इसी कारण अनेक पुराणों का तेलुगु में अनुवाद किया गया है । इसके बाद शैव धर्म प्रचारार्थ शैव साहित्य का निर्माण होता है । इसमें भी कवियों ने संस्कृत साहित्य से आगत काव्य रूढ़ियों का सम्यक् प्रयोग किया है । मंगला चरण, काव्य उद्देश्य, पूर्व वर्ति कवियों का स्मरण, शिव भक्तों का उल्लेख, भक्ति-परक कथाओं का समावेश इत्यादि इनके काव्य में मिलता है । वैष्णव धर्म के प्रचारक कवियों ने भी इन काव्य रूढ़ियों का प्रयोग किया है । तेलुगु साहित्य में प्रबंध काव्यों की संख्या अधिक है अत: कवियों ने प्रबंध काव्य रूढ़ि का निर्वाह करने में नहीं हिचके । इनमें प्रबंध काव्य के लिए " एक नायकाश्रयत्व " और वस्तु संबंधी एकता प्रधान गुण है । काव्य में अष्टादश वर्णन होने चाहिए । इनमें श्रृंगार प्रधान रस है । आवश्यकता के अनुसार अन्य रसों का प्रयोग होना चाहिए । अलंकारिक भाषा का प्रयोग होना चाहिए ।

तेलुगु महाकाव्यों में मंगलाचरण की काव्य रूढ़ि मिलती है । इसके अतिरिक्त तेलुगु के महाकाव्यों में विस्तृत अवतारिका का विधान भी एक उल्लेखनीय विशेषता है । इष्ट देवता की वन्दना, गुरु की वन्दना, पूर्व कवियों की स्तुति, सुकवि स्तुति, कवि का वंश परिचय, काव्य रचना का प्रेरक स्वप्न वृतान्त, आश्रयदाता नरेश या मंत्री की अभ्यर्थना । काव्य समर्पण तेलुगु महाकाव्य में रूढ़िगत है । इनका प्रयोग इस युग के कवियों ने पूरी तरह किया है ।

7·3·3· तुलनात्मक समीक्षा :-

हिन्दी और तेलुगु में काव्य रूढ़ियों में समानताएं दिखाई देती है । प्राचीन काव्य रूढ़ियों का प्रयोग हिन्दी और तेलुगु कवियों ने गौरव और आदर के साथ किया है । काव्य रूढ़ियों के प्रयोग में कवियों ने अपनी प्रतिभा दिखाई । यद्यपि प्रस्तुत करने की विधि भिन्न रही हो लेकिन उनका उद्देश्य एक था । हिन्दी और तेलुगु महाकाव्य के बाह्य लक्षण एवं काव्य रूढ़ियाँ भिन्न-भिन्न परिवेश और परंपरा के अनुसार विकसित हैं । वातावरण गत साम्य एवं वैषम्य के अनुरूप काव्य रूप के पालन में साम्य और अन्तर स्वभाविक है ।

7·4· मध्यकालीन साहित्य में रस प्रवृत्ति दिशाएँ :-

7·4·1· हिन्दी :-

मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में श्रृंगार, शांत, वात्सल्य आदि नव रसों का समावेश हुआ है । श्रृंगार रस के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का सुन्दर, चित्रण किया गया है ।

संत काव्य में शांत और श्रृंगार रसों का अधिक चित्रण हुआ है । प्रणय की दोनो अवस्थाओं संयोग और वियोग का अत्यन्त मनोहर वर्णन हुआ है । उपदेशात्मक सूक्तियों में शान्त रस की अभिव्यक्ति हुई है । संत साहित्य के संयोग पक्ष के अंतर्गत रूपाकर्षण जन्मानुराग, प्रिया-

मिलना तुरता, हर्षोल्लास, लज्जा, आदि का चित्रण मिलता है। इसके वियोग पक्ष में प्रवत्स्यत् पति का प्रिय को विदेश जाने से रोकना, विरह जनित वेदना, प्रियतमा तक संदेश प्रेषण आदि का मार्मिक चित्रण हुआ है। कबीर आदि सन्तों ने श्रृंगार रस वह लौकिक हो या अलौकिक उसमें अनुपम रस है। विरह वर्णन का उदाहरण :

" चकवी बिछुरी रैन की आई मिली पर भाति।
जो जन बिछुरे राम से ते दिन मिले न राति
विरह कमंडल कर लिए बैरागी दोऊ नैन।
मांगे दरस मधुकरी छके रहे दिन रैन ।।
बासरि सुख ना रैन सुख, न सुख सपने मांह।
कबीर बिछुड़्या राम सूंना सुख धूप न छांह ।।

-- कबीर ग्रन्थावली

सूफी प्रेमाख्यानों में प्रधानतः श्रृंगार रस की व्यंजना हुई है। सर्व प्रथम नायक नायिका की ओर आकर्षित होता है। उसकी प्राप्ति के लिए विरह वेदना तथा अन्य संकटों को झेलता है। पूर्व राग को जागृत करने के लिए गुण-श्रवण, चित्र व स्वप्न दर्शन आदि का आश्रय लिया जाता है। उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत सूफियों ने सखा-सखी, वन, उपवन, ऋतु परिवर्तन का सहारा लिया है। संयोग श्रृंगार में इनकी रुचि कम है। श्रृंगार के अतिरिक्त वीर रस का भी वर्णन हुआ है। रत्न सेन और अलाउद्दीन के प्रसंग में वीर रस का सम्यक् विवेचन हुआ है। प्रसंगानुसार करुणा, शान्त एवं बीभत्स रसों की अभिव्यक्ति हुई है।

राम काव्य व्यापक काव्य है। अतः इसमें सभी रसों का समावेश स्वाभाविक ही है। फिर भी युगीन प्रवृत्ति और व्याप्ति की दृष्टि से सेवक सेव्य भाव की प्राधनता है। भक्ति मूला होने के कारण इनमें शान्त रस की प्रधानता है। इसमें श्रृंगार के संयोग और वियोग का समावेश है। तुलसी साहित्य में विशेषकर राम चरित-मानस में सभी रसों का निर्वाह हुआ है। नारद प्रसंग में हास्य रस की सुन्दर सृष्टि हुई है। युद्ध वर्णन में वीर और रौद्र रस की वृष्टि हुई। लक्ष्मण मूर्छा प्रसंग में करुण रस, राम के ब्रह्मत्व निरूपण में भक्ति रस की छटा है। तुलसी ने श्रृंगार वर्णन में पूरी तरह उभर नहीं सके।

हिन्दी कृष्ण काव्य में मूल रस भक्ति रस है। कृष्ण साहित्य में वात्सल्य, शान्त, श्रृंगार रस का सुन्दर पोषण हुआ है। इनकी भक्ति में दैन्य भावना निहित है। सूर के पदों में भी दैन्य भावना भी मिलती है। वात्सल्य और श्रृंगार के चित्रण में कृष्ण काव्य के भक्त कवि अद्वितीय है। वात्सल्य के चित्रण में जितने सूक्ष्म भावों का वर्णन सूर ने किया है वैसे अन्यत्र दुर्लभ है। सख्य भाव के चित्रण में भी कृष्ण भक्त कवियों ने अपनी काव्य प्रतिभा दिखाई है। कृष्ण भक्ति काव्य का लोकप्रिय क्षेत्र श्रृंगार भाव का चित्रण है। भक्ति भाव मिश्रित श्रृंगार की उद्‌भावना माधुर्य में परिणत है। आचार्यों द्वारा यह मधुर रस भी घोषित हुआ है। श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का समावेश अति मनोरम बन पड़ा है।

7·4·2· तेलुगु :-

शिष्य कवियों के साहित्य में नव रसों का यदोचित प्रयोग हुआ है । नन्नेचोड के कुमार संभव में श्रृंगार रस के साथ वीर, भयानक और बोभत्स रौद्र और हास्य रसों का बहुत सुन्दर चित्रण हुआ है । पालकुरिके सोमनाथ में " नवरसो " के प्रयोग से जनो को अपनी ओर आकृष्ट किया । इन्होंने नवरसों को " वीर शैव " के अनुकूल बनाकर वर्णन किया है । सोमनाथ कृत बसव पुराण में भक्ति और वीर रसों की अधिकता है । " पंडिताराध्य चरित्र " में मुख्यत: गुरु भक्तमंडली की कथाओं में श्रृंगार रस दिखाई देता है । तेलुगु में रचित रामायण काव्यों में भी नव रसों का समावेश हुआ है । मूलत: शान्त और करुणा, वीर रसों का वर्णन हुआ है । तिक्कना कृत " महाभारत " का महत्व उसमें प्रयुक्त रसों के कारण ही है । तिक्कना कृत महा भारत शान्त रस प्रधान काव्य है । कुछ उदाहरण देख सकते हैं --

1· धर्मराज " अनिल कोप रसंबुं पेर्मि चेरिचे " -- विराट 2-137

2· कीचक वध के बाद सैरन्ध्री - " अंतरंगमुन निंडिन हास्य रसंबु मोमुपै वेतिविरियंगनीक " -- विराट 3-38

3· " रौद्र रस निनोदियैन यर्जुनुड " - विराट - 5-78

4· " सर्वहृदु प्रीतुद्यु शान्त रस मोपु ब्रूमी - स्त्री 2-63

5· " हरिहर नाथुनि मोमुन दलु कोत्तनदि दरहास

रसमु - अव 2-80

इत्यादि । इस प्रकार नव रसों को व्यक्त करने के लिए " रस " शब्द का प्रयोग किया है । तिक्कना के विराट पर्व में उत्तराभिमन विवाह प्रसंग में उदात्त श्रृंगार रस का प्रयोग है । द्रौपदी-कीचक प्रसंग में श्रृंगार रसाभास हुआ है । युद्ध पर्व में वीर, बीभत्स, उद्योग-पर्व में भी वीर रस का चित्रण किया है । उत्तर कुमार प्रज्ञावाक्यों में हास्य रस छिटकता है । विश्वरूप संदर्शन में अद्भुत रस, अभिमन्यु वध और स्त्री पर्व में करुण रस का वर्णन हुआ है । इस प्रकार तिक्कना के " महाभारत में रस रस रमणीयता सर्वत्र दृष्टि गोचर होती है । एर्राप्रगडा और नाचन सोमन के काव्यों में भी नव रसो का सुन्दर चित्रण हुआ है । श्रीनाथ कवि के काव्यों में शान्त रस की प्रधानता है । अन्य नवरसों का भी समान प्रयोग हुआ है श्रृंगार रस की छटा भी अधिक प्राप्त होती है । श्रीनाथ कवि श्रृंगार रस की अराधना की है । भक्त कवि पोतना के काव्य में भक्ति रस की अधिकता है । रायल युग के काव्योंमें भी नव रसों का प्रयोग हुआ है । भक्ति और श्रृंगार रसो का अधिक पोषण हुआ है ।

7.4.3. तुलनात्मक समीक्षा :-

हिन्दी और तेलुगु साहित्यों में रस की दृष्टि से यद्यपि एकरूपता दिखाई देती है फिर भी रसों के प्रस्तुतीकरण में भिन्नता दिखाई देती है । क्योंकि हिन्दी साहित्य में मुख्यत: भक्ति, वात्सल्य और मधुर रसों के प्रतिपादन में कवियों ने अपनी विशेष रुचि दिखाई है । तेलुगु साहित्य में भी श्रृंगार रस की अधिकता दिखाई देती है परन्तु कवियों ने रस प्रयोग में काव्य शास्त्रीय दृष्टि अपनाई है । अन्य रसों

के प्रयोग में दोनो साहित्यों में कोई कमी नहीं है । दोनो साहित्यों में प्रसंग वश नव रसों का प्रतिपादन हुआ है ।

7·5· मध्यकालीन हिन्दी काव्य में अलंकार :

7·5·1· हिन्दी :

मध्यकालीन हिन्दी साहित्य अलंकार योजना की दृष्टि से महत्वपूर्ण है । इस युग के कवियों ने अपने काव्य को विभिन्न अलंकारों से सुशोभित किया है । भक्ति युगीन संत काव्य के लिए " कागद मसि छुवों नहि कलम गही न हाथ " वाली उक्ति चरितार्थ होती है । संत कवि अलंकार रहित बोल चाल की भाषा को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है । इनकी आडम्बर रहित भाषा प्रयोग के कारण डा·श्याम सुन्दर ने लिखा है " कबीर ने अपनी उक्तियों पर बाहर से अलंकारों का मुलम्मा नहीं लगाया । संत कवि कहीं भी अलंकारिता से लादने का प्रयत्न नहीं किया है किन्तु अनुभूति की तीव्रता के कारण उसमें काव्यांचित सभी गुण आ गए । अभीष्ट भावों की अभिव्यक्ति बहुत ही कलात्मक बन पडी है । सूफी प्रेमाख्यानों में सादृश्यमूलक अलंकारों का सफल प्रयोग किया है । जायसी के " पद्मावत " में विभिन्न अलंकारों का सफल प्रयोग हुआ है । उपमा, उत्प्रेक्षा, रूप अलंकार इन्हें विशेष प्रिय है । अनेक स्थानों पर स्वभावोक्ति, अन्योक्ति और रूपकातिशयोक्ति अलंकारों का भी बहुत मनोरम प्रयोग किया है । इनके अतिरिक्त श्लेष, व्यतिरेक, तद्गुण, विभावना, संदेह, अनुप्रास तथा निदर्शना आदि अलंकारों का सफल प्रयोग किया गया है ।

सूफी प्रेमाख्यानों में उपमानों की अधिक संख्या में प्रयोग हुआ है। राम भक्ति काव्यों में शब्दालंकारों का विशेष प्रयोग नहीं हुआ है। केशव के काव्य में शब्दालंकारों का आडम्बरपूर्ण प्रयोग मिलता है। तुलसी के काव्य में प्राय: सभी अलंकारों को आदर मिला है। राम काव्य उपमा और रूपक और श्लेष का कहीं-कहीं प्रयोग अधिक हुआ है। कृष्ण भक्ति काव्य में उपमा रूपकों का सफल प्रयोग हुआ है। सूरदास अपने वर्णन का आरंभ करते समय पहले अंकारो को रखकर फिर अपनी बात करते है। सूर के काव्य में उपमा और रूप को का जम कर प्रयोग किया है। सूर के पद-पद में अलंकारों की वर्षा होती हैं। इनके पदों में उपमा और रूपकों की छटा और अन्योक्तियों की ठाट लक्षणा और व्यंजना के चमत्कार मिलता है। नन्द दास के काव्य में अनुप्रास का अधिक प्रयोग के साथ उपमा रूपक आदि अलंकारों का प्रयोग हुआ है। इस प्रकार भक्ति कालीन साहित्य में कवियों ने अपनी प्रतिभा के अनुसार अलंकारों का प्रयोग किया है।

7.5.2. तेलुगु :-

मध्यकालीन तेलुगु साहित्य में अलंकारों का सुन्दर और मनोहर प्रयोग हुआ है। अलंकारों के प्रयोग में कवियों ने अपनी काव्य प्रतिभा दिखाई है। वैसे तेलुगु के प्राय: सभी कवि तेलुगु और संस्कृत के प्रकांड रहे हैं।

शिष्ट कवियों ने अपनी बात को जोर देकर व्यक्त करने के लिए अनेक उपमानों का प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त उत्प्रेक्षा, अति - शयोक्ति, रूपक, स्वभावोक्ति आदि का अर्थ युक्त प्रयोग किया है। काव्य को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए समानार्थक अनेक शब्दों का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार शिष्ट कवियों ने अपने काव्य को अलंकृता भाषा से प्रभावपूर्ण बनाया है। तेलुगु के रामायण काव्यों में भी विभिन्न अलंकारों का प्रयोग हुआ है। इनमें रूपक, उपमा, स्वभावोक्ति आदि है। बाद के कवियों ने शब्दालंकारों का अधिक प्रयोग किया। अन्त्यानुप्रास, वृत्यानुप्राय का भी अधिक प्रयोग हुआ है। वृत्यानुप्रास का उदाहरण --

" मणिघृणि गणयुतं रराना, झण झणि तागणित रणित चरणांचित
भू
षण घोषण रणन विच, क्षण कंकन, किंकिणी झंकृतुलारन् ।। [1]

श्रीनाथ के काव्य में उपमा अलंकार का अधिक प्रयोग हुआ है। इन्होंने अपने काव्य को रस वत्तर बनाने के लिए अमूलक अनेक अलंकारों का प्रयोग किया है। [2] इन्होंने शब्दालंकारों के प्रयोग में अपनी प्रतिभा दिखाई प्रोतना के काव्य में विभिन्न अलंकारा ये सफल प्रयोग हुआ है। अत्यप्रास, अनुप्रास, रूपक, अतिशयोक्ति आदि अलंकारों का सुन्दर प्रयोग हुआ है। श्रीकृष्ण देवरायलु कृत " आमुक्त माल्यदा में सभी अलंकारों का प्रयोग हुआ है। रायलु के काव्य में उत्प्रेक्ष-उपमा से मिश्रित स्वभावोक्ति का

1· भास्कर रामायण - बालकांड - पद्य - 91

2· तेलुगु साहित्य समीक्षा - जी·नागय्या - पृ· 369·

अधिक प्रयोग हुआ है । इनकी अमुक्तमाल्यदा में अतिशयोक्ति का भी प्रयोग हुआ है । कृष्ण देवरायलु के दरबारी अष्ट दिग्गजों ने भी शब्दा - लंकारों का सुन्दर प्रयोग किया है । पिंगलि सूरना की रचनाओं में श्लेषालंकार का सफल प्रयोग हुआ है । इन्होंने शब्द श्लेष, अर्थ शेष, वृत्ति श्लेष, शब्दान्वय श्लेषा का सफल प्रयोग हुआ है । इस प्रकार मध्यकालीन तेलुगु साहित्य में अलंकारों का सुन्दर और सफल प्रयोग हुआ है ।

7•5•3• तुलनात्मक अनुशीलन :-

अलंकार प्रयोग में हिन्दी और तेलुगु कवियों ने अपनी विशेष प्रतिभा दिखाई है । हिन्दी के संत कवियों ने अलंकारों की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया । क्योंकि उपदेश मूलक साहित्य में अलंकारों की प्रधानता नहीं होती । मिश्रित सधुक्कड़ी भाषा के माध्यम से वे जनता तक पहुँचे हैं । लेकिन सूफीकवि, रामभक्त कवि, कृष्ण भक्ति आदि ने अलंकारों का सफल प्रयोग किया । प्रधानत: वे भारतीय काव्य रचना परंपरा से अनु है । हिन्दी और तेलुगु के कवियों ने शब्दालंकारों का प्रयोग किया है । इसके अतिरिक्त परंपरागत अलंकारों का हिन्दी और तेलुगु कवियों ने अपने काव्य में स्वीकार किया है । उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, अन्योक्ति, स्वभावोक्ति आदि अलंकारों को हिन्दी और तेलुगु कवियों समान रूप से प्रयोग किया है । इस प्रकार मध्यकालीन हिन्दी और तेलुगु साहित्य अलंकार योजना की दृष्टि से महत्वपूर्ण है । जो भारतीय परंपरा को आगे भी कही ही कही जा सकती है ।

7·6· मध्य कालीन साहित्य में छन्द :-

7·6·1· हिन्दी :-

मध्यकालीन हिन्दी साहित्य ने अपभ्रंश के चरित काव्यों के समान दोहा चौपाई शैली को ही मूल रूप में स्वीकार किया है। दोहा चौपाई अथवा अतिरिक्त सोरठे, सवैये, प्लवंगम और बरवै जैसे छन्दों का प्रयोग किया है। सूफी कवि ने भी प्राय: इन्हीं छन्दों का प्रयोग किया है। सूफी प्रेमाख्यान के प्रसिद्ध कवि जायसी ने भी दोहा-चौपाई को अपनाया है। इनका अवधि भाषा में सफल प्रयोग हुआ है। रचना भेद भाषा भेद के समान राम काव्य में छन्द भेद भी आरंभिक कालीन छप्पय, दोहे, चौपाई, कुण्डलियाँ, सोरठा, सवैया, घनाक्षरी, तोमर, त्रिभंगी आदि छन्द प्रयुक्त हुए हैं। तुलसी के काव्य में रोला, चौपाई दोहा, हरिगीतिका, कुण्डलि छप्पय आदि छन्दों का प्रयोग हुआ है। कृष्ण काव्य भावात्मक काव्य होने के कारण इस साहित्य में गीत [पद] का प्रयोग हुआ है। कलात्मक प्रसंगों में चौपाई, चौबोला, सार, तथा सखी छन्दों का प्रयोग किया है। दोहा-रोला का मिश्रित रूप भी इस काव्य में मिलता है। इसके अतिरिक्त कृष्ण काव्य में कवित्त सवैया, छप्पय, कृष्ण कुण्डलियाँ, गीतिका, हरिगीतिका, अरिल्ल आदि छन्दों का प्रयोग हुआ है।

7·6·2· तेलुगु :-

मध्यकालीन तेलुगु साहित्य में प्राचीन छन्दों का सफल प्रयोग हुआ है। शिव कवियों ने देशी छन्द का आदर किया है। संस्कृत के अनुष्टब के समान तेलुगु में द्विपदा छन्द प्राथमिक छन्दों का आधार

है । ख्याति प्राप्त तेलुगु के छन्दों में द्विपदा का स्थान सर्व प्रथम है । गेय रूपक द्विपदा को प्रासयति देकर पद्यत्व प्रदान करने का श्रेय पालकुर्कि-सोमनाथ को प्राप्त है । द्विपदा के अतिरक्त शिव कवियों ने रगड छन्द का अधिक आदर किया । रगड भी देशी छन्द है यह मात्रा छन्द है । सोमनाथ कृत " बसव रगड " इसका उदाहरण है । सीस पद्य का प्रथम प्रयोग सोमनाथ ने अपने " चेन्नमल्लु सीसमु " नामक शतक काव्य में किया ।[1] इनके अतिरिक्त शिव कवियों ने त्रिभंगी, क्रौंचपद, तरुवोज, वन मयूर आदि विशेष वृत्तों का प्रयोग किया है । इस प्रकार शिव कवियों ने द्विपदा, तरुवोजा, रगड, सीसमु, कंदमु आदि देशी छन्दों का प्रयोग कर देशी छन्दों के प्रति अपना आदर प्रकट किया है । तिक्कन के काव्य में रसानुसार 38 विशेष वृत्तों का प्रयोग किया है इनमें मुख्यतः स्रग्धरा, महास्रग्धरा, उत्पलमाला का अधिक प्रयोग हुआ है ।[2] इनके अतिरिक्त कंदमु, सीसमु चंदकमाला, तरुवोज शार्दूल, मत्तेभ आदि छन्दों का प्रयोग रस के अनुसार किया है । वीर रस पूर्ण वर्णन में शार्दूल जैसे छन्दों का प्रयोग किया है । स्त्रीपर्व में स्रग्धरा, महास्रग्धरा का प्रयोग किया गया है । एर्राप्रगडा में भी प्रायः इन्हीं छन्दों का प्रयोग किया है । श्रीनाथ ने सीस छन्द के प्रति पक्षपात दिखाया अर्थात् उन्होंने सीसमु का अधिक प्रयोग किया है । अन्य छन्दों का भी प्रयोग मिलता है । पोतना ने कंद पद्यों को अधिक आदर किया । परवर्ति रायल युग के कवियों ने भी इन्हीं छन्दों का प्रयोग किया है । इस प्रकार मध्यकालीन तेलुगु साहित्य में देशी छन्दों के साथ संस्कृत के छन्दों का भी संमवेत प्रयोग मिलता है ।

1· तेलुगु साहित्य समीक्षा - जी·नागय्य - पृ· 137·

2· - वही - पृ· 243·

7.6.3. तुलनात्मक अनुशीलन :-

छन्द प्रयोग में हिन्दी और तेलुगु साहित्यों में बहु रूपता दिखाई देती है । दोनो साहित्यों की छन्द योजना बड़ी विस्तृत है । दोनो प्रान्तों के कवियों ने पूर्ववर्ति अर्थात् संस्कृत छन्दों को अपनाकर उन्हें अपने अनुरूप प्रयोग किया है । देशीय छन्दों के प्रयोग में मानो दोनो साहित्यों में क्रान्ति ही आ गई । देशी छन्दों के प्रयोग दोनो में प्रान्तों के कवियों ने अपनी प्रतिभा दिखाई । दोनो प्रान्तों के कवियों ने कुछ विशेष छन्दों के प्रयोग में अधिक श्रद्धा दिखाई है । संस्कृत छन्दों को अपनी भाषा के अनुरूप कुछ छन्द परक नियमों में परिवर्तन लाने का प्रयत्न किया है । लेकिन मूलभूत नियमों का पालन दोनो प्रान्तों में गौरवपूर्ण दृष्टिकोण से किया गया है ।

7.7. मध्यकालीन साहित्य में काव्य शैली :-

7.7.1. हिन्दी :-

मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में विभिन्न शैलियों का प्रयोग किया गया है । इस युग के संत साहित्य में मुख्यतः गेय मुक्तक शैली का प्रयोग हुआ है । संत कवि अशिक्षित थे इन लोगों ने प्रायः बोल चाल की भाषा को ही अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है । इनकी भाषा में ब्रज, खड़ी बोली, पूर्वी हिन्दी, फारसी अरबी, राजस्थानी, पंजाबी भाषाओं के शब्दों का सम्मिश्रण हो गया है । इनकी शैली में अलंकारिकता दिखाई नही देती है । इनकी शैली में अनुभूति की तीव्रता

दिखाई देती है । इनकी शैली में एक रूपता नहीं है । अनेक प्रकार की शैलियों का प्रयोग हुआ है । प्रेमाख्यानों में वर्णनात्मक शैली दृष्टि-गोचर होती है । मध्यकालीन सगुण भक्ति काव्य में विभिन्न प्रकार की शैलियों का प्रयोग हुआ है । इनका अनेक शैलियों पर अधिकार था । राम काव्य में सब शैलियों की रचनाएँ मिलती है । राम - चरित मानस और अष्टछाप वीर गाथाओं की प्रबंध पद्धति में है । रामगीतावली और रामध्यान मँजरी में विद्यपति की गीत पद्धति, रामायण महाभारत और हनुमन्नाटक में संस्कृत में राम कवियों की संवाद पद्धति है और रामचन्द्रिका रीति पद्धति पर रची गई है । तुलसी काव्य में अनेक शैलियाँ मिलती हैं । इनमें सूक्ति पद्धति और प्रबन्ध पद्धतियाँ मिलती है । इनकी शैली में प्रौढ़ता है । सूर की शैली में पूर्ण परिपाक है । उनकी शैली विद्यापति तानसेन, तथा ब्रज की लोक प्रचलित गीत पद्धति से प्रभावित है । कृष्ण साहित्य में गीति शैली के सभी तत्व भावात्मकता, संगीतात्मकता, वैयक्तिकता संक्षिप्तता तथा भाषा की कोमलता आदि पूर्ण रूप में मिलते हैं । शब्द शक्ति, अलंकार, काव्य गुण आदि सभी काव्य के उपकरणों से कृष्ण साहित्य संपन्न है ।

7·7·2· तेलुगु :-

मध्यकालीन तेलुगु साहित्य में विभिन्न शैलियों का प्रयोग मिलता है । शिव कवियों ने देशी शैली का आदर के साथ प्रयोग किया । इनका इतिवृत मार्गी शैली में ही ग्रहण किया गया है । गद्य-पद्य शैली से अतिरिक्त देशी जानु तेलुगु का प्रयोग शिव कवियों ने किया है । द्विपदा शैली शिव कवियों की विशेषता है ।

तिक्कना ने प्रबन्ध शैली में अपनी काव्य रचना की । मार्गी-शैली की अधिकता दिखाई देती है । तिक्कना की शैली में प्रौढ़ोक्ति, रस सक्ति, वर्णनात्मकता प्रौढ़ता दिखाई देती है । भव्य काव्य ऐति-हासिक महाभारत को प्रबन्ध रूप देकर नाटकीय शैली का प्रयोग किया । यह तिक्कना के काव्य गत विशेषता है । एर्रना ने प्रबन्ध शैली को अपनाकर काव्य रचना की । इनकी शैली में भावात्मकता, वास्तविकता, स्वभाविकता का दृष्टि गोचर होती है । सूक्ति वैचित्र इनकी विशेषता है । रामायणों की रचना में चंपू शैली दिखाई देती है । श्रीनाथ ने भी प्रबन्ध शैली को अपनाया है । इसमें पौराणिक काव्य शैली दिखाई देती है । इनकी शैली में प्रौढ़ता, सरसता वर्णनात्मकता भावा-त्मकता सूक्ति वैचित्रता है । इस प्रकार श्रीनाथ के काव्य में मार्गी-देशी शैली का मिश्रित रूप दिखाई देता है । पोतना ने मंद्र गंभीरता की शैली दिखाई देता है । श्रीकृष्ण देवराय की आमुक्तमाल्यदा " में आलंकारिक शैली दृष्टिगोचर होती है । प्रबंध शैली में प्रौढ़ प्रबन्ध की रचना की। इसमें वर्णनात्मकता और भावात्मकता के साथ प्रौढ़ता दिखाई देती है । परवर्ति कवियों में शैली में यही लक्षण दिखाई देती है ।

वाग्येकारों ने पद को अपनाया है । पद को तेलुगु में कृति और कीर्तन भी कहा गया है । इस में जन साधारण की भाषा को अपनाकर सुबोध और सरल बनाने का प्रयत्न है ।

7.7.3. तुलनात्मक अनुशीलन :-

शैली की दृष्टि से हिन्दी और तेलुगु साहित्यों में बहु रूपता दिखाई देती है । दोनों साहित्यों में गेयमुक्तक शैली, प्रबन्धात्मक शैली का समान प्रयोग दिखाई देता है। देशीय शैली का प्रयोग दोनों साहित्यो में दृष्टि गोचर होता है । दोनों साहित्यों में अनुभूति की तीव्रता स्पष्ट दिखाई देती है । दोनों साहित्यों की शैलियों में वर्णनात्मकता, भावात्मकता, रमणीयता संगीतात्मकता, अलंकारिकता, रस युक्तता, पौराणिकता आदि दिखाई देती हैं । इस प्रकार शैली की दृष्टि से दोनों साहित्यों को भव्य कहा जा सकता है । यह भारतीय साहित्य की एक मौलिक तथा सम प्रवृत्ति के रूप में रेखांकित हो जाती है ।

8. निष्कर्ष

मध्यकालीन हिन्दी और तेलुगु साहित्यों में काव्यगत प्रवृत्तियों की दृष्टि से कई समानताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। यद्यपि वस्तु ग्रहण में कुछ असमानताएँ भी देखने को मिलती हैं। तत्कालीन राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों ने दोनों साहित्यों में एक विशेष प्रकार की वस्तु को ग्रहण करने के लिए कवियों को विवश किया। संत कवियों की निर्गुण बाणी, प्रेमाश्रयी कवियों के प्रेम काव्य, राम भक्त कवियों के राम काव्य और कृष्ण भक्त कवियों के कृष्ण काव्य तथा जैन काव्यों के पीछे तत्कालीन समाज का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। भक्ति-आन्दोलन के प्रभाव से हिन्दी साहित्य में भक्ति की प्रधानता दिखाई देती है। इस युग के कवियों के लिए वस्तु को ग्रहण करने में कोई प्रतिबंध या रोक टोक नहीं था इसी कारण कवियों ने स्वच्छन्द रूप से इष्ट देव की भक्ति को अपने काव्य में प्रतिपादित किया है।

परन्तु जहाँ तक तेलुगु कवियों का संबंध है वहाँ वस्तु ग्रहण में हिन्दी कवियों की सी स्थिति नहीं थी। तेलुगु प्रान्त में तत्कालीन समाज में व्याप्त शैव और वैष्णव धर्मों का प्रभाव तेलुगु कवियों पर स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। शैव व वीर शैव धर्म के प्रचार के लिए शिव कवियों ने शिव पुराण से वस्तु को स्वीकार किया और शैव दर्शन व संप्रदाय का प्रतिपादन अपने काव्यों में प्रस्तुत किया। इसके लिए इन कवियों ने जन भाषा और देशीय छन्दों को आधार बनाया है।

वस्तुत: इस युग के तेलुगु कवियों ने पुराणों से काव्य वस्तु ग्रहण की है इसी कारण कई पुराणों का तेलुगु में अनुवाद किया गया है । इस प्रकार पुराणानुवाद की पद्धति तेलुगु साहित्य की विशेषता है । धर्म, पुराण, भक्ति, प्रबन्धत्व तेलुगु कवियों की मुख्य काव्य वस्तु रही है । पुराणानुवाद की पद्धति हिन्दी साहित्य में दिखाई नहीं देती ।

मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में प्रयुक्त काव्य रूपों में अनेक रूपता और बहु रूपता दिखाई देती है । हिन्दी और तेलुगु साहित्य में लग-भग उन सभी काव्य रूपों का प्रयोग हुआ है जिनका प्रयोग संस्कृत साहित्य में हुआ था । जैसे प्रबन्ध, मुक्तक, प्रगीत, आख्यान, चरित - काव्य इत्यादि । इन काव्य रूपों के प्रयोग में कवियों ने अपना पांडित्य दिखाई है ।

इस युग के हिन्दी और तेलुगु कवियों ने परंपरागत काव्य रूढ़ियों एवं प्रणयन पद्धतियों का निर्वाह किया है । इनके प्रतिपादन में भिन्नता अवश्य दिखाई देती है ।

हिन्दी साहित्य के मध्य युग में भक्ति प्रवृत्ति अधिक है अत: भक्ति रस प्रधान काव्य अधिक रचे गए । भक्ति प्रतिपादन में कवियों ने मधुर और वात्सल्य रसों का अधिक स्वभाविक चित्रण किया गया है । लेकिन प्रसंगानुसार अन्य रस जैसे करूण, वीर, बीभत्स रसों का भी सहज चित्रण किया गया है । तेलुगु कवियों ने भी श्रृंगार रस का अधिक पोषण किया है । लेकिन अन्य रसों का भी समान प्रयोग हुआ है । इनकी विशेषता यह थी कि इन्होंने रस प्रयोग में काव्य शास्त्रीय

दृष्टि अपनाई है । छन्द प्रयोग में हिन्दी और तेलुगु कवियों ने अपनी प्रतिभा दिखाई है । देशी छन्दों के प्रयोग में दोनों साहित्यों में समानता दिखाई पड़ती है । संस्कृत छन्दों को अपनी भाषा के अनुरूप प्रयोग किया है । हिन्दी और तेलुगु कवियों ने अलंकार प्रयोग में अपनी-अपनी प्रतिभा दिखाई है । परंपरागत अलंकारों के प्रयोग में कवियों ने अपनी रुचि दिखाई है । हिन्दी और तेलुगु साहित्यों में शैली की दृष्टि से एक रूपता दिखाई देती है । प्रबन्ध शैली गेय - मुक्तक शैली, संगीतात्मकता, वर्णनात्मकता, तथा भावात्मकता स्पष्ट दिखाई देता है । इस प्रकार हिन्दी और तेलुगु साहित्यों में प्रवृत्तियों का निर्वाह हुआ है ।

उपसंहार

मध्यकालीन हिन्दी और तेलुगु साहित्यों की सबसे बड़ी विशेषता है कि दोनो को अधिकांशत: राज्याश्रय प्राप्त हुआ अथवा हो सकता था। फिर भी प्राय: कवि ने अपने इच्छानुसार काव्य रचना करने में सक्षम हुए हैं। इस युग के हिन्दी और तेलुगु प्रान्तों में शासन करने वाले राज वंशों का मुख्य ध्येय राजनीतिक एकता स्थापित करते हुए भारत में हिन्दूत्व की स्थापना करना था। इस कार्य को संपन्न करने का श्रेय इस युग के दार्शनिक संप्रदायों को प्राप्त है। परोक्ष रूप से इस युग के कवियों को भी इसका श्रेय प्राप्त है। भक्ति आन्दोलन के परिणाम स्वरूप जिन संप्रदायों का उदय हुआ उनसे जनता में धार्मिक और सांस्कृतिक एकता के भाव जागृत हो सके हैं। इन संप्रदायों के प्रभाव से ही भक्ति साहित्य को भारत में ख्याति प्राप्त हो सकी है।

साहित्य का विकास सामाजिक विकास एवं सांस्कृति विकास से संभव है। साहित्य के इतिहास में भाषा एवं शिल्प को समझना अत्यन्तावश्यक है। वर्ग विभाजित समाज में साहित्य के विकास को भी वर्ग संघर्ष में देखना आवश्यक है क्योंकि साहित्यकारों की अभि-व्यक्ति अपने वर्ग की मानसिकता के अनुरूप होता है। एक युग के तीन धाराएँ हो सकती है - समृद्ध वर्ग की विचार धारा एवं मान-सिकता से संबद्ध साहित्य, जन मानस का प्रतिनिधि साहित्य और मिश्रित साहित्य। साहित्यक मूल्य तो परिवर्तन शील है। साहि-त्येतिहास दर्शन का ठोस आधार आस्था है जो साहित्येतिहास को प्रेरित करती है।

साहित्येतिहास की सार्थकता इसी में है कि वह सामाजिक यथार्थ तथा साहित्येतिहास के वैचारिक, भावात्मक एवं कलात्मक तथ्यों पर आधारित हो। हिन्दी और तेलुगु साहित्येतिहास लेखन का आरंभ आधुनिक काल में ही हुआ है। हिन्दी और तेलुगु साहित्येतिहासों में

प्राय: भिन्न-भिन्न दृष्टियों को अपनाया गया है । यह कार्य इतिहासकार का दृष्टिकोण, परंपरा, प्रवृत्यात्मकता कवि व्यक्तित्वपरकता एवं युग बोध परक गुणों को लेकर संपन्न होता है । दो भिन्न दृष्टिकोणों से संपन्न किए गए साहित्येतिहासों में प्राय: असमानताएँ अधिक मिलती हैं । परंपरा का निर्वाह हिन्दी साहित्येतिहासकारों ने किया है लेकिन तेलुगु में परंपरा का निर्वाह दिखाई नहीं देता । प्रवृत्ति और परंपरा हिन्दी साहित्येतिहासकारों में दिखाई देती है । तेलुगु साहित्य के इतिहासकारों ने कवि व्यक्तित्व को और राजवंशों को महत्व दिया गया है । इसी को दृष्टि में रखकर काल-विभाजन भी किया गया है ।

हिन्दी साहित्य में आलोच्य युग को पूर्व मध्यकाल, भक्तिकाल के नामों से पुकारा है इनके निर्गुण भक्ति और सगुण भक्ति आदि उपनाम भी देखने को मिलते हैं।तेलुगु साहित्य में इस युग को अनेक नामों से पुकारा है । शिव कवि युग, तिक्कना युग, श्रीनाथ युग और रायलयुग इत्यादि । हिन्दी और तेलुगु साहित्येतिहास परस्पर भिन्न दृष्टिकोणों से रचित है । इनके आधार पर एक समन्वित दृष्टि रखकर ही साहित्येतिहास लेखन संपन्न किया जा सकता है । जो तुलनात्मक अध्ययन के लिए सरल और सुलभ हो ।

मध्यकालीन भारतीय राजनैतिक इतिहास में उत्तर और दक्षिण भारत में लगभग एक समान परिस्थितियाँ देखने को मिलती हैं । मध्यकाल में दोनो प्रान्तों में इस्लाम धर्म का प्रवेश हो चुका था । मुसलमानों के आक्रमणों का सामना उत्तर भारत के राजाओं को खुलकर करना पड़ा । आन्ध्र प्रान्त में काकतीयों में समयमेंमुसलमान ने प्रवेश पाया । धीरे-धीरे

दक्षिण भारत के कई प्रान्त दिल्ली सल्तनत में मिल गए । दोनों प्रान्तों में मुसलमानों के आगमनसेउनके प्रभाव से विरक्त होकर अनेक स्वतंत्र राज्य स्थापित हुए । इस्लाम धर्म के प्रभाव को कम करने के लिए उत्तर भारत में भक्ति आन्दोलन आरम्भ हुआ । जिसका मुख्य ध्येय हिन्दुत्व की रक्षा करना ही था । तेलुगु प्रान्त में कोई भक्ति आन्दोलन तो नहीं चला फिर भी भक्ति साहित्य विपुल मात्रा में उपलब्ध होता है । इसका मुख्य कारण तत्कालीन समाज में व्याप्त दो भिन्न धर्म ही थे, पहला शैव धर्म और दूसरा वैष्णव धर्म । इन्ही के आधार पर तेलुगु में भक्ति साहित्य उपलब्ध होता है ।

मध्यकालीन धर्म और संस्कृति के क्षेत्र में हिन्दी और तेलुगु साहित्यों में अनेक समानताएँ दृष्टिगोचर होती हैं । धर्म का दोनो क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान रहा है । जैन, शैव, वैष्णव आदि का प्रभाव दोनो साहित्यों में दिखाई देता है । दोनो साहित्यों के मूल में वैदिक धर्म को संरक्षा निगूढ़ रूप से निहित है।हिन्दुत्व की रक्षा दोनो साहित्यों का मुख्य ध्येय था । हिन्दी और तेलुगु प्रान्तों के हिन्दू राजवंशों ने धर्म को आश्रय देकर वैदिक धर्म के पुनरुत्थान को अपना योगदान दिया है । धर्म और भक्ति के विकास के लिए विशिष्टाद्वैत, द्वैतवाद, अद्वैतवाद आदि अनेक दार्शनिक संप्रदाय जागृत हुए । जिनका उद्देश्य इस्लाम धर्म को कम करना और हिन्दु धर्म का पुनरुत्थान था ।

दो भिन्न परिवारों की भाषाएँ होती हुई भी हिन्दी और तेलुगु भाषाओं के मूल में संस्कृत भाषा का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है । भाषा की प्रकृति, विकास, साहित्यिक भाषा के अवतरण

मानक रूपों का विकास आदि दोनो भाषाओं में भिन्न-भिन्न दशाओं से उभरते हैं। मध्य कालीन हिन्दी में भाषा का विकास देखा जा सकता है। अनेक बोलियाँ प्रचलन में आगई। जन भाषा, मिश्रित भाषा, अवधि, ब्रज बुन्देल खण्डी आदि भाषा रूप देखने को मिलते हैं। तेलुगु भाषा में भी ग्रन्थिक भाषा के अतिरिक्त जन भाषा या देशी भाषा का विकास देखा जा सकता है जिसे जानु तेलुगु अच्च तेलुगु आदि नामों से पुकारा गया है।

भारतीय भक्ति साहित्य की भूमिका में भक्ति का आधार भारतीय तात्विक चिंतन है। तात्विक चिंतन ने भक्ति की नयी और विशिष्ट दिशा को ग्रहण किया। परन्तु राजनैतिक परिवर्तनों के परिणाम स्वरूप और बाहरी तत्वों के आगमन से मुख्यत: इस्लाम धर्म के आगमण से एक भारत व्यापी धार्मिक परिवर्तन या प्रभाव दृष्टि - गोचर होने लगता है। धार्मिक या दार्शनिक संप्रदायों से एक नई क्रान्ति ही खड़ी हो गई। दक्षिण में शैव, वीर शैव, वैष्णव और वीर वैष्णव धर्मों ने एक नया रूप धारण किया। आलवारों ने भक्ति के क्षेत्र में नया परिवर्तन ला दिया। इस परिवर्तन ने अनेक दार्शनिक वादों को जन्म दिया। इन दर्शनों की सामाजिक परिणति भक्ति साहित्य की विशेषता है। कवि और कृतियों के संदर्भ में कहा जा सकता है कि मध्यकालीन हिन्दी और तेलुगु साहित्यों में कवियों ने भक्ति प्रवृत्ति को अधिक प्रधानता दी है। हिन्दी क्षेत्र में भक्ति आन्दोलनका प्रभाव रहा है। इसी के परिणाम स्वरूप हिन्दी क्षेत्र निर्गुण ज्ञानाश्रयी साहित्य, प्रेमाश्रयी साहित्य, सगुण भक्ति के राम भक्ति काव्य और कृष्ण भक्ति काव्य तथा शैव और जैन काव्यों का दर्शन होता है। कवियों ने अपने इष्टदेव की भक्ति का प्रतिपादन स्वच्छन्द रूप से किया है। तेलुगु

साहित्य के मूल में शैव व वीर शैव धर्म का प्रमुख योगदान रहा है। साथ ही वैष्णव का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। कवियों ने इन धर्मों के प्रचार के साधन के रूप में अपनी काव्य रचना की है। हिन्दी और तेलुगु कवियों पर तत्कालीन समाज व राजनैतिक परिस्थितियों का प्रभाव रहा है।

प्रवृत्ति की दृष्टि से हिन्दी और तेलुगु साहित्यों के मध्य काल में कई समानताएँ देखने को मिलती है। वस्तु और भाषा में यद्यपि दोनो साहित्यों में भिन्नता दिखाई देती है फिर भी भक्ति की प्रवृत्ति दोनो साहित्यों में दिखाई देती है। पुराणानुवाद की प्रवृत्ति तेलुगु साहित्य में दिखाई देती है। काव्य रूपों, काव्य रूढ़ियों के निर्वाह मे दोनो साहित्यों में प्राचीन परम्पराओं को ही स्वीकार किया है। प्रबन्ध, मुक्तक, गीत, आख्यान खण्ड काव्य आदि प्राचीन संस्कृत के जो काव्य रूप है दोनो साहित्यों में मिलते हैं। हिन्दी में चर्चरी, रासो, फागू आदि देशी रूप देखने को मिलते हैं तो तेलुगु में द्विपदा, उदाहरण, रगड आदि देशी रूप मिलते हैं। रस छन्द अलंकार और काव्य शैली में कवियों ने परंपरा का निर्वाह किया है।

मध्य युगीन भक्ति काव्य ने भारतीय साहित्य में एक अभूतपूर्व समता की स्थापना की है। साहित्यिक प्रवृत्ति अभिव्यक्ति की सरलता, अनुभूतिकीआर्द्रता और वस्तु की महानता को लेकर जन सामान्य तक पहुँचने को महत अभियान के रूप में इस काव्य को देखा जा सकता है। तेलुगु और हिन्दी साहित्य में प्राप्त इस महत भारतीय एकता को और साहित्यिक गरिमा को रेखांकित करने का एक प्रयत्न प्रस्तुत शोध का लक्ष्य रहा है। इस लक्ष्य की दिशा में प्रस्तुत अध्ययन प्रथम प्रयास नहीं कहा जा सकता

किन्तु अध्ययन की दिशाओं को और प्रभावसूत्रों को जोडने का अवश्य एक लघु प्रयास है। इससे भारत की खास कर मध्ययुगीन धार्मिक सांस्कृतिक भूमिका की एकता के सूत्र अवश्य उद्घाटित होते हैं। समय की सीमाओं में बंधकर चलने वाले प्रयास में सीमायें अवश्य होती हैं किन्तु आगे की अध्ययन दिशाओं को स्पष्ट सूचित करती हैं।

=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=

सहायक ग्रन्थ सूची

=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=

सहायक पुस्तक सूची

हिन्दी

1.	अष्टछाप तथा ताल्लापाक के कवियों का तुलनात्मक अध्ययन	:	श्रीमती सुमन लता दक्षिणांचल साहित्य समिति गांधीनगर, हैदराबाद- प्रथम संस्करण वर्ष - 1989
2.	आदिकालीन हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक पीठिका	:	डा. राम मूर्ति त्रिपाठी मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 97 मालवीनगर भोपाल- 31, प्रथम संस्करण 1973.
3.	आदिकालीन हिन्दी साहित्य	:	शम्भुनाथ पाण्डेय विश्व - विद्यालय प्रकाशन, चौक - वारणासी, प्रथम संस्करण वर्ष - 1970.
4.	आन्ध्र का इतिहास	:	आन्ध्र प्रदेश हिन्दी अकादमी हैदराबाद - वर्ष - 1988
5.	आन्ध्र संस्कृति, तेलुगु भाषा लिपि, वाङ्मय, आदान प्रदान एवं कलाएँ	:	- वही -

6·	कबीर ग्रन्थावली	:	ए·वी·रामअनंत रीगल बुक डिपो, नई सड़क, नई दिल्ली- वर्ष 1984·
7·	कबीर ग्रन्थावली	:	माता प्रसाद गुप्त लोक भारती प्रकाशन, प्रथम संस्करण - 1966·
8·	कृष्ण काव्य और सूर	:	डा·प्रेमशंकर स्मृति प्रकाशन 124, शहरबाग, इलाहाबाद - 211 003· वर्ष - 1977·
9·	गोस्वामी तुलसीदास और उनका साहित्य	:	रामदत्त भारद्वाज, सूर्य प्रकाशन, नई सड़क, नई दिल्ली- वर्ष- 1969
10·	तुलसी साहित्य विवेचन और मूल्यांकन	:	आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा डा·वचन देव कुमार, नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली - वर्ष-1971·
11·	तुलसी और गोविंद के राम काव्य	:	डा·लज्जा देवी मोहन, क्लासिकल पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली, वर्ष - 1987·
12·	तुलसी और उनका साहित्य	:	डा·विमल कुमार जैन, हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस, नई दिल्ली, वर्ष सं· 2014·
13·	तुलसी ग्रन्थावली	:	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल,नागरी प्रचारिणि सभा, काशी वर्ष·सं·2015·

14. तेलुगु साहित्य का इतिहास	:	श्रीनिवास लाहोटी, हिन्दी भवन नामपल्ली, हैदराबाद – वर्ष 1987
15. तेलुगु साहित्य का इतिहास	:	श्री बालशौर रेड्डी, हिन्दी समिति – उत्तर प्रदेश शासन, द्वितीय संस्करण, वर्ष 1972
16. तेलुगु वाणी	:	विश्व तेलुगु सम्मेलन
17. पूर्व मध्यकालीन भारत	:	रति भानु सिंह नाहर, किताब महल, इलाहाबाद, वर्ष– 1958
18. भक्ति और दर्शन	:	डा. वेद प्रकाश शास्त्री, गीता प्रकाशन, हैदराबाद, द्वितीय संस्करण वर्ष – 1974.
19. भक्ति साहित्य एवं परंपरा	:	संपादक चन्द्र जैसवाल, समीक्षा – लोक, माता प्रकाशन, आगरा–3.
20. भक्ति आन्दोलन और साहित्य	:	एम जार्ज, प्रगीत प्रकाशन, आगरा, प्रथम संस्करण – वर्ष – 1978,
21. भक्ति आन्दोलन का अध्ययन	:	रति भानु सिंह नाहर, किताब महल, इलाहाबाद वर्ष – 1960.

22.	भारत वर्ष का इतिहास	:	रति भानु सिंह नाहर, किताब महल, इलाहाबाद – वर्ष – 1965.
23.	भारत का सांस्कृतिक इतिहास	:	राजेन्द्र पाण्डेय, उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ, अकादमी, लखनऊ।
24.	भारत वर्ष का इतिहास	:	रोमिला थापर, राज कमल प्रकाशन, नेताजी सुभाष मार्ग दिल्ली – वर्ष – 1975.
25.	भारतीय चिंतन परंपरा	:	के. दामोदरन, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली – तृतीय संस्करण वर्ष – 1982.
26.	भारतीय संस्कृति और कला	:	वाचस्पति गैरोला, ब्रह्मदत्त दीक्षित निर्देशक उत्तर प्रदेश, हिन्दी ग्रन्थ, अकादमी, लखनऊ।
27.	भागवत संप्रदाय	:	बलदेव उपाध्याय, नागरि प्रचारिणी सभा, वाराणसी – वर्ष सं. 2010.
28.	भक्ति चिंतन की भूमिका	:	प्रेम शंकर, साहित्य भवन (प्रा) लिमिटेड, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण, वर्ष – 1978.

29. मध्यकालीन हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति : मदन गोपाल गुप्त, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली - प्रथम संस्करण, वर्ष - 1968.

30. मध्यकालीन हिन्दी कविता पर शैवमत का प्रभाव : कमला भण्डारी, पंचशील प्रकाशन, फिल्म कॉलोनी, चौड़ा रास्ता जयपुर - वर्ष - 1971.

31. मध्ययुगीन प्रेमाख्यान : श्याम मनोहर, पाण्डेय, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण, वर्ष - 1982.

32. मीरा पदावली : शंभु मनोहर, रिसर्च पब्लिकेशन सं. जयपुर - वर्ष - 1969

33. वैष्णव धर्म : परशुराम चतुर्वेदी

34. शैवमत : डा. यदुवंशी, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, सम्मेलन भवन, पटना - वर्ष - 1955

35. शैली विज्ञान : भोलनाथ तिवारी, शब्दकार, 220 उगली डाकोतनी तुर्कमान गेर, दिल्ली - 6, वर्ष - 1977.

36· साहित्येतिहास संरचना और स्वरूप : सुमन राजे

37· साहित्य का इतिहास दर्शन : नलिन विलोचन शर्मा, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, पटना -3, प्रथम संस्करण, वर्ष - 1960·

38· साहित्य और इतिहास दृष्टि : मैनेजर पांडेय, पीपुल्स लिटरेसी, 517, माहिया महल - दिल्ली 110006, प्रथम संस्करण - वर्ष 1981·

39· सूर और पोतना के काव्य में भक्ति : डा·सी·एच·रामुलु, दक्षिणांचलीय समिति, हैदराबाद, वर्ष - 1980·

40· सूर और उनका साहित्य : हरवंश लाल शर्मा

41· संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर

42· हिन्दी साहित्य में भक्ति का स्वरूप : डा· नित्यानंद शर्मा, आशा - प्रकाशन, इलाहाबाद - द्वितीय संस्करण - वर्ष - 1975·

43· हिन्दी साहित्य का इतिहास दर्शन : शिव कुमार दि·मैक, मिलन कंपनी, आफ इंडिया लिमिटेड नई दिल्ली - वर्ष - 1978·

44· हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : डा· रामकुमार वर्मा, राम नारायणलाल प्रकाशक तथा पुस्तक विक्रेता, इलाहाबाद छठम संस्करण वर्ष – 1971·

45· हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास § सगुण § § भक्तिकाल § : नागरी प्रचारिणी सभा, काशी – वर्ष – सं· 2031·

46· हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास § भक्ति-काल § निर्गुण : नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, वर्ष सं· 2025

47· हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास §अनुवाद§ : किशोरीलाल गुप्ता – वर्ष 1957

48· हिन्दी साहित्य का आदिकाल : आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी प्रकाशक, बिहार राष्ट्र भाषा, परिषद, पटना – 6, तृतीय संस्करण – 1961·

49· हिन्दी साहित्य का प्रवृत्तिगत इतिहास : प्रतापनारायण टंडन, विवेक प्रकाशन, उमीनाबाद, लखनऊ ।

50· हिन्दी साहित्य का इतिहास : रामचन्द्र गुप्त, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, प्रथम संस्करण वर्ष - 1955·

51· हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास : गणपतिचन्द्र गुप्त लोक भारती प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग इलाहाबाद - वर्ष - 1978·

52· हिन्दी और तेलुगु वैष्णव भक्ति साहित्य : डा· के· रामनाथन्, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, प्रथम संस्करण वर्ष - 1968·

53· हिन्दी और तेलुगु में महाकाव्य का स्वरूप - विकास : डा· टी· राजेश्वर नाथ शर्मा, श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, जयपुर - वर्ष - 1969·

54· हिन्दी और कन्नड भक्ति आन्दोलन तुलनात्मक अध्ययन : डा· हिरण्मयी, विनोद पुस्तक मन्दिर - आगरा, वर्ष - 1951·

55· हिन्दी भाषा का इतिहास : धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दुस्तानी, अकादमी, इलाहाबाद-दशम संस्करण - वर्ष - 1980·

56· हिन्दी भाषा और नागरी लिपि : केशवदत्त रुवाली, ग्रन्थायन, सर्वोदय नगर, सासनगर, अलीगढ़ 20200, वर्ष - 1982·

तेलुगु :-

1. आन्ध्रुल चरित्र : हनुमंत राव, त्रिपुर सुन्दरी
3 / एम· भाडिपेट गुंटूर - 2
वर्ष - 1983·

2. आन्ध्रुल चरित्र संस्कृति : 1· आचार्य खण्डवल्लि लक्ष्मीरंजनम्
2· आचार्य बालेन्दु शेखर बाल सरस्वती
बुक डिपो, कर्नूल - वर्ष - 1981·

3. आन्ध्रुल संस्कृति चरित्र : कंबंपाटि सत्यनारायण, हैदराबाद
बुक ट्रस्ट, वर्ष - 1982·

4. आन्ध्रुल साहित्य संग्रह चरित्र (प्रथम भाग) : खण्डवल्लि लक्ष्मी रंजनम् वेंकटरमणा पब्लिकेशन्स - वर्ष - 1955·

5. आन्ध्र साहित्य संग्रह चरित्र : वारणासी वेंकटेश्वर्लू स्टूडेन्ट्स फ्रेन्ड
बुक सेलर्स अण्ड पब्लिशर्स, गुन्टूर
द्वितीय संस्करण - 1979

6. आधुनिकान्ध्र कवित्वमु संप्रदायालु : डा·सीनारायण रेड्डी, आन्ध्र
प्रदेश बुक डिपो, डिस्ट्रीब्युटर्स,
सिकिंदराबाद, वर्ष - 197 ·

7·	आन्ध्रुल साहित्य चरित्र	:	पिंगली लक्ष्मीकान्तम्, गंगाधर पब्लिकेशन्स, राम मन्दिर वीधि, विजयवाडा-520 002· वर्ष - 1955·
8·	आन्ध्र भाषा विकासमु	:	गंटि जोगी सोमयाजुलु, आन्ध्र विश्व कलापरिषद्, द्वितीय संस्करण वर्ष - 1978·
9·	आन्ध्रुल सांघिक चरित्र	:	सुरवरमु प्रतापरेड्डी, साहित्य वैजयन्ती प्रकाशन, हैदराबार वर्ष - 1982·
10·	आन्ध्रमहा भारत	:	आदिपर्व नन्नया, वाविल्ल सोमाराम स्वामी शास्त्रुलु-1972
11·	समग्र आन्ध्र चरित्र §14 भाग §	:	आरुद्र, शेषाचलम् अण्ड कंपनी मद्रास- मचली पटनम्
12·	तेलुगु साहित्य समीक्षा § प्रथम भाग §	:	जी·नागय्या, नव्य परिशोध प्रचुरनलु 18-1-699, भवानी नगर तिरुपति - 1983·
13·	तेलुगु साहित्य समीक्षा § द्वितीय भाग §	:	जी· नागय्या
14·	तेलुगु वाणी	:	विश्व तेलुगु सम्मेलन, संस्मारिका वर्ष - 1975
15·	तेलुगु भाषा-चरित्र	:	भद्रिराजु कृष्ण मूर्ति, आन्ध्र प्रदेश साहित्य अकादमी, हैदरा·-1979·

1.	Headings, Culture, Personality and Society	-	ALK Reber Anthropology Today Ed - 1959.
2.	Culture and History	-	Phillip Bagby Ed-1951.
3.	Glories of India, Indian Culture and Civilization	-	Ed - II
4.	A Survey of India	-	K M Parmikkar Ed - 1960.
5.	History of Medieval India	-	Eshwari Prasad
6.	The Delhi Sultanate	-	RC Majumdar, Bhartiya Vidya Bhavan, Bombay - 1980.
7.	Historical Grammar of Inscriptional Telugu	-	M.Kondappa Chetty Sri Venkateswara University, Tirupati - 1966.